वन्देऽहं चन्द्रसागरं

गुप्तित्रयं समितियुक्तमहाव्रतानि,
धृत्वा त्रयोदशविधं मुनिरूपधर्मं ।
कर्मारिभेदनविधौ निशितं कुठारं,
श्रीचन्द्रसागरगुरुं प्रणमामि भक्त्या ।।

* * *

यः संस्तुतस्तु न चकार कदापि तोषं,
वा निन्दकेषु विदधे न कदापि रोषं ।
सर्वेषु जीवगणकेषु दयांदधानं,
श्री चन्द्रसागरगुरुं प्रणमामि भक्त्या ।।

* * *

घोरोपसर्गविजयी खलु शास्त्रवेत्ता,
ध्यानीव्रती गुणनिधिस्तु हितोपदेशी ।
दुःखाब्धितस्तरति तारयतीतरान्यः,
तं चन्द्रसागरगुरुं प्रणमामि भक्त्या ।।

* * *

ग्रन्थानधीत्य सकलान् श्रुतसारभूतान्,
बोधं विधाय शिवसौख्यकरं च शुद्धं ।
योऽभूद् दृढ़स्तपसि निश्चल भावयुक्तः,
तं चन्द्रसागरगुरुं प्रणता सुपार्श्वा ।।
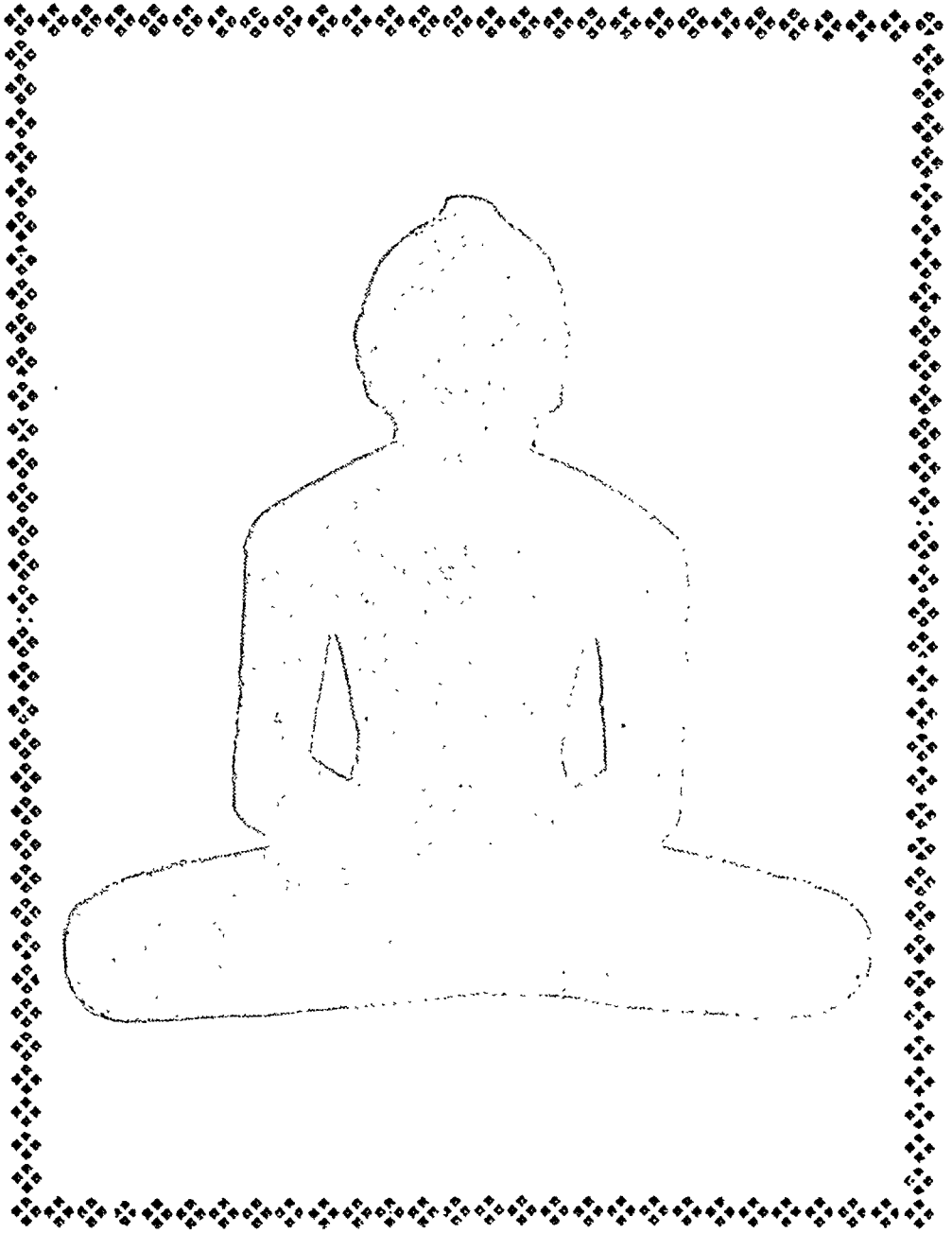
यदर्च्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दु रइह,
क्षणादासीत्स्वर्गीगुणगणसमृद्धः सुखनिधिः ।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुख समाजं किमुतदा,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु न. ।।

—पण्डित भागचन्द/महावीराष्टक

नमस्कार महामंत्र

आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रथम खण्ड
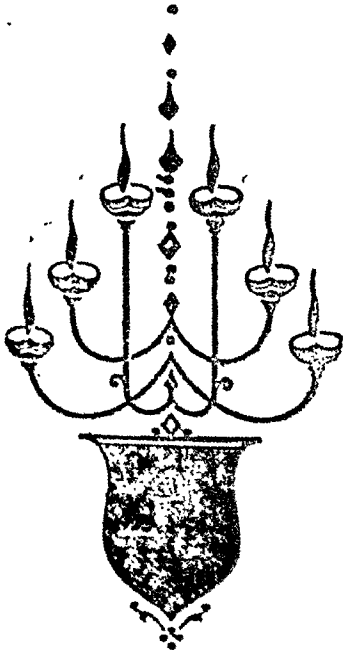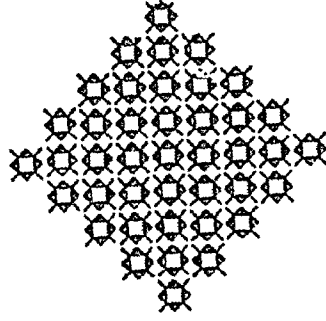
आशीर्वचन

अभिवादन

संस्मरण

और

काव्याञ्जलि

दृढ़ तपस्वी, आर्ष मार्ग के कट्टर पोषक, निर्भीक वक्ता,

आगम मर्मस्पर्शी, सत्यान्वेषी, तारण तरण
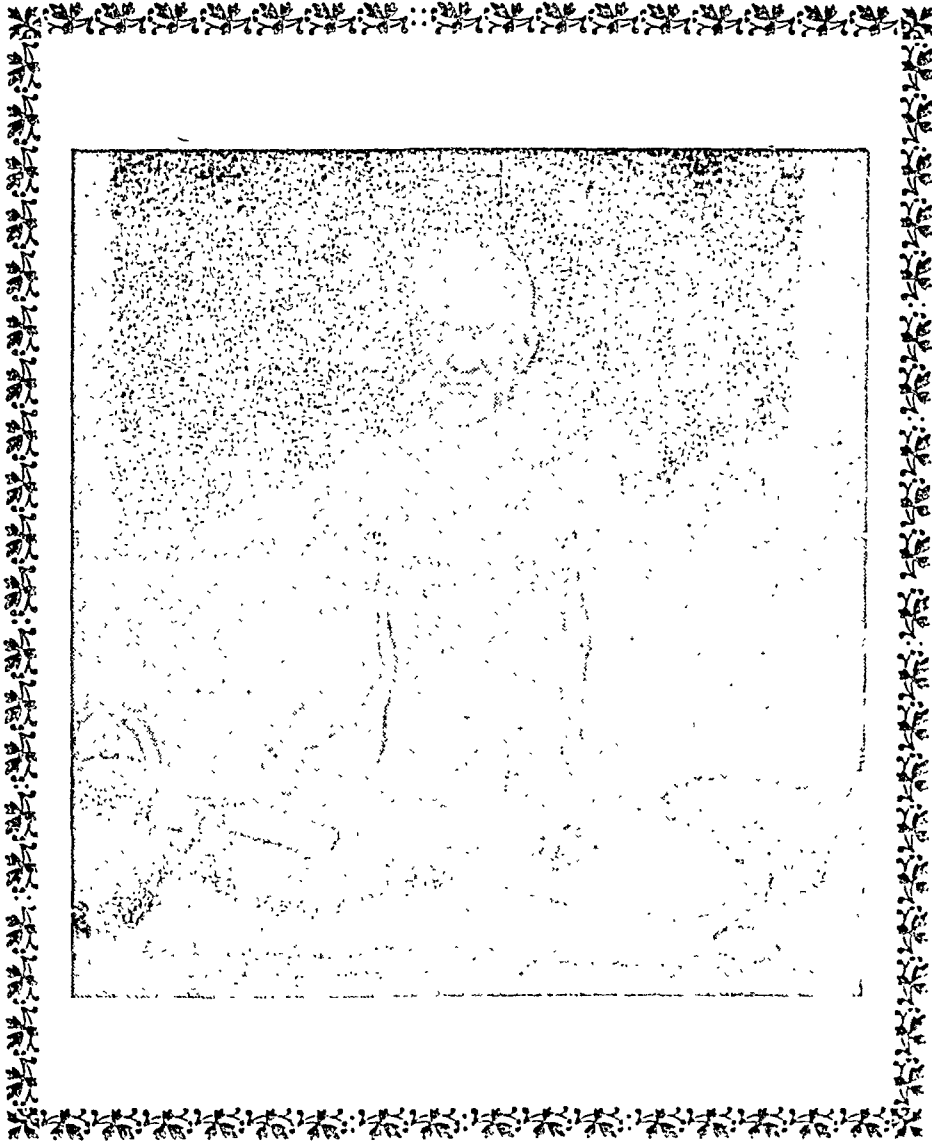
आचार्यकल्प १०८ श्री चन्द्रसागर महाराज

जन्म :	मुनि दीक्षा :	समाधि :
माघ कृष्णा त्रयोदशी	मार्गशीर्ष शुक्ला १५	फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा
वि० सं० १९४०	वि० सं० १९८९	वि० सं० २००१

नागपुर में सार्वजनिक भाषण वि० सं० २०२७

विविध स्थानों पर

आर्यिका संघ की देशना

बारसोई में आर्यिका संघ का प्रवचन वि.सं. २०३०
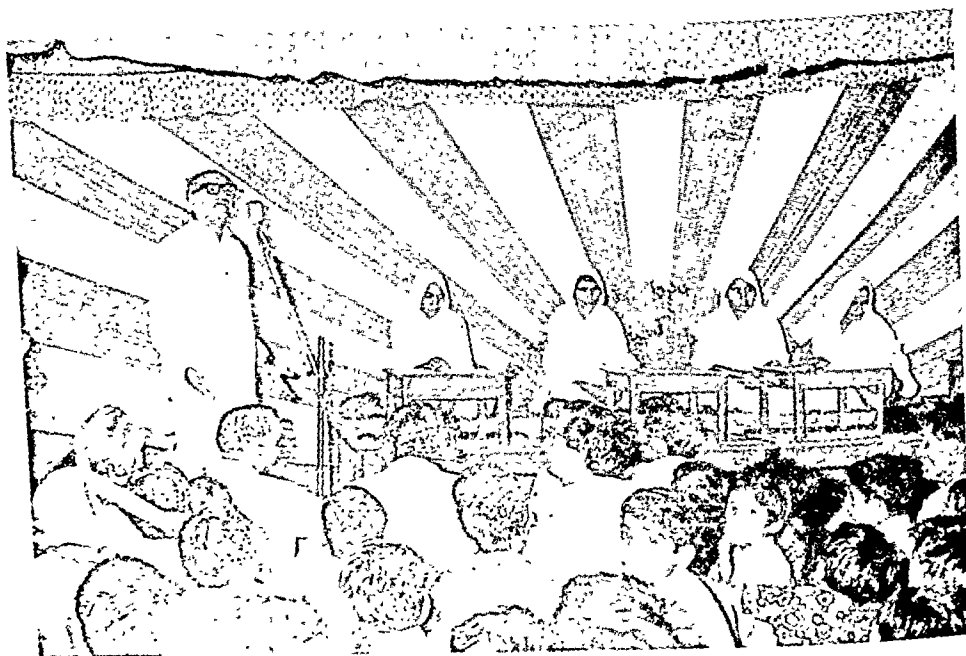
कानकी में स्वागत समारोह : ८–५–७४

समर्पण

✡✡

जिनशासन प्रभाविका, सन्मार्ग प्रकाशिका,

सफल संघ–सञ्चालिका,

दृढ़ अनुशासिका,

निर्भीक, स्पष्ट वक्ता

उदारचरिता

गुरुभक्तिपरायणा

सत्यान्वेषी

परम करुणाशीला

वात्सल्य परिपूर्णा

आर्यारत्न

परम पूज्य इन्दुमती माताजी के

पुनीत कर–कमलों में

सविनय

सादर समर्पित

卐 डीमापुर में आर्यिका संघ 卐

श्री किशनलालजी सेठी डीमापुर द्वारा गृह चैत्यालय का निर्माण

आर्यिका संघ का विदाई समारोह

जिनशासन प्रभाविका, सिद्धान्त संरक्षिका, तपोनिधि, अध्यात्ममूर्ति, परम कारुण्यशीला

परम पूज्य आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी
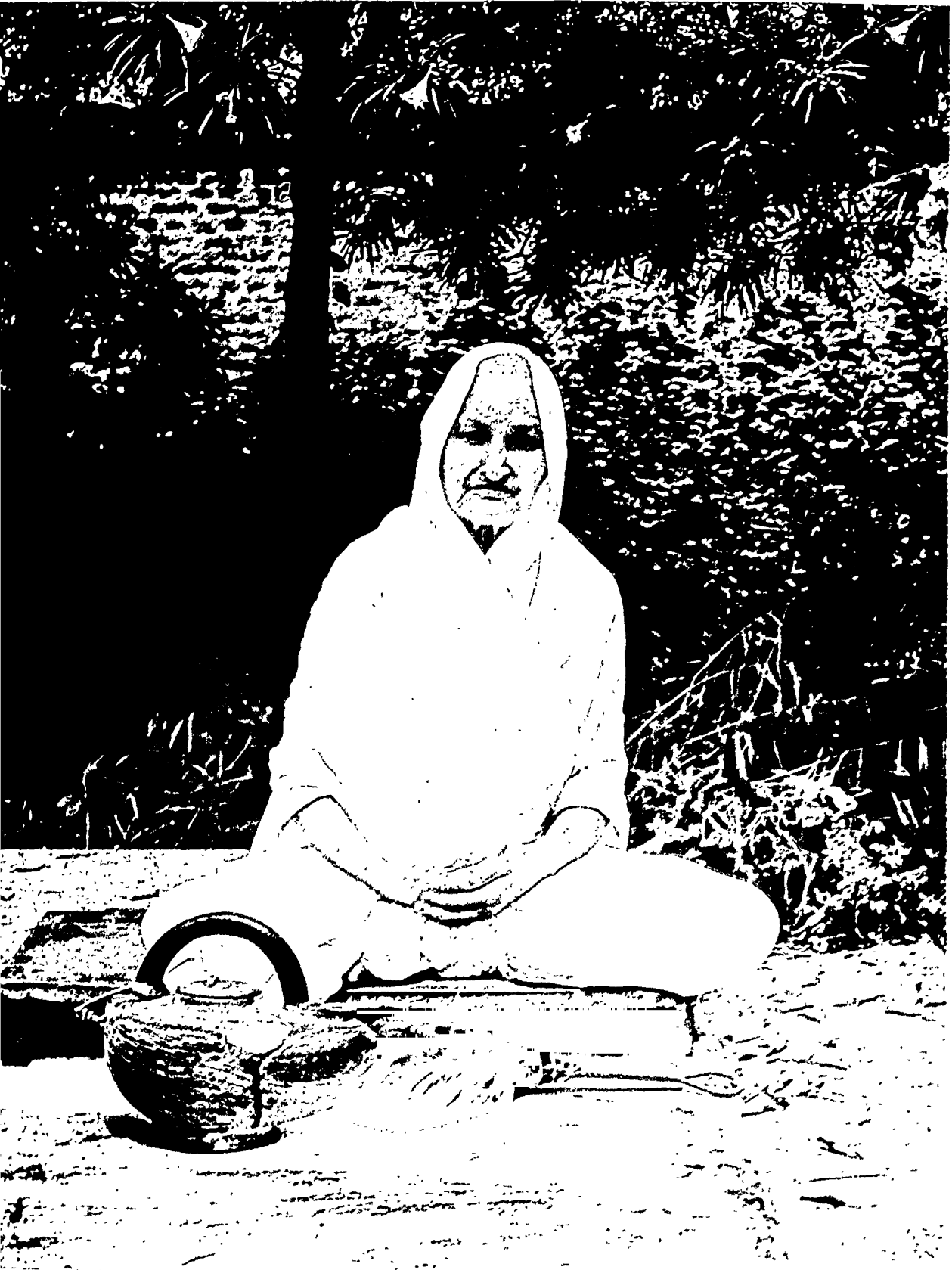
जन्म	क्षुल्लिकादीक्षा	आर्यिकादीक्षा
वि. सं. १९६२	वि. सं. २०००	वि. सं. २००६
डेह–नागौर	कसावखेड़ा	नागौर (राजस्थान)

विशाल मुनिसंघ
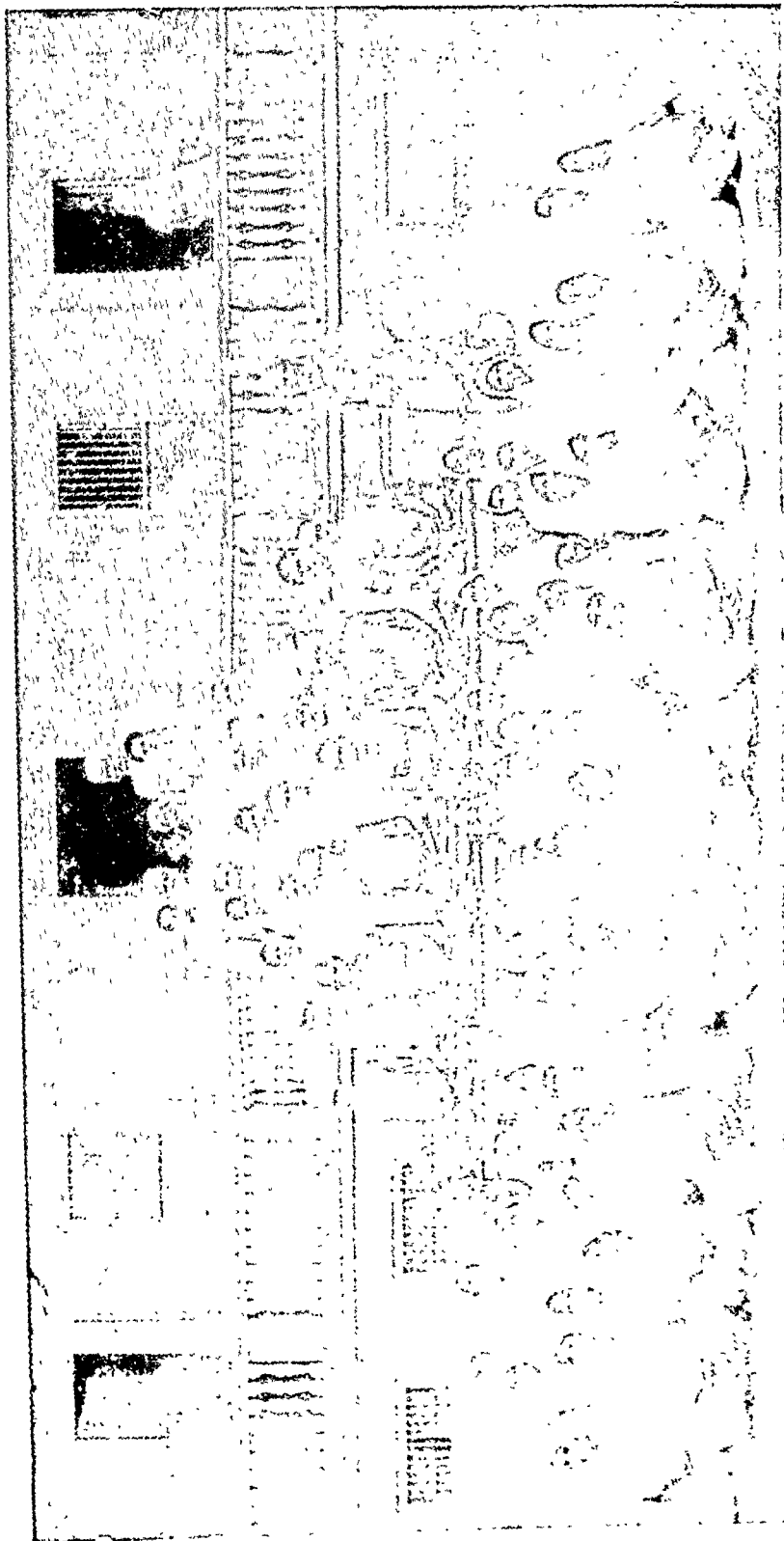
[वि० सं० २०१६ लाडनूं वर्षायोग ❀ आचार्य श्री शिवसागरजी विशाल संघ सहित]

श्री शांतिनाथ भगवान का मंदिर (नया मंदिर) डेह :
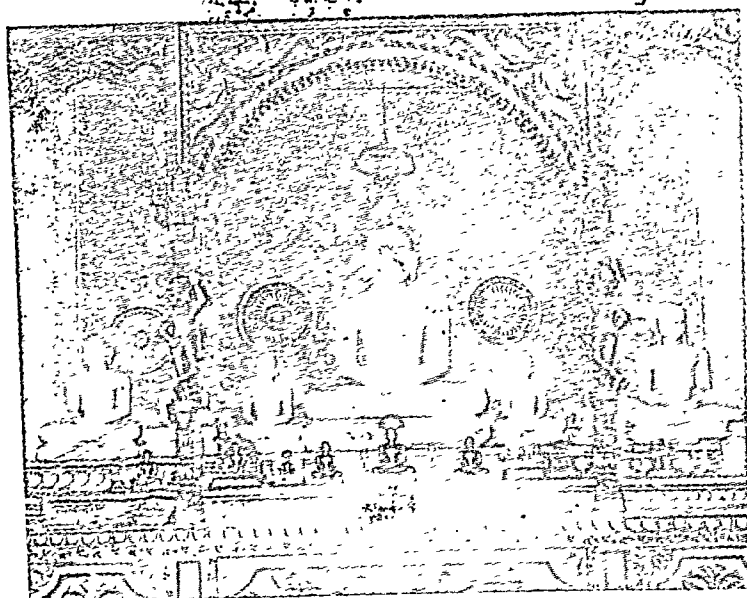
मुख्य वेदी

श्री पार्श्वनाथ भगवान का मनोज्ञ जिन विम्ब (शिखर में)
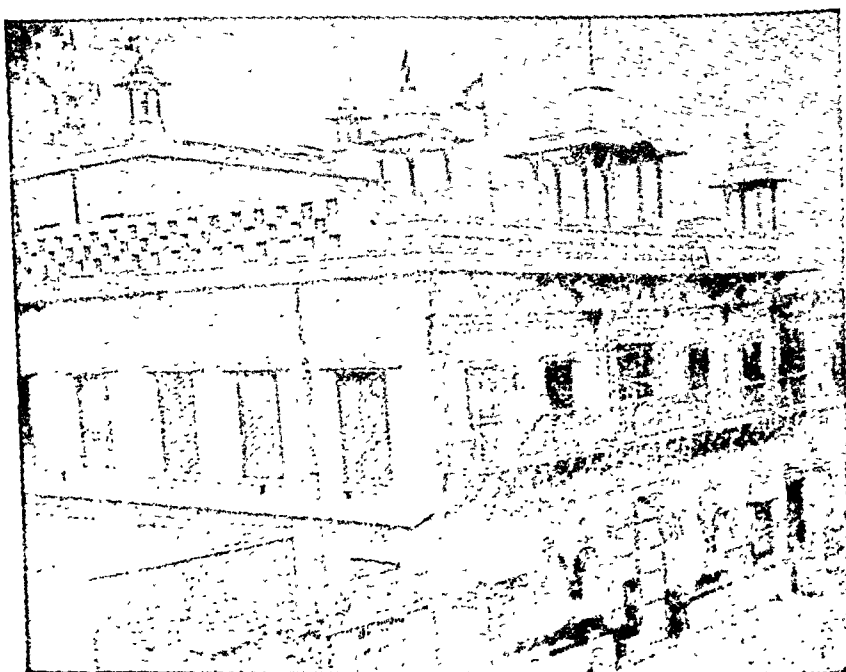
श्री मंदिरजी का बाहरी दृश्य

प्रकाशन समिति की ओर से

¤

परम पूज्य १०५ वयोवृद्ध तपस्विनी गणिनी आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी का आर्यिका संघ बहुख्यात है। आपने अपनी शिष्याओं—आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विद्यामतीजी, आर्यिका सुप्रभामतीजी, सहित विक्रम संवत् २०२६ का वर्षायोग महानगर कलकत्ता में सम्पन्न किया था। वहां आपके विराजने से जैनधर्म, दर्शन और संस्कृति की महती प्रभावना हुई थी। तभी धर्मनिष्ठ श्रावकों के मन में यह बात भी आई कि यदि यह आर्यिका संघ भारत के पूर्वाञ्चल में—आसाम, नागालैण्ड आदि प्रदेशों में विहार करे तो जैन धर्म का और जैन संस्कृति का सुन्दर प्रचार-प्रसार हो सकता है। तदनुरूप योजना बनी। पूज्य माताजी इन्दुमतीजी द्वारा होने वाली धर्मप्रभावना को देख कर सुश्रावकों के मन में असीम भावोल्लास जाग्रत हुआ और यह भावना बनी कि इनका जितना अभिनन्दन किया जाए, कम है; जितनी प्रशस्ति गाई जाए उतनी थोड़ी है। यह विचार भी आया कि माताजी के अभिनन्दन रूप में अपने सन्तोष के लिए एक सुन्दर सा ग्रंथ प्रकाशित कर अपने श्रद्धासुमन समर्पित किये जांय।

सुश्रावकों की इस भावना को मैंने आर्यिका सुपार्श्वमतीजी के सम्मुख वाणी दी और करबद्ध अनुरोध किया कि हमारी इस भावना को मूर्त रूप देने में आपका सहयोग अपेक्षित है। पूज्य इन्दुमतीजी का और आपका वर्षों का साथ है अतः आप माताजी का जीवनवृत्त लिख दें तो हमारा बहुत कुछ काम हो सकेगा। आर्यिका सुपार्श्वमतीजी का उत्तर था कि माताजी का जीवनवृत्त लिखने में मुझे कोई संकोच नहीं परन्तु मेरे धर्मध्यान, स्वाध्यायादि में अधिक व्यवधान न हो अतः आप अपनी सुविधानुसार समय निकाल कर आवें तो मैं सम्पूर्ण जीवनवृत्त लिपिबद्ध करा दूंगी। मैंने तुरन्त हामी भरी। उस समय संघ बारसोई में विराज रहा था, वहीं इस शुभकार्य को प्रारम्भ किया, शुभस्य शीघ्रम्। इसे एक संयोग ही समझना चाहिए कि पूज्य इन्दुमती माताजी जब वे मोहनी बाई थीं, उनका विवाह यहीं बरसोई में सम्पन्न हुआ था और कुछ माह पश्चात् वैधव्य की स्थिति भी यहीं बनी थी। विवाह से दो माह पूर्व भागलपुर में सम्पन्न हुई पंचकल्याणकप्रतिष्ठा में तीर्थङ्कर की माता की सेवा करने वाली ५६ कुमारिकाओं में से एक मोहनी बाई भी थीं। बारसोई में प्रारम्भ हुआ लेखन कार्य कानकी, किशनगंज (सं० २०३१) आदि स्थानों पर कुछ आगे बढ़ा। अनन्तर संघ ने आसाम की ओर विहार किया और गौहाटी (सं० २०३२), डीमापुर (सं० २०३३), विजयनगर (सं०

जिनशासन प्रभाविका
परम पूज्य गणिनी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी

जन्म :	क्षुल्लिका दीक्षा :	आर्यिका दीक्षा :
वि० स० १९६२	वि० सं० २०००	वि० सं० २००६
डेह (नागौर)	कसावखेड़ा	नागौर (राज०)

२०३४), कानकी (सं० २०३५), भागलपुर (सं० २०३६) आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। मैं समय-समय पर संघ में जाता रहा और मैंने जीवनवृत्त लिपिबद्ध करने का काम जारी रखा। इस अंचल में आर्यिका संघ के पदविहार से जैन धर्म की जो अभूतपूर्व प्रभावना हुई है वह शब्दों में नहीं आंकी जा सकती। इन स्थानों के व्यक्तियों की लेखनी से लिपिबद्ध किये गये संस्मरणों से आपको उसकी झलक मात्र ही मिल सकती है। जिस क्षेत्र में शताधिक वर्षों से दिगम्बर जैन साधुओं का गमन नहीं हुआ था, उस अंचल में पूज्य इन्दुमती माताजी के नेतृत्व में संघ ने विहार कर हजारों लोगों को अहिंसा धर्म में प्रवृत्त किया है; मद्य-मांस, रात्रि भोजन का त्याग कराया है, चैत्यालयों की स्थापना करवाई है और विशाल जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव भी सम्पन्न कराये हैं।

मैंने जीवनवृत्त तो लिपिबद्ध कर लिया परन्तु इसके अतिरिक्त भी तो सामग्री चाहिये थी; संघ के चातुर्मास-स्थलों पर जहां भी जाता वहां के श्रावकों को संस्मरण, विनयांजलि, कविता, लेख आदि के लिए भी प्रेरणा करता; इस आशय की विज्ञप्ति जैन-पत्रों में भी निकलवाई परन्तु बहुत ही कम सामग्री जुट पाई। 'ग्रन्थ' के प्रकाशन हेतु अनेक महानुभावों से पत्रों के माध्यम से तथा व्यक्तिगत रूप से भी सम्पर्क स्थापित किया पर सन्तोषप्रद सहयोग न मिलने से आशा-निराशा के हिण्डोले में झूलता रहा तथापि मैंने व्यक्तिगत प्रयास करना बन्द नहीं किया।

साधर्मी बन्धुओं से विचार-विमर्श कर दिनांक २५ जुलाई, १९८० के दिन कलकत्ता में श्रीमान् माणकचन्दजी सा० पाटनी के निवास स्थान पर उन्हीं की अध्यक्षता में एक बैठक आयोजित की गई। उसमें ग्यारह महानुभावों ने भाग लिया। श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्रीमान् निर्मलकुमारजी सेठी भी उपस्थित थे। सर्व सम्मति से पूज्य इंदुमती माताजी के अभिनन्दन का और उस अवसर पर अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित करके समारोह पूर्वक उन्हें समर्पित करने का निर्णय लिया गया। सम्पूर्ण कार्यक्रम को सुचारुरूप से गति देने के लिये आर्यिका १०५ श्री इंदुमती माताजी अभिनन्दन समिति का गठन किया गया। पदाधिकारी इस प्रकार मनोनीत हुए—

अध्यक्ष	:	श्री माणकचन्द पाटनी, कलकत्ता
उपाध्यक्ष	:	श्री निर्मलकुमार सेठी, सीतापुर
	:	श्री डूंगरमल बाकलीवाल, खारूपेटिया
मंत्री (एवं ग्रंथ प्रकाशन)	:	श्री डूंगरमल सबलावत, डेह
सह मंत्री	:	श्री भागचन्द गंगवाल, कलकत्ता
	:	श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, कलकत्ता
कोषाध्यक्ष	:	श्री निर्मलकुमार सरावगी, कलकत्ता
सह कोषाध्यक्ष	:	श्री जयचन्दलाल सबलावत

११वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०१० का चातुर्मास आर्यिका इन्दुमतिजी ने पूज्य श्री महावीरकीर्तिजी के साथ कटनी में किया। धर्म की विशेष प्रभावना हुई, अनेक चमत्कारी घटनाएं घटीं।

कटनी से सम्पूर्ण संघ रींवा पहुँचा। यहाँ शान्तिनाथ भगवान का विशाल खड्गासन जिनविम्ब है। यहां दक्षिणप्रान्तीय १०५ पूज्य श्री पुष्पदन्त क्षुल्लकजी का स्वर्गवास हो गया।

रींवा से मिर्जापुर, बनारस, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, आरा, पटना, राजगृही, कुण्डलपुर, महावीर प्रभु का निर्वाण क्षेत्र पावापुर, आदि की वन्दना करता हुआ समस्त संघ भागलपुर पहुँचा। वहां पर पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव था।

वासुपूज्य भगवान के पञ्च कल्याणकों से पवित्र चम्पापुर की वन्दना करके मन्दारगिरि, गिरीडीह, पालगंज के जिनालयों के दर्शन करता हुआ संघ बीस तीर्थङ्करों के निर्वाण क्षेत्र परम पावन सम्मेदशिखरजी पहुँचा। परम पूज्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज ने मधुवन में ही चातुर्मास करने का निश्चय किया।

महाराजश्री का निश्चय ज्ञात कर बिहार एवं बंगाल वासी समस्त श्रावकगण चिन्तित हुए क्योंकि उस समय मधुवन के पानी से मनुष्य मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो जाते थे। कोई भी वहाँ चातुर्मास काल में रहने का साहस नहीं करता था। आचार्यश्री को भी चातुर्मास के पूर्व ही भीषण ज्वर आने लगा था। कलकत्ता, ईसरीवासी श्रावकों ने विनयपूर्वक निवेदन किया कि गुरुदेव! यहां वर्षायोग स्थापित करना योग्य नहीं है क्योंकि यहां की जलवायु वर्षा में अस्वास्थ्यकर हो जाती है। चातुर्मास ईसरी में करना योग्य नहीं है। किन्तु आचार्यश्री ने श्रावकों के निवेदन पर ध्यान नहीं दिया और वे अपने निश्चय पर अटल रहे। चातुर्मास मधुवन में ही किया। उन तपोनिधि के तप-त्याग और जप के प्रभाव से मधुवन की जलवायु को वह गुण प्राप्त हो गया कि अब वह रोगकारक न होकर रोगनाशक हो गई। तपस्या का प्रभाव अचिन्त्य है। उनके इस चातुर्मास के बाद यहाँ पर कितने ही त्यागियों ने निर्विघ्न चातुर्मास किये हैं।

१२ वाँ वर्षायोग :

वि० सं० २०११ का चातुर्मास आर्यिका इन्दुमतिजी ने आचार्यश्री विमलसागरजी के साथ ईसरी में सम्पन्न किया। चातुर्मास के बाद गिरिराज सम्मेदशिखरजी की वन्दना करके आचार्य महावीरकीर्तिजी के संघ के साथ खण्डगिरिजी की वन्दना करने के लिए विहार किया। मार्ग में धन-बाद और पुरलिया के बीच में पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज पर कुछ लोगों ने लाठियों आदि के

सबने आर्थिक सहयोग देने और दिलवाने का आश्वासन भी दिया। यह भी निर्णय लिया गया कि भारत के सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज से सहयोग प्राप्त किया जाए तथा विद्वानों व श्रीमानों से सम्पर्क कर जीवनीपरक ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रंथ प्रकाशित किया जाए। मंत्री होने के नाते इन निर्णयों को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व मुझ पर आ पड़ा।

इस बैठक के बाद कार्य में गति आई। मैं कलकत्ता से सम्मेदशिखरजी गया जहां आर्यिका संघ विराज रहा था। ग्रंथ के सम्बन्ध में पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमतीजी से विचार विमर्श कर अब तक एकत्र हुई सामग्री लेकर मैं डेह आ गया। काम बहुत भारी था, जिम्मेदारी बड़ी थी। ग्रंथ प्रकाशन सम्बन्धी सूचना पुनः जैन-पत्रों में निकलवाई। सैकड़ों व्यक्तिगत पत्र भी लिखे, सामग्री आना शुरू हुआ, अब समस्या आई इसके सम्पादन की। सम्पादन हेतु समाज के अनेक परिचित विद्वानों से पत्र व्यवहार किया परन्तु किसी भी विद्वान का सन्तोषप्रद उत्तर प्राप्त न होने से चित्त में अशान्ति, आकुलता पैदा हो गई। कुछ दिनों तक बड़ा उद्विग्न रहा—समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूँ? कार्य में शिथिलता आ गई। तभी क्षुल्लक १०५ श्री सिद्धसागरजी महाराज लाडनूं वालों के दर्शनों का सौभाग्य हुआ। पूज्य आर्यिका १०५ इंदुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रंथ की चर्चा मैंने उनसे की और सम्पादन-प्रकाशन की अपनी समस्याओं का जिक्र भी किया। कुछ क्षणों तक विचार करने के बाद वे बोले—(स्व०) मुनिपुंगव समतासागरजी महाराज की गृहस्थावस्था के सुपुत्र डॉ० चेतनप्रकाश जी पाटनी, जोधपुर विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं, वे योग्य विद्वान हैं। यदि वे इस कार्य को हाथ में ले लें तो आपका काम आसानी से और बढ़िया ढंग से हो सकता है। मैंने कहा कि उनका नाम तो बहुत सुना है। जैन पर्वों पर आकाशवाणी से समय-समय पर प्रसारित होने वाली उनकी वार्ताएं भी सुनी हैं, उनके सम्पादित ग्रंथ भी देखे हैं परन्तु उनसे परिचय बिल्कुल भी नहीं। वे बोले—एक बार मिलो तो सही, परिचय में कितनी देर लगती है, हमारा नाम लेना। महाराजश्री ने मुझे बहुत आश्वस्त किया तो भी मेरा मन साक्षी नहीं दे रहा था कि यह कार्य श्री चेतनप्रकाशजी कर देंगे।

मैं उबेड़बुन में डेह लौट आया। ८-१० दिन और निकल गए तभी व्यक्तिगत आवश्यक कार्य से मई ८१ में जोधपुर जाना हुआ। क्षुल्लक सिद्धसागरजी महाराज से हुई चर्चा मस्तिष्क में थी ही; विचार किया कि चेतनप्रकाशजी से मिलें तो सही। मध्याह्न में ही एक साथी सहित उनके आवास पर पहुंचा। घंटी बजाई, स्वयं पाटनीजी ने ही द्वार खोल कर स्वागत किया। बैठक में बैठने के बाद परस्पर परिचय हुआ। मैंने आर्यिका संघ के सम्बन्ध में चर्चा की। आप बोले—संघ के सम्बन्ध में पढ़ा-सुना तो बहुत है परन्तु साक्षात् दर्शन-मिलन नहीं हुआ। मैंने 'अभिनन्दन ग्रंथ' के सम्बन्ध में चर्चा की और ग्रंथ का सम्पादन भार स्वीकार करने के लिये अनुरोध किया। आप उन दिनों विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के संचालन में व्यस्त थे। उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्याङ्कन हेतु

चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज :

आचार्यश्री का जन्म दक्षिण प्रान्त स्थित भोजग्राम के श्रीमान् भीमगौड़ा पाटील की सहधर्मिणी सत्यवती की कुक्षि से आषाढ़ कृष्णा ६ को विक्रम संवत् १९२९ में हुआ था। आपका जन्म-नाम सातगौड़ा था। शैशवावस्था से ही आप धार्मिक प्रकृति के थे। धर्मचर्या एवं धर्मचर्चा में आपकी बहुत रुचि थी। प्रचलित प्रथा के अनुसार नौ वर्ष की छोटी उम्र में ही आपका पाणिग्रहण संस्कार छह वर्ष की बालिका के साथ कर दिया गया था परन्तु यह बालवधू छह माह बाद ही स्वर्ग सिधार गई। यह विवाह क्या था—एक प्रकार की बालक्रीड़ा थी जिसमें वर-वधू दोनों को ही यह ज्ञान नहीं था कि पाणिग्रहण क्या होता है। माता-पिता ने कुछ समय बाद पुनर्विवाह करने का आग्रह भी किया

आपको जयपुर भी जाना था और संशोधन हेतु एक ग्रंथ भी आपकी टेबिल पर पड़ा था। आपने अपनी सीमाओं का उल्लेख करते हुए अपनी परिस्थिति बताई और कहा कि मैं कोई विशिष्ट विद्वान् नहीं हूं, अच्छा हो यह भार आप किसी योग्य विद्वान् को सौंपे। मैंने उनसे सारी स्थिति स्पष्ट कर पुनः अनुरोध किया तो उन्होंने इस गुरुतर भार को वहन करने की अपनी स्वीकृति दे दी। उनकी स्वीकृति पाकर मुझे बड़ा चैन मिला मानो मेरे कन्धों का बोझ उन्होंने ले लिया हो। अतिशय धन्यवाद देकर मैंने उनसे विदा ली और डेह पहुंच कर शीघ्र ही सारी सामग्री उनको भेज दी। उन्होंने इस काम को प्राथमिकता देकर पूर्ण किया और सारी विद्यमान सामग्री को संशोधित-सम्पादित कर स्वयं सारी प्रेस कापी की; जिसे लेकर मैं दिसम्बर १९८१ में पूज्य माताजी सुपार्श्वमतीजी के पास शिखरजी पहुंचा; उन्हें सारी सामग्री का अवलोकन कराया; उनके सुझावानुसार यत्र-तत्र किंचित् परिवर्तन भी किये और तदनन्तर जनवरी १९८२ में ग्रंथ प्रेस में दे दिया गया।

अभिनन्दन-समिति के निर्णयानुसार ग्रन्थ की एक हज़ार प्रतियां मुद्रित होनी थीं परन्तु श्रीमान् निर्मलकुमारजी सेठी, अध्यक्ष, श्री भा. दि. जैन महासभा, श्रीमान् हरकचन्दजी सरावगी, अध्यक्ष अ० भा० शान्तिवीर दि० जैन सिद्धान्तसंरक्षिणी सभा तथा श्रीमान् पूनमचन्दजी गंगवाल, झरिया ने सुझाव दिया कि ग्रन्थ कम से कम २००० की संख्या में छपे ताकि विभिन्न प्रदेशों में जहां आर्यिका संघ का विहार हुआ है वहां तथा देश के विभिन्न पुस्तकालयों में, जिनालयों के शास्त्र भण्डारों में, संघों में ग्रंथ की अपेक्षित प्रतियां दी जा सकें। मैंने तुरन्त प्रस्ताव रखा कि तब ये संस्थाएं भी अभिनन्दन समिति का सहयोग क्यों न करें ? हर्ष का विषय है कि श्रीमान् हरकचन्दजी सरावगी ने सहर्ष सहयोग देना स्वीकार किया और कहा कि अ० भा० शान्तिवीर दि० जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा भी ग्रन्थ-प्रकाशन में सहयोग करेगी, उसे भी ग्रन्थ का प्रकाशक लिखा जाए। श्री भा० दि० जैन महासभा के ४ मार्च, १९८२ को भिण्डर (उदयपुर) में सम्पन्न हुए अधिवेशन में श्री धर्मचन्द मोदी (व्यावर) के प्रस्ताव पर पूज्य आर्यिका इंदुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना का स्वागत एवं अनुमोदन किया गया (जैनगजट : मंगलवार २३ मार्च; ८२)। अध्यक्ष महोदय ने महासभा के प्रकाशन विभाग के माध्यम से प्रकाशन में सहयोग की बात कही।

इस प्रकार ग्रन्थ प्रकाशन में अभिनन्दन समिति के अतिरिक्त सि. सं. सभा, महासभा व अहिंसा प्रचार समिति, कलकत्ता जैसी संस्थाओं ने सहयोग किया है। मैं इन सबका आभारी हूं।

ग्रन्थ के सभी रचनाकारों को मैं हार्दिक साधुवाद देता हूं। विशेष रूप से परम पूज्य आर्यिका श्री सुपार्श्वमतीजी का अत्यन्त अनुगृहीत हूं जिन्होंने ग्रन्थ रचना व प्रस्तुतीकरण में हमारा मार्गदर्शन कर अभूतपूर्व सहयोग प्रदान किया। अन्य महानुभावों में मैं श्रीमान् लक्ष्मीचन्दजी छावड़ा, गौहाटी (भूतपूर्व अध्यक्ष, महासभा), श्रीमान् निर्मलकुमारजी सेठी, सीतापुर (वर्तमान अध्यक्ष,

डीमापुर की ओर

पई गये, यहां श्रावकों के तीन घर हैं यहाँ से श्यामगुड़ी, मीसा, कोलियावर, जखलावाधा, कुठड़ी, बूढ़ापहाड़, हाथीकुली, कांजीरंगा, मैथोनी होकर वोखाखाट पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के पाँच घर होते हुए भी मन्दिर, चैत्यालय कुछ भी नहीं था। माताजी ने कहा कि जैनों के घर होते हुए भी यहां मन्दिर नहीं है, तब आत्मशान्ति का स्थान कहाँ है ? आप लोगों की आने वाली पीढ़ी पर क्या असर पड़ेगा, उनके क्या संस्कार बनेंगे, आपकी संस्कृति स्थायी कैसे रह सकेगी ? जिनेन्द्र भगवान के ‍न से महान् पुण्य होता है।

जोरहाट में स्वागत समारोह

माताजी की प्रेरणा से कूकनवाली निवासी श्री सूरजमलजी वड़जात्या ने अपने घर में दिनांक ४-३-७६ को चैत्यालय स्थापित किया। उस समय डेरगाँव के श्री माँगीलाल जी पाटनी भी उपस्थित थे। उन्होंने भी डेरगाँव में अपने घर पर चैत्यालय स्थापित करने की भावना व्यक्त की। वहां भी आयिका संघ की उपस्थिति में दिनांक ६-३-७६ को चारित्र शुद्धि विधान सम्पन्न होकर चैत्यालय स्थापित किया गया, डेरगांव में श्रावकों के तीन घर हैं।

डेरगांव से विहार कर संघ जोरहाट पहुँचा। एक ही स्थान पर दिगम्बर, श्वेताम्बर, वैष्णव आदि मन्दिर व धर्मशालाएँ बनी हैं। दिगम्बर जैनों के बीस घर हैं। श्री सागरमलजी बाकलीवाल ने चारित्र-शुद्धि व्रत विधान कराया। केश लोंच समारोह

महासभा), श्रीमान् गणपतरायजी सरावगी गौहाटी, श्रीमान् किशनलालजी सेठी डीमापुर, श्री राजकुमारजी सेठी डीमापुर, श्री चैनरूपजी बाकलीवाल डीमापुर, श्री पूनमचन्दजी गंगवाल झरिया श्री जयचन्दलालजी गंगवाल इम्फाल, श्री उम्मेदमलजी पाण्ड्या दिल्ली, श्री पुखराजजी पाण्ड्या गोरखपुर, श्री अमरचन्दजी पहाड़िया कलकत्ता, श्री तिलोकचन्दजी कोठारी कोटा, श्री मन्नालालजी बाकलीवाल इम्फाल व श्री तनसुखलालजी काला, बम्बई का उनके हार्दिक सहयोग के लिये चिर आभारी हूं।

ग्रन्थ के लिए सामग्री संकलन व प्रकाशन में डेह, तिनसुकिया व बारसोई समाज का मुझे विशेष सहयोग मिला। ब्र० मदीबाई, ब्र० मैनाबाई व ब्र० प्रमिला बाई से भी मुझे कई विस्मृत सूचनाएं प्राप्त हुईं। एतदर्थ मैं इन सबका भी आभारी हूं। अर्थ सहयोग के लिये मैं सभी उदारमना साधर्मी बन्धुओं के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूं। सहयोगियों की सूची ग्रन्थ के अन्त में मुद्रित है।

'जैन दर्शन' के सम्पादक डा० लालबहादुरजी शास्त्री ने ग्रन्थ का पुरोवाक् लिख कर भेजा, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त अनुगृहीत हूं। ग्रन्थ के सफल सम्पादन के लिए मैं यशस्वी सम्पादक डा० चेतनप्रकाशजी पाटनी का अभिनन्दन करते हुए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं। ग्रन्थ का वर्तमान रूप उन्हीं की सन्तुलित सूझबूझ का सुपरिणाम है। ब्लाक निर्माण के लिए मैं श्री प्रतापचन्दजी पाटनी (जुबली ब्लाक्स, जयपुर) का व ग्रन्थ मुद्रण के लिये श्रीमान् पाँचूलालजी वैद (कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज-किशनगढ़) का अत्यन्त आभारी हूं। श्री पाँचूलालजी को मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। उनकी सुरुचि व सहयोग के बिना यह ग्रन्थ आपके हाथों में पहुंच ही नहीं सकता था। वे विशेष धन्यवादार्ह हैं।

यह ग्रन्थ आपके हाथों में ६-७ मास पूर्व ही पहुंच सकता था परन्तु गृहस्थी एवं व्यापार सम्बन्धी मेरी उलझनों तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवधानों के कारण मैं ही इसे पूर्णता प्रदान करने में असमर्थ रहा, इसके लिये मैं आप सबसे क्षमायाचना करता हूं। इति शुभम्

डूँगरमल सबलावत

प्रबन्ध सम्पादक एवं मंत्री, अभिनन्दन समिति

✿

रुपई गये, यहां श्रावकों के तीन घर हैं यहाँ से श्यामगुड़ी, मीसा, कोलियावर, जखलावाधा, कुठड़ी, बूढ़ापहाड़, हाथीकुली, कांजीरंगा, मैथोनी होकर वोखाखाट पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के पाँच घर होते हुए भी मन्दिर, चैत्यालय कुछ भी नहीं था। माताजी ने कहा कि जैनों के घर होते हुए भी यहां मन्दिर नहीं है, तब आत्मशान्ति का स्थान कहाँ है? आप लोगों की आने वाली पीढ़ी पर क्या असर पड़ेगा, उनके क्या संस्कार बनेंगे, आपकी संस्कृति स्थायी कैसे रह सकेगी? जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से महान् पुण्य होता है।

डीमापुर की ओर

माताजी की प्रेरणा से कूकनवाली निवासी श्री सूरजमलजी बड़जात्या ने अपने घर में दिनांक ४-३-७६ को चैत्यालय स्थापित किया। उस समय डेरगाँव के श्री माँगीलाल जी पाटनी भी उपस्थित थे। उन्होंने भी डेरगाँव में अपने घर पर चैत्यालय स्थापित करने की भावना व्यक्त की। वहां भी आर्यिका संघ की उपस्थिति में दिनांक ६-३-७६ को चारित्र शुद्धि विधान सम्पन्न होकर चैत्यालय स्थापित किया गया, डेरगांव में श्रावकों के तीन घर हैं।

जोरहाट में स्वागत समारोह

डेरगांव से विहार कर संघ जोरहाट पहुँचा। एक ही स्थान पर दिगम्बर, श्वेताम्बर, वैष्णव आदि मन्दिर व धर्मशालाएँ बनी हैं। दिगम्बर जैनों के बीस घर हैं। श्री सागरमलजी बाकलीवाल ने चारित्र-शुद्धि व्रत विधान कराया। केश लोच समारोह

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी

[संक्षिप्त जीवन झाँकी]

जन्म	:	वि० सं० १९६२
जन्म स्थान	:	डेह–नागौर (राजस्थान)
जन्म नाम	:	मोहनी बाई
जाति	:	खण्डेलवाल
गोत्र	:	पाटनी
वर्ण	:	वैश्य
पिता श्री	:	चन्दनमल पाटनी
मातु श्री	:	जड़ाव बाई
विवाह	:	वि० सं० १९७५, ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष, वारसोई
पति श्री	:	चम्पालाल सेठी
वैधव्य	:	वि० सं० १९७५, पौष कृष्ण पक्ष
संयम ग्रहण	:	**द्वितीय प्रतिमा :** सुजानगढ़ वि० सं० १९९१
	:	**सप्तम प्रतिमा :** नागौर
क्षुल्लिका दीक्षा	:	आश्विन शुक्ला १० वि० सं० २००० कसावखेड़ा (महाराष्ट्र)
क्षुल्लिका दीक्षा गुरु	:	आ० क० श्री चन्द्रसागरजी महाराज
आर्यिका दीक्षा	:	आश्विन शुक्ला १० वि० सं० २००६, नागौर
आर्यिका दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज
अद्यावधि कुल वर्षा योग	:	४० चालीस
विहार प्रान्त	:	राजस्थान, विहार, कर्णाटक, महाराष्ट्र, वंगाल,
	:	म० प्र०, आसाम, उड़ीसा, नागालैण्ड

गोलाघाट में स्वागत जुलूस

यहां दक्षिण प्रान्त के समान जवरीलालजी और लादूलालजी बाकलीवाल दोनों भाइयों के घरों में चैत्यालय हैं। तीन और घर हैं श्रावकों के। यहां एक सप्ताह ठहरे। यहां से लाहूजान, स्वरूप पथार, बोकाजान होते हुए संघ विक्रम संवत् २०३३, आषाढ़ शुक्ला चौथ, दि० ३०-६-७६ बुधवार को डीमापुर (नागालैंड) में पहुँचा।

३४ वाँ वर्षायोग :

डीमापुर में जैनाजैन जनता ने संघ का स्वागत वड़े उत्साह से किया। २४ स्वागत द्वार वनाए गए थे; भगवान की सवारी की शोभा अद्भुत थी। अनेक हाथी, घोड़े, वैण्ड आदि सवारी में थे। जयनाद से आकाश गूंज रहा था। अनेक गांवों व शहरों के स्त्री-पुरुष दूर-दूर से आकर स्वागत समारोह में सम्मिलित हुए थे। अजैन लोग काफी प्रभावित हुए। 'सेठी भवन' में संघ का मंगल आरती से अभिनन्दन हुआ। अपार जन समुदाय को आर्यिका माताओं ने सम्बोधित किया। आर्यिकाओं के

डीमापुर में अभूतपूर्व स्वागत

पुरोवाक्

श्री १०५ पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतीजी के इस अभिनन्दनग्रंथ का पुरोवाक् लिखते हुए मैं जिस हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं, उसे प्रकट करना मेरी लेखनी के बाहर है। त्याग-तपस्या के क्षेत्र में जहां जैन साधुओं ने अपनी अप्रतिम शक्ति का उपयोग किया है वहां जैन साध्वियां भी उनसे पीछे नहीं रही हैं। यह बात दूसरी है कि अपनी स्त्री-पर्याय के कारण वे उस सीमा तक नहीं पहुंच सकती जहां तक जैन साधु पहुंच जाता है फिर भी उन्होंने अपनी चरम सीमा तक पहुंचने में सतत प्रयत्न किये हैं। युग के आदि में मोक्षमार्ग का उद्‌घाटन भगवान आदिनाथ ने किया लेकिन इस उद्‌घाटन के प्रयोग में भगवान आदिनाथ की पुत्रियों—ब्राह्मी और सुन्दरी का भी हाथ था। आदिनाथ भगवान के साथ चार हजार राजाओं ने भी दीक्षा ली थी लेकिन वे सब के सब प्राय: पथभ्रष्ट हो गये। यहां तक कि भगवान आदिनाथ का पौत्र मारीच भी भ्रष्ट हो गया किन्तु आदिनाथ की दोनों पुत्रियों ने अन्त तक आदिनाथ भगवान का साथ दिया, इतना ही नहीं बल्कि अपनी त्याग-तपस्या के बल पर वे दोनों साध्वी आर्यिका संघ की गणिनी (प्रधान) बन गई। भगवान आदिनाथ और उनके पुत्रों ने पर्याप्त मात्रा में गृहस्थ-धर्म का उपयोग कर दीक्षा ग्रहण की थी लेकिन ब्राह्मी और सुन्दरी ने विवाह तक भी नहीं किया। अत: कहना होगा कि दोनों कन्याओं के त्याग और वैराग्य में अपेक्षाकृत विशेषता थी। श्रावक-श्राविकाओं में भी देखा गया है कि प्रत्येक तीर्थङ्कर के समवसरण में श्राविकाओं की संख्या श्रावकों से अधिक रहती थी अत: कहना होगा कि धर्म के आचरण में स्त्रियां पुरुषों से पीछे नहीं किन्तु आगे ही रही हैं। भविष्य में भी जब पांचवें काल का अन्त होगा, वहां तक मुनि-आर्यिका रहेंगे और कल्कि राजा जब टैक्स के रूप में मुनि-आर्यिका के प्रथम ग्रास का मूल्य ग्रहण करेगा तब दोनों ही साधु-साध्वी निराहार रह कर समाधिमरण करेंगे। इस तरह हम देखते हैं कि धार्मिक क्षेत्र में मुनि की तरह आर्यिका भी सदा अग्रणी रही है। वर्तमान में भी आर्यिकाओं द्वारा जो धर्म प्रचार हो रहा है वह किसी मुनि से कम नहीं है।

डीमापुर की ओर

रुपई गये, यहां श्रावकों के तीन घर हैं यहाँ से श्यामगुड़ी, मीसा, कोलियावर, जखलावाधा, कुठड़ी, बूढ़ापहाड़, हाथीकुली, कांजीरंगा, मैथोनी होकर बोखाखाट पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के पाँच घर होते हुए भी मन्दिर, चैत्यालय कुछ भी नहीं था। माताजी ने कहा कि जैनों के घर होते हुए भी यहां मन्दिर नहीं है, तब आत्मशान्ति का स्थान कहाँ है? आप लोगों की आने वाली पीढ़ी पर क्या असर पड़ेगा, उनके क्या संस्कार बनेंगे, आपकी संस्कृति स्थायी कैसे रह सकेगी? जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से महान् पुण्य होता है।

जोरहाट में स्वागत समारोह

माताजी की प्रेरणा से कूकनवाली निवासी श्री सूरजमलजी वड़जात्या ने अपने घर में दिनांक ४-३-७६ को चैत्यालय स्थापित किया। उस समय डेरगाँव के श्री माँगीलाल जी पाटनी भी उपस्थित थे। उन्होंने भी डेरगाँव में अपने घर पर चैत्यालय स्थापित करने की भावना व्यक्त की। वहां भी आर्यिका संघ की उपस्थिति में दिनांक ६-३-७६ को चारित्र शुद्धि विधान सम्पन्न होकर चैत्यालय स्थापित किया गया, डेरगांव में श्रावकों के तीन घर हैं।

डेरगांव से विहार कर संघ जोरहाट पहुँचा। एक ही स्थान पर दिगम्बर, श्वेताम्बर, वैष्णव आदि मन्दिर व धर्मशालाएँ बनी हैं। दिगम्बर जैनों के वीस घर हैं। श्री सागरमलजी वाकलीवाल ने चारित्र-शुद्धि व्रत विधान कराया। केश लोंच समारोह

आज परम पूज्य आचार्य धर्मसागरजी और उनके संघ में जो विशेषता है वही विशेषता पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतीजी और उनके संघ में है। ख्याति लाभ, पूजा से परे रह कर ध्यान-अध्ययन में ही माता इन्दुमतीजी, सुपार्श्वमतीजी आदि आर्यिकाओं का समय व्यतीत होता है। जहां तक अनुशासनशीलता की बात है माता इन्दुमतीजी स्वयं शास्त्रों से अनुशासित होकर चलती हैं और उनकी शिष्य-मण्डली माताजी से सदा अनुशासित रहती हैं। असम एवं नागालैण्ड जैसे प्रदेशों में निर्भयता से विहार करने वाला सम्भवतः यह पहला ही संघ है। आपके विहार से वहां जो अभूतपूर्व धार्मिक जागृति हुई है, वह उल्लेखनीय है। आज मुनि आर्यिकाओं की जहाँ पूजा-प्रतिष्ठा, आराधना होती है वहां कुछ बातों को लेकर उनकी आलोचना और निन्दा भी होती है किन्तु यह माता इन्दुमतीजी का संघ है जिसकी पूजा-प्रतिष्ठा, आराधना तो होती है किन्तु निन्दा या आलोचना नहीं होती। इसका स्पष्ट कारण है कि इस संघ में लोकैषणा, आत्मप्रतिष्ठा या किसी प्रकार के अर्थसंचय की भावना नहीं है।

माता इन्दुमतीजी के संघ के दर्शन हमें सबसे पहले गौहाटी (आसाम) में हुए जहां आपका पहली बार पदार्पण हुआ था। वहां सुपार्श्वमती माताजी के सर्वोदयी भाषणों को सुन कर हृदय गद्गद हो गया। लोगों से जानकारी हुई कि आप इन्दुमती माताजी की शिष्या हैं और परम विदुषी हैं। हमने मन में कहा कि द्रव्य और भाव दोनों से माता इन्दुमतीजी पार्श्ववर्ती (निकट रहने वाली) होने के कारण आपका सुपार्श्वमती नाम सार्थक है। दूसरी बार माताजी के दर्शन सम्मेदशिखर तीर्थ पर शिक्षण शिविर में भाग लेने के अवसर पर हुआ। एक सप्ताह तक बराबर आपके नय-सुसंस्कृत भाषणों को सुनने का सौभाग्य मिला। माता सुपार्श्वमती जैसी शिष्या जिनके संघ में विराजमान हैं, उस संघ की गरिमा का क्या कहना है!

प्रस्तुत अभिनन्दनग्रन्थ में जो सामग्री दी गई है वह सुन्दर सुवाच्य और सुसज्जित है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही परम पूज्य आचार्य धर्मसागरजी महाराज का आशीर्वाद तो पूज्य माता इन्दुमतीजी के सिर पर छत्र के समान है। माताजी के सम्बन्ध में आचार्यश्री के ये शब्द "इन्दुमतीजी देव शास्त्र गुरु की भक्त हैं। अपने नियमों का कदापि उल्लंघन नहीं करती हैं; सतत संयमसाधना में संलग्न रहती हैं........" सदा के लिये एक प्रमाणपत्र के समान है। परम पूज्य आचार्य महाराज खरे वक्ता, स्पष्टवादी हैं; किसी लगाव या विलगाव के कारण किसी की निन्दा-प्रशंसा नहीं करते। जो जैसी है, उसको उसी रूप में कहते हैं। आपको स्वयं को जब अभिवन्दनग्रंथ भेंट किया गया तब उसको तो आपने लिया ही नहीं; साथ ही उन साधुओं की आलोचना भी की जो किसी धार्मिक कार्य को आगे कर समाज से चंदा चिट्ठा करते हैं, मन्दिर तीर्थ आदि बनवाते हैं, ग्रन्थादि छपाते हैं। ऐसा निस्पृह और निरीह साधु यदि अपनी वीतरागता की छाया में किसी की प्रशंसा या आलोचना करता है तो निःसन्देह वह सत्य है। शास्त्रों में लिखा है—"वक्तुः प्रामाण्यात् वचनस्य प्रामाण्यम्" अर्थात्

रुपई गये, यहां श्रावकों के तीन घर हैं यहाँ से श्यामगुड़ी, मीसा, कोलियावर, जखलावाधा, कुठड़ी, बूढ़ापहाड़, हाथीकुली, कांजीरंगा, मैथोनी होकर वोखाखाट पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के पाँच घर होते हुए भी मन्दिर, चैत्यालय कुछ भी नहीं था। माताजी ने कहा कि जैनों के घर होते हुए भी यहां मन्दिर नहीं है, तव आत्मशान्ति का स्थान कहाँ है? आप लोगों की आने वाली पीढ़ी पर क्या असर पड़ेगा, उनके क्या संस्कार वनेंगे, आपकी संस्कृति स्थायी कैसे रह सकेगी? जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से महान् पुण्य होता है।

डीमापुर की ओर

माताजी की प्रेरणा से कूकनवाली निवासी श्री सूरजमलजी वड़जात्या ने अपने घर में दिनांक ४-३-७६ को चैत्यालय स्थापित किया। उस समय डेरगाँव के श्री माँगीलाल जी पाटनी भी उपस्थित थे। उन्होंने भी डेरगाँव में अपने घर पर चैत्यालय स्थापित करने की भावना व्यक्त की। वहां भी आर्यिका संघ की उपस्थिति में दिनांक ६-३-७६ को चारित्र शुद्धि विधान सम्पन्न होकर चैत्यालय स्थापित किया गया, डेरगांव में श्रावकों के तीन घर हैं।

जोरहाट में स्वागत समारोह

डेरगांव से विहार कर संघ जोरहाट पहुँचा। एक ही स्थान पर दिगम्वर, श्वेताम्वर, वैष्णव आदि मन्दिर व धर्मशालाएँ वनी हैं। दिगम्वर जैनों के वीस घर हैं। श्री सागरमलजी वाकलीवाल ने चारित्र-शुद्धि व्रत विधान कराया। केश लोंच समारोह

वक्ता की प्रामाणिकता से ही वचनों में प्रामाणिकता आती है। वीतरागतायुक्त व्यक्तित्व ही वक्ता की प्रामाणिकता होती है। आचार्य धर्मसागरजी की वीतरागता में किसको सन्देह हो सकता है? अतः परम पूज्य आचार्यश्री ने जो कुछ इन्दुमती माताजी के सम्बन्ध में कहा है वह निःसन्देह प्रमाणभूत है।

ग्रंथ में माता सुपार्श्वमतीजी ने माता इन्दुमतीजी का जो जीवनवृत्त दिया है वह पठनीय और मननीय है। लोक में कहावत है—"जो होता है वह अच्छे के लिये होता है" मोहनी (माता इन्दुमती का पूर्व नाम) कन्या का दुःखद वैधव्य आर्यिका इन्दुमती रूप में परिणत हो गया, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी। वैधव्य का वह समय सभी लोगों के लिये दयनीय था और आज संयमसाधना के समय माता इन्दुमतीजी के लिये वे सभी लोग दयनीय हैं।

माता इन्दुमतीजी के बारे में कहा जाता है कि वे कठोर अनुशासनशील हैं फिर भी मातृहृदय से अछूती नहीं हैं गणिनी पद वस्तुतः बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण होता है; वह उत्तरदायित्व कठोर अनुशासन के बिना पूर्ण नहीं होता। अतः यम-नियमादि पालन कराने में कठोरता होना स्वाभाविक है फिर भी माताजी का हृदय दयाप्लावित रहता है, यह उनकी विशेषता है। वस्तुतः महान् आत्माओं में यह विशेषता होनी ही चाहिए। 'उत्तररामचरित' में रामचन्द्रजी के विषय में ग्रंथकार ने लिखा है कि—

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति॥

अर्थात् लोकोत्तर महापुरुष वज्र से भी अधिक कठोर एवं पुष्प से भी अधिक कोमल होते हैं अतः उनके हृदय को कौन जान सकता है। यह सूक्ति उस समय कही गई है जब रामचन्द्रजी सीताजी को घर से निकालने पर आमादा थे। यह वही रामचन्द्रजी थे जो सीता के अपहरण के बाद उनके वियोग के दुःख से वृक्षों से पूछते फिरते थे कि क्या तुमने मेरी सीता को देखा है? कहां इतना स्नेह और कहां उतनी कठोरता। यही तो लोकोत्तरता है। पूज्य माता इन्दुमतीजी भी इसी प्रकार कठोर और मृदु हृदया दोनों ही हैं अतः उनकी लोकोत्तरता में किसको सन्देह हो सकता है!

माता इन्दुमतीजी के संघ में माता सुपार्श्वमतीजी का सहयोग तो सोने में सुगन्ध की तरह है। भगवान महावीर के समवसरण में जो वर्चस्व गौतम गणधर का था वही वर्चस्व माता सुपार्श्वमती का माता इन्दुमतीजी के संघ में है। गौतम गणधर के अभाव में ६६ दिन तक जन-साधारण का दुर्भाग्य रहा कि महावीर की दिव्यध्वनि उनको नहीं सुनाई दी, ठीक इसी प्रकार अगर संघ में माता सुपार्श्वमती न होती तो हम सभी लोग माता इन्दुमतीजी की गरिमा को समझ नहीं पाते। आज माता इन्दुमतीजी के संघ का जो कुछ गौरव है निःसन्देह उसकी आधारभूत माता

गोलाघाट में स्वागत जुलूस

यहां दक्षिण प्रान्त के समान जवरीलालजी और लादूलालजी वाकलीवाल दोनों भाइयों के घरों में चैत्यालय हैं। तीन और घर हैं श्रावकों के। यहां एक सप्ताह ठहरे। यहां से लाहूजान, स्वरूप पथार, बोकाजान होते हुए संघ विक्रम संवत् २०३३, आषाढ़ शुक्ला चौथ, दि० ३०-६-७६ बुधवार को डीमापुर (नागालैंड) में पहुँचा।

३४ वाँ वर्षायोग :

डीमापुर में जैना-जैन जनता ने संघ का स्वागत बड़े उत्साह से किया। २४ स्वागत द्वार बनाए गए थे; भगवान की सवारी की शोभा अद्भुत थी। अनेक हाथी, घोड़े, बैण्ड आदि सवारी में थे। जयनाद से आकाश गूंज रहा था। अनेक गांवों व शहरों के स्त्री-पुरुष दूर-दूर से आकर स्वागत समारोह में
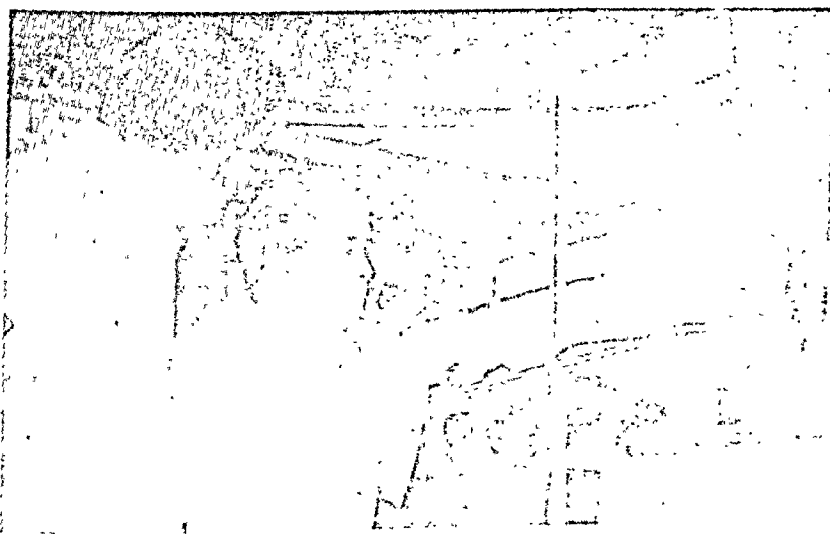
डीमापुर में अभूतपूर्व स्वागत

सम्मिलित हुए थे। अजैन लोग काफी प्रभावित हुए। 'सेठी भवन' में संघ का मंगल आरती से अभिनन्दन हुआ। अपार जन समुदाय को आर्यिका माताओं ने सम्बोधित किया। आर्यिकाओं के

सुपार्श्वमतीजी है। जब यह कहा जाता है कि माता इन्दुमतीजी का संघ आया है तो तुरन्त दृष्टि माता सुपार्श्वमती की ओर चली जाती है और अब तो माता इन्दुमती एवं माता सुपार्श्वमतीजी में इतना अभेद हो गया है कि लोगों में कोई माता इन्दुमतीजी का संघ कहता है तो कोई माता सुपार्श्व-मतीजी का संघ कहता है। माता सुपार्श्वमतीजी आर्यिका जगत् में जहां शीर्षस्थ विदुषी हैं, वहीं उनकी प्रवचन शैली भी बेजोड़ है। आपका नाम सुनते ही श्रोताओं की भीड़ उमड़ पड़ती है। शङ्का-समाधान में भी आप विचक्षण हैं। वास्तव में, माता इन्दुमतीजी एवं माता सुपार्श्वमतीजी आज चांद-सूर्य की तरह धार्मिक जगत् में प्रकाश विकीर्ण कर रही हैं। इन्दुमतीजी तो नाम से भी 'इन्दु' अर्थात् चन्द्रमा हैं; अन्तर इतना ही है कि चन्द्रमा सकलङ्क है और माता इन्दुमतीजी पूर्णतया कलङ्कहीन हैं।

ग्रन्थ में माता इंदुमतीजी संघ के ३९ वर्षायोग—चातुर्मासों की चर्चा है। सभी वर्षायोगों में माताजी द्वारा किये गये धर्म प्रचार का अद्भुत वर्णन है। माताजी की अद्भुत तपः साधना, धर्म का प्रभाव और प्रचार तथा अनेक अतिशय-चमत्कारों का बड़ा रोचक और प्रभावी उल्लेख किया गया है; जिसे पढ़ कर स्वतः ही धर्म की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। एक व्यन्तर ने किस प्रकार संघ की रक्षा की, वह रात भर सिपाही की पोषाक पहन कर बैठा रहा और प्रातः काल होते ही कैसे गायब हो गया इत्यादि बड़ा रोचक एवं हृदयग्राही प्रसङ्ग है। आसाम, नागालैण्ड आदि प्रदेशों में जहां कभी दिगम्बर साधुओं का विहार नहीं हुआ, वहां वर्षों तक विहार कर माता इन्दुमती जी के संघ ने एक नये इतिहास को जन्म दिया है। सच तो यह है कि धर्मप्रचार और उसका स्थायित्व आज आर्यिका इन्दुमती माता जैसे संघों से ही सम्भव है जहां धर्मप्रचार में स्वार्थ का कोई लगाव नहीं है; न धन एकत्र करने की हाय-हाय है, न पद ग्रहण की अभिलाषा है, न किसी सभा-संस्था के निर्माण की कामना है, न किसी जुलूस या गाड़ियों को इधर-उधर दौड़ाने की इच्छा है। कुछ लोग कहा करते हैं कि यदि उक्त कामों को भी किया जाए तो इसमें क्या हानि है, आखिर जो संस्थाओं का निर्माण करते हैं या चन्दा-चिट्ठा करते हैं तो धर्म के लिये ही तो करते हैं, अपने लिये तो करते नहीं फिर क्या नुकसान है ? ऐसे लोगों से हमारा कहना है कि यदि यह धर्म के लिये किया जाता है तो ये लोग फिर अष्ट द्रव्यों से भगवान की पूजा आदि क्यों नहीं करते ? क्यों नहीं भगवान का अभिषेक करते ? यदि यह कहा जाय कि इसमें आरम्भ होता है तो इन संस्थाओं के निर्माण में मन्दिर आदि के बनवाने में भी आरम्भ होता है फिर इसको क्यों किया जाता है ? आरम्भ के अतिरिक्त चन्दा-चिट्ठा करके संस्था आदि निर्माण करने से परिणाम भी संक्लिष्ट होते हैं; इनके रख-रखाव में आर्तध्यान भी होता है और रौद्रध्यान भी। कल्पना कीजिए—किसी ने हजार या लाख रुपये का दान बोला। उस दान का पैसा मुद्दतों तक बार-बार मंगाने पर भी नहीं आता तो स्वतः ही आर्तध्यान होना स्वाभाविक है और कोई-कोई तो दान बोल कर भी बाद में इन्कार कर देता है तो उस पर क्रोध भी आता है अतः रौद्रध्यान भी सम्भव है। परम पूज्य आचार्य धर्मसागरजी

के शब्दों में चन्दा-चिट्ठा करने वाले साधु निःसन्देह साधुता से बहुत पीछे हैं। लेकिन प्रसन्नता इस बात की है कि पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतीजी के संघ में इस प्रकार का कोई प्रसंग ही नहीं है। वहां तो एक वीतरागता ही साध्य है। अपने इसी साध्य की सिद्धि के लिये माता इन्दुमतीजी, माता सुपार्श्वमतीजी, माता विद्यामतीजी, सुप्रभामतीजी आदि साध्वियां एक आदर्श मार्ग को अपना रही हैं। उनके संघ से आज सर्व साधारण का जो उपकार हो रहा है वह असाधारण है। उस उपकार का बदला मात्र उनके अभिनन्दनग्रन्थ से नहीं चुकाया जा सकता। अगर उपकार का बदला ही चुकाना है तो हमें उनके बताये हुए मार्ग का ही अनुसरण करना होगा और वह मार्ग है त्याग मार्ग। पुत्र पिता के चरण तो छूता है पर पिता की आज्ञा का अनुसरण नहीं करता तो उसे सुपुत्र कैसे कहा जा सकता है? इसलिये वास्तविक स्थिति तो यह है कि हम सदाचार की ओर आगे बढ़ें।

जहां तक इन्दुमती माताजी के अभिनन्दनग्रन्थ का सम्बन्ध है, वह उनके प्रति भक्ति का ही एक प्रारूप है। इस भक्ति के रूप में हम माताजी के लिये ऐसे अनेक अभिनन्दनग्रंथ समर्पित करें तो भी कम हैं। वास्तव में तो यह ग्रंथ आज से वर्षों पहले ही समर्पण करना था लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सभी जब अनुकूल होते हैं तभी कार्य बनता है। इस सम्बन्ध में श्री डूंगरमलजी सबलावत से मेरी बात हुई थी। वे कहने लगे कि "बहुत पहले निकलना तो दूर रहा, अभी निकल गया, यह क्या कम है। इस अभिनन्दनग्रन्थ के प्रति स्वयं माता इन्दुमतीजी इतनी उपेक्षा रखती हैं कि संघ से पत्र का उत्तर मिलना तो दूर अनेक बार व्यक्तिगत रूप से जाने के बाद भी सूचनाएं पूरी नहीं मिलतीं; फिर जैसे-तैसे ज़ोड़-तोड़ मिला कर हम कोई बात पूरी कर पाते हैं।" इससे मुझे यह प्रतीत हुआ कि किसी निस्पृह साधु का अभिनन्दनग्रंथ निकालना भी बड़ा कठिन है।

श्री डूंगरमलजी सबलावत कठोर परिश्रमी और लगन के पक्के हैं। अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी आपने इस ग्रंथ को जिस सुन्दरता के साथ निकाला है, वह प्रशंसनीय है। ग्रंथ के पांच खण्ड हैं—(१) आशीर्वचन आदि (२) चित्र माला (३) जीवनवृत्त (४) लेखमाला (५) प्रकीर्णक। सभी खण्डों में उपयोगी सामग्री है। ग्रंथ के सम्पादक डा० चेतनप्रकाशजी पाटनी का प्रयास भी सराहनीय है। उनकी देख-रेख में ग्रंथ का सम्पादन हुआ है। प्रकाश्य सामग्री को आपने ग्रंथ में अच्छी तरह संजोया है। लेखों का चयन भी सुन्दर है।

पूज्य माता इंदुमतीजी को मैं पुनः पुनः नमन करता हूं। उनके आशीर्वाद से अपने आत्म-कल्याण की भावना करता हूं। यह अभिनन्दनग्रंथ माताजी का नहीं किन्तु माताजी के उन गुणों का है जिनका आश्रय लेकर मुझ जैसा पामर प्राणी भी उनके चरणों में आत्मसमर्पण की भावना रखता है।

—डा० लालबहादुर शास्त्री

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती, राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा ।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता, चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरी प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।।
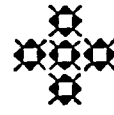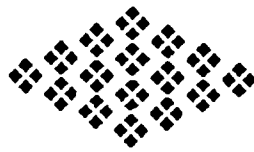
मनुष्य समाज की रचना में पुरुष यदि महत्त्वपूर्ण है तो स्त्री भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। वह नर की जननी है और मातृत्व के आदर्श गौरव को प्राप्त है।

जननी परमाराध्या, जननी परमा गतिः।
जननी देवता साक्षात्, जननी परमो गुरुः॥

'स्त्री का सर्वश्रेष्ठ रूप माता है और सच मानो तो इससे मधुर, इससे सुखकर शब्द, इससे सुन्दर रूपसृष्टि संसार में कोई अन्य नहीं। संसार का समस्त त्याग, समस्त प्रेम, सर्वश्रेष्ठ सेवा, सर्वोत्तम उदारता एक माता शब्द में छिपी पड़ी है।' मातृत्व की इस अद्वितीय विशेषता से ही समाज ने नारी को प्रथम वन्दनीय माना है।

परन्तु विविध संस्कृतियों के इतिहास का अवलोकन करें तो तथ्य कुछ भिन्न ही प्रकट होता है। सर्वत्र नारी को हीन ही स्वीकृत किया गया है। 'बाइबिल' में नारी को 'सब बुराइयों का मूल' और 'शैतान का द्वार' घोषित किया है। 'कुरान' में भी स्त्रियों को उचित स्थान नहीं दिया गया है। मुसलमान बहुविवाह को धर्मसम्मत मानते हैं; पर्दे की प्रथा का श्रेय भी इस्लामी सभ्यता को है। उत्तर कालीन वैदिक परम्परा में भी नारी को गौरवपूर्ण स्थान नहीं मिला, उन्हें धर्मशास्त्र सुनने तक का अधिकार नहीं दिया गया और मनु महाराज ने तो यह घोषणा कर दी कि—

"जननार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवा····।

× × ×

"उत्पादनमपत्यस्य, जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥मनु० ९/२७॥

शङ्कराचार्य ने घोषित किया कि "द्वारं किमेकं नरकस्य ? नारी।"

भगवान महावीर के संघ में अनेकानेक स्त्रियों को दीक्षित देख कर और उनके द्वारा श्राविका, क्षुल्लिका और आर्यिका के व्रतों के अनुष्ठान द्वारा होने वाली धार्मिक उदारता को देख कर शिष्य आनन्द ने अपने गुरु बुद्ध से पूछा कि आप अपने संघ में स्त्रियों को दीक्षित क्यों नहीं करते तो उन्होंने बड़ी आनाकानी की। बाद में जब परिस्थितियों से विवश होकर भिक्षुणीसघ बनाने का आदेश भी दिया तो उसके नियमों में भिक्षुसंघ से भेद भी कर दिये और उन पर कड़ा अनुशासन भी लगा दिया। बुद्ध ने भी स्त्रियों की निन्दा ही की है और पुरुषों को उनसे सचेत रहने का उपदेश दिया है। वस्तुत: उस समय वैदिक संस्कृति का बोलबाला था। उसके खिलाफ प्रवृत्ति करना साधारण काम नहीं था परन्तु तीर्थङ्कर महावीर ने उसे कार्यरूप में परिणत कर नारी का समुद्धार किया। श्रमण संस्कृति में आंशिक रूप से नारी का प्रभुत्व बराबर कायम रहा।

वैदिक संस्कृति की इस संकीर्ण विचारधारा के प्रभाव से यद्यपि श्रमण संस्कृति भी अछूती नहीं रही, इस धर्म के अनुयायियों ने भी आगमों व पुराणादि ग्रंथों में नारी को विषबेल, नरकपद्धति और मोक्ष-मार्ग में बाधक बताया तथापि श्रमण संस्कृति में नारी की धर्म साधना का कोई अधिकार नहीं छीना गया। वे उपचार महाव्रतादि के अनुष्ठान द्वारा आर्यिका जैसे महत्तर पद का पालन करती हुई अपने जीवन को सफल बनाती रही हैं।

भारतीय श्रमण संस्कृति में केवल भगवान महावीर ने ही स्त्री को अपने संघ में दीक्षित कर आत्म-साधना का अधिकार दिया हो, ऐसा नहीं है अपितु अन्य २३ तीर्थङ्करों ने भी अपने-अपने संघ में ऐसा ही किया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि श्रमण संस्कृति में पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी समान धार्मिक अधिकार प्राप्त होते रहे हैं; यहां व्रत धारण करने का जितना अधिकार श्रावक का है उतना ही अधिकार श्राविका का भी।

भगवान आदिनाथ ने अपने पुत्रों के साथ-साथ अपनी दोनों पुत्रियों को भी शिक्षित और सुसंस्कृत बनाया। ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों बहनों ने अङ्कविद्या और अक्षरविद्या तथा अन्य नाना कला-कौशल में दक्षता प्राप्त की थी और अपने भाई भरत की अनुमति से भगवान ऋषभदेव से ही आर्यिकाव्रत की दीक्षा लेकर ज्ञानसाधना की थी। भगवान द्वारा प्रस्थापित किये गये चतुर्विध संघ के आर्यिका संघ की गणिनी आर्यिका ब्राह्मी ही थी। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि जैनधर्म और जैन समाज नारी के विषय में प्रारम्भ से ही उदार था। इसी कारण जैन संस्कृति के प्रारम्भ से ही उच्च-विद्याविभूषित और शीलवती जैन नारियों की परम्परा प्रवहमान है। यदि ऐसा न होता तो जिन कर्मप्राण एवं धर्मप्राण अद्वितीय नारीरत्नों के चरित्रों से जो जैन साहित्य और इतिहास भरा पड़ा है और आज भी जिनका अभाव नहीं है, वह कभी नहीं होता।

नारी अपने जीवन में जिन विविध रूपों में उपस्थित होती है, उनमें महत्त्वपूर्ण है उसका माँ, पत्नी और कन्या या पुत्री का रूप। जननी के गौरव की गाथा तो सबने गाई है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। माँ की ममता, माता का दुलार, माँ का वात्सल्य प्रेम अद्भुत होता है; वह शब्दों में नहीं आंका जा सकता। स्त्री का दूसरा रूप है—पत्नी रूप। वस्तुतः गृहस्थ जीवन नारी के बिना चल ही नहीं सकता—गृहिणी का नाम ही घर है। 'घरनी बिन घर भूत का डेरा'। नर और नारी दोनों परिवार रूपी रथ के पहिए हैं। एक के बिना दूसरे का निर्वाह नहीं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सद्गृहस्थ अपनी गृहस्थी के आदर्श से अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। कन्या का विवाह वयस्क अवस्था में ही किया जाना चाहिए जिससे वह अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से समझ सके। विज्ञपुरुषों ने बालविवाह को सर्वथा अनुत्तरदायी और असंगत कहा है। विवाहोपरान्त कन्या के जन्म से 'स्त्री जाति' की महत्ता का ज्ञान होता है, पुरुष अपनी स्वच्छन्दता भूल जाता है और उसके सामने भी अपनी कन्या को योग्य पति के लिए देने का प्रश्न उपस्थित होता है। कन्या का जीवन नारी के निर्माण का काल है। इस समय बहुत कुछ भार तो माता पर रहता है, कुछ पिता पर भी। सुशिक्षित, सुसंस्कृत कन्या अपने माता-पिता के नाम को उज्ज्वल करती है; बाद में पति के घर पहुंच कर उसका घर समुज्ज्वल करती है। अतः कन्या का गुणवती, शिक्षित और सुसंस्कृत होना नितान्त आवश्यक है। कन्याओं का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा स्वस्थ वातावरण में होने चाहिए। भगवान आदिनाथ ने स्वयं अपनी कन्याओं का लालन-पालन, शिक्षण अपने हाथों से किया था। परिणामस्वरूप वे कन्याएं आदर्श ब्रह्मचारिणी रह कर लोक के समक्ष महान् आदर्श उपस्थित कर गई हैं। इसके अतिरिक्त गृहस्थ मार्ग है जहां मातृत्व का गौरव प्राप्त कर कन्या 'वीर प्रसू' बन सकती है।

संसार के प्रत्येक जीव को अपने शुभ-अशुभ कर्मों को भोगना ही पड़ता है। पत्नी के तीव्र अशुभ कर्मोदय से जब उसका पति दिवङ्गत हो जाता है तो वह 'विधवा' हो जाती है। अब वह क्या करे? प्रायः विधवा के आदर्श को समझने में बड़ी भूल हुई है। कभी उसे जीवित ही पति के शव के साथ जला दिया जाता था; कभी वह स्वयं पति की देह के साथ जल कर 'सती' होती थी। आज भी कभी-कभी ऐसी घटनायें सुनने-पढ़ने में आ जाती हैं। समाज में और परिवार में विधवा को अशुभ, पापिनी, पतिभक्षिणी और न जाने क्या-क्या कहा जाता है। आज तो कुछ तथाकथित समाज सुधारक उसके पुनर्विवाह की भी वकालत करने लगे हैं परन्तु एक बात विचारणीय है कि विवाह तो कन्या का होता है, विधवा का कैसा विवाह? विधवा के विवाह की योजना कर उसके जीवन को आदर्श से गिराना है। भारतीय ललना का यही आदर्श है वह एक पति को छोड़ कर अन्य में पतिभाव कर ही नहीं सकती। अन्य पुरुष का चिन्तन करना पाप ही नहीं नारीत्व का अपमान करना है। सांसारिक सुख तो कुछ काल के लिए इन्द्रिय तृप्ति कर सकते हैं किन्तु आत्मपतन भव-भव को

बिगाड़ता है अतः विधवा स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह पञ्चपरमेष्ठी में दृढ़तापूर्वक भक्ति करते हुए संसार शरीर और भोगों से उदासीनता धारण करे, स्वाध्याय आदि में सन्तोषपूर्वक मन लगा कर अपने जीवन का शेष समय व्यतीत करे—ऐसा धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाली विधवा ही कुल और समाज की गौरव है।

आदिपुराण में जिनसेनाचार्य ने ललितांगदेव की मृत्यु के बाद स्वयंप्रभा की चर्चा एवं चेष्टाओं का चित्रण कर विधवा नारी की क्रियाओं का एक चित्र प्रस्तुत किया है। ललितांगदेव की मृत्यु के बाद स्वयंप्रभा संसार के भोगों से विरक्त होकर आत्मशोधन करने लगी। वह मनस्विनी भव्य जीवों के समान छह माह तक जिनपूजा में उद्यत रही और तदनन्तर सौमनस वन सम्बन्धी पूर्व दिशा के जिन मन्दिरों में चैत्यवृक्ष के नीचे पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए समाधिमरण धारण किया—

षण्मासान् जिनपूजायामुद्यताऽभून्मनस्विनी ॥५५॥
ततः सौमनसोद्यान पूर्वदिग्जिन मन्दिरे ।
मूले चैत्यतरोः सम्यक् स्मरन्ती गुरु पञ्चकम् ॥५६॥
समाधिना कृतप्राणत्यागा प्राच्यौष्ट सा दिवः ॥···५७॥ पर्व ६, आदिपुराण॥

यों नारीजीवन की चरम उन्नति आर्यिका के व्रत ग्रहण करने में है। सीता, आर्यिका के व्रत ग्रहण कर ही १६ वें स्वर्ग को प्राप्त हुई।

यह बड़े गौरव का विषय है कि ब्राह्मी और सुन्दरी से प्रारम्भ हुई यह आर्यिका परम्परा आज भी प्रवहमान है। कई कुमारिकाओं, कई अल्पवयस्क विधवाओं व अन्य नारियों ने इस उत्कृष्टरूप को धारण कर स्व-पर कल्याण किया है। आज भी ऐसी अनेक नारी-विभूतियां हम लोगों के बीच विद्यमान हैं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व, चरित्र और शील से न केवल अपने आप को गौरवान्वित किया है अपितु कुल, समाज, देश, धर्म और संस्कृति की प्रतिष्ठा में भी चार चांद लगाये हैं। निश्चय ही ये वन्दनीय, नमस्करणीय और अभिनन्दनीय हैं।

ऐसी ही वर्तमान दिव्य विभूतियों में से एक हैं—आर्यिका १०५ श्री इंदुमती माताजी जिन्होंने वैधव्य रूप अभिशाप को वरदान सिद्ध किया और जो विगत चालीस वर्षों से आर्यिका के व्रतों का निर्दोपरीत्या पालन कर रही हैं। यही नहीं आपने भारत के उन प्रदेशों में संघ सहित पैदल विहार कर जैन धर्म और जिनवाणी की अभूतपूर्व प्रभावना की है जहां विगत कई शताब्दियों से दिगम्बर जैन साधु-साध्वियों का विहार नहीं हुआ था। आपने सहस्रों नर-नारियों को धर्म के मार्ग में प्रवृत्त किया है और कुछ को अपने ही सदृश संयमारूढ़ किया है। आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज जैसे निर्भीक गुरु

की इस निर्भीक शिष्या ने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व से जैन धर्म, संस्कृति और समाज को गौरवान्वित किया है। इस आधार पर ही अनेक व्यक्तियों एवं अखिल भारतीय स्तर की संस्थाओं के सहयोग से वर्तमान समिति ने आपके अभिनन्दन का निश्चय किया और अभिनन्दनग्रंथ की रूपरेखा तैयार की।

ग्रंथ में पांच खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में आशीर्वचन, शुभ कामना, संस्मरण और काव्याञ्जलि स्वरूप शताधिक महत्त्वपूर्ण उद्गार हैं। भक्तों ने आर्यिकाश्री के प्रति भावभीनी विनयाञ्जलियां प्रस्तुत की हैं तो कवियों ने काव्याञ्जलियां; सन्तों और मुनियों ने अपने आशीर्वचन प्रेषित किये हैं तो सम्पर्क में आने वाले नर-नारियों ने आर्यिकाश्री के व्यक्तित्व और शील के सम्वन्ध में महत्त्वपूर्ण संस्मरण संजोए हैं। द्वितीय खण्ड चित्रमाला में आर्यिकाश्री से सम्वन्धित विविध अवसरों व विविध स्थानों के भावपूर्ण एवं क्रियानिदर्शक चित्र हैं जो घटनाओं को मूर्तिमान् करने में सहायक हैं। तृतीय खण्ड जीवनवृत्त इस ग्रंथ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जो पूरा का पूरा आर्यिकाश्री सुपार्श्वमती माताजी की लेखनी से प्रसूत है। यह इस ग्रन्थ की विशिष्टता एवं अभिनवता है। इसमें पूज्य आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी के जीवन के विविध पक्षों का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह कार्य उन्हीं की अन्यतम शिष्या सुपार्श्वमती माताजी ने सम्पन्न किया है जो विगत ३३ वर्षों से उनके सान्निध्य में रह रही हैं अतः यह वर्णन और भी अधिक विश्वसनीय हो गया है। पाठक जव इस रोचक वर्णन को पढ़ेगा तो उसे लगेगा कि वह भी आर्यिकाश्री के विहार में कहीं सहयात्री तो नहीं रहा

पूज्य सुपार्श्वमतीजी ने इस जीवनवृत्त में चरितनायिका के साथ-साथ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के वाद की साधु-साध्वी परम्परा पर भी प्रासंगिक रूप से प्रकाश डाला है और जहां आवश्यक समझा है, वहां संक्षिप्त परिचय भी लिखा है। इसके अतिरिक्त आर्यिकाश्री के वर्ष-दर-वर्ष विहार स्थलों, चातुर्मासस्थलों के माध्यम से लेखिका ने हमें सम्पूर्ण-जैनतीर्थों की महत्त्वपूर्ण यात्रा भी करा दी है। तीर्थयात्रियों के लिए यह जीवनवृत्त स्वतंत्ररूप से मार्गदर्शक (गाइड) का काम भी कर सकता है। थोड़े शब्दों में कहूं तो चरितनायिका के जीवन की उपलब्धियों का आकलन करते हुए विदुषी माताजी सुपार्श्वमताजी ने हमें जङ्गम और जड़ सभी तीर्थों की निरापद यात्रा करने का सौभाग्य प्रदान किया है जिनके पुण्यस्मरण से ही भक्त पापों से छूटता है। यह खण्ड इस ग्रंथ का प्राण है जिसके लिए लेखिका कोटि-कोटि वधाई की पात्र हैं। यही भावना है कि पूज्य माताजी अपनी वाणी और लेखनी से जिनवाणी के मर्म को सरल रूप में प्रकट करती रहें जिससे जन सामान्य लाभ उठा सके। चतुर्थ खण्ड लेखमाला में दस लेख नारी जीवन के विविध पक्षों पर सुधी लेखकों द्वारा लिखे गए हैं। श्रावक धर्म, संयम तथा व्रत धारण की महत्ता को प्रकट करने वाले लेख भी हैं। दो निवन्ध शोधपरक हैं। पण्डिता सुमतिवाईजा ने पूज्यपाद कृत समाधिशतक पर समीक्षात्मक निवन्ध प्रस्तुत किया है।

आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज का 'शुभोपयोग' शीर्षक निवन्ध संक्षिप्त किन्तु सारगर्भ है। आर्यिका ज्ञानमतीजी का लेख 'समयसार में व्यवहारनय' व्यवहारनय की उपयोगिता और महत्ता को दर्शाता है।

अन्तिम प्रकीर्णक खण्ड में चरितनायिका के जन्मस्थान—'डेह' के जिनायतनों का वर्णन करने वाला एक लेख है तथा मंत्र-तंत्र विशेषज्ञा आर्यिका सुपार्श्वमतीजी के णमोकार मंत्र, ऋषिमण्डल यंत्र और विजयपताका यंत्र से सम्वन्धित तीन संक्षिप्त परिचयात्मक लेख हैं। रुचिशील श्रावकों के लिये ये उपयोगी सिद्ध होंगे।

सम्पादन में मेरी दृष्टि यही रही है कि ग्रन्थ माताजी के व्यक्तित्व के अनुरूप सरल और सहज वने तथा वह सामान्यजन के लिये उपयोगी हो अतः गुरु-गम्भीर विषयों से सम्वन्धित लेखों को मैं इसमें स्थान नहीं दे पाया हूं। इसके लिये मैं उन लेखकों से क्षमा चाहता हूं जिनकी कृतियों को अपनी सीमाओं के कारण मैं इसमें समाहित नहीं कर सका हूं। वहुत देर से आए अनेक संस्मरणों व भावाञ्जलियों को भी सम्मिलित नहीं किया जा सका है, इसका मुझे खेद है। कतिपय संस्मरणों व लेखों को संक्षिप्त भी करना पड़ा है जिसके लिए मैं सम्वद्ध महानुभावों से क्षमायाचना करता हूँ।

सम्पादन कार्य में मुझे पूज्य आर्यिकाश्री सुपार्श्वमती माताजी तथा प्रवन्ध सम्पादक श्री डूंगरमलजी सवलावत का प्रभूत सहयोग सम्प्राप्त हुआ है, इसके लिये मैं उनका अतीव आभारी हूँ। पूज्य आर्यिकाश्री ने ग्रन्थ के विविध खण्डों के लिये न केवल अपनी लेखनी से सामग्री ही जुटाई है अपितु सम्पूर्ण ग्रन्थ का स्वयं अवलोकन कर व उचित मार्गदर्शन कर मेरे कार्य को अत्यन्त सहज कर दिया है। मैं उनका चिर कृतज्ञ हूं।

ग्रन्थ के लिये सामग्री-संकलन हेतु श्रीयुत डूंगरमलजी सवलावत पिछले कई वर्षों से प्रयास कर रहे थे। ग्रंथ प्रकाशन योजना वनती-विगड़ती रही परन्तु उनकी दृढ़ता रंग लाई और यह काम अव सफल हो रहा है। ग्रन्थ सम्वन्धी सारा पत्राचार आपने ही किया है, अनेक लोगों से व्यक्तिगत सम्पर्क भी किया है तथा इस सम्वन्ध में अनेक स्थानों की यात्राएं भी की हैं। यद्यपि आपका स्वास्थ्य अव ठीक नहीं रहता परन्तु आपकी निष्ठा मूर्तिमान हो सकी है इसलिये आपको वड़ा सन्तोष है। सवलावतजी के माध्यम से ग्रन्थ के प्रकाशकों ने ग्रन्थ सम्पादन का गुरुतर उत्तरदायित्व मुझे दिया इसके लिए मैं सभी सम्वद्ध महानुभावों का अत्यन्त आभारी हूं। सवकी देवशास्त्रगुरु भक्ति निरन्तर वृद्धिगत हो, यही कामना करता हूँ। मेरे अनुरोध पर जैन जगत् के प्रसिद्ध विद्वद्वर्य, पण्डितरत्न, व्याख्यानवाचस्पति डॉ० लालवहादुरजी शास्त्री एम० ए०, पीएच० डी० साहित्याचार्य, न्याय-काव्य तीर्थ ने व्यस्त रहते

हुए भी ग्रन्थ का पुरोवाक् लिख कर मुझ पर जो अनुग्रह किया है उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। उन्हें अपनी विनम्र प्रणति निवेदन करता हूँ।

ग्रन्थ के मुद्रक श्रीयुत पांचूलालजी जैन, संचालक, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज–किशनगढ़ भी अतिशय धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने विद्युत सम्बन्धी कई व्यवधानों के बावजूद ग्रन्थ को सुन्दर और सुरुचिपूर्ण ढंग से मुद्रित कर समय पर प्रकाशित करने में सहयोग दिया।

वस्तुतः यह सम्पूर्ण ग्रन्थ उक्त सभी महानुभावों के सुष्ठु सहयोग का सुफल है, इसके लिये वे सभी हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। यदि इसमें कोई अपूर्णता या त्रुटि रह गई है तो वह मेरी है। इसके लिए मैं सुधी पाठकों से क्षमा याचना करता हूँ।

अन्त में, परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी, श्री सुपार्श्वमती माताजी, श्री विद्यामती माताजी और श्री सुप्रभामती माताजी के चरण कमलों में सविनय वन्दामि निवेदन करता हुआ यही भावना भाता हूँ कि—

जब लौं नहीं शिव लहूं, तब लौं देहु यह धन पायना।
सत्सङ्ग, शुद्धाचरण, श्रुत अभ्यास, आतम-भावना ॥

इत्यलम्

चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक

खण्डानुक्रम

※ आशीर्वचन, अभिवादन, संस्मरण, काव्याञ्जलि

※ चित्रमाला

※ जीवनवृत्त

※ लेखमाला

※ प्रकीर्णक

कहां / क्या

प्रथम खण्ड : आशीर्वचन, शुभकामना, संस्मरण–काव्यांजलि

द्वितीय खण्ड : चित्रमाला

तृतीय खण्ड : जीवनवृत्त

पंचम खण्ड : प्रकीर्णक

परम पूज्य पट्टाधीश आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज का

शुभाशीर्वाद

आर्यिका इन्दुमतीजी से हमारा परिचय आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज के समय से है। तब मैंने क्षुल्लक दीक्षा ले ली थी। इन्दुमतीजी देवशास्त्र-गुरु की परमभक्त हैं। अपने नियमों का कदापि उल्लंघन नहीं करती हैं। सतत संयम साधना में संलग्न रहती हैं। अपने छोटे से संघ को साथ लेकर आपने देश के विभिन्न प्रान्तों में जैनधर्म की जो अद्भुत प्रभावना की है वह चिरस्मरणीय रहेगी। माताजी अपनी संयम साधना में रत रह कर इसी तरह अनवरत भव्य जीवों को उद्बोधन देती रहें और आशातीत सफलता प्राप्त करें— यही हमारा आशीर्वाद है।

परम पूज्य महान् तपस्वी आचार्य १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज का

आशीर्वाद

संघ नायिका आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी ने संघ सहित जगह-जगह पर अहिंसा, त्याग, सत्य, सदाचार का उपदेश देकर प्राणियों का कल्याण किया है। आप इसी प्रकार धर्म की प्रभावना करती रहें।

आप दीर्घायु हों—यही आशीर्वाद है।

प्रेषक : **संघसंचालिका ब्र० मैनाबाई**

परम पूज्य १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज का

आशीर्वाद

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी ने पहले १०८ आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज के साथ रह कर धार्मिक साहस के साथ वैयावृत्य आदि कार्य सम्पन्न किए थे। अब तो १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी उनकी पूर्णपरिचर्या कर रही हैं। इन्दुमतीजी ने संघस्थ आर्यिकाओं—सुपार्श्वमती, विद्यामती, सुप्रभामती—के साथ आसाम प्रान्त में विहार कर धर्म की प्रभावना की है। वे इसी प्रकार जैन शासन की प्रभावना करती रहें, ऐसी कामना है।

धर्म-प्रभावना करती हुई श्री १०५ आर्यिका इन्दुमतीजी अपने लक्ष्य-समाधि की सिद्धि कर, स्त्री-लिंग छेद कर आगे मुक्ति प्राप्त करें, यही आशीर्वाद है।

प्रेषक : **संघसंचालिका ब्र० चित्राबाई**

पूज्य १०८ गणधर आचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज के

आशीर्वचन

यह दिगम्बर जैन समाज का परम सौभाग्य है कि जैनधर्म-प्रभावना रत माताजी श्री १०५ इन्दुमतीजी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

आपके संघ में श्री सुपार्श्वमती, विद्यामती, सुप्रभामती सभी परम विदुषी हैं। आपके द्वारा समस्त भारत में खूब प्रभावना हो रही है; आगे भी आपके द्वारा प्रभावना होती रहे।

आप शतायुष्क हों, ऐसा हमारा आशीर्वाद है।
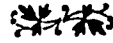
* शुभ कामना *

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अनुभवी और वयोवृद्ध आर्यिका-रत्न हैं। उनका जितना भी अभिनन्दन किया जाए, वह थोड़ा है। उनका स्वाध्याय-प्रेम और चरित्र-निष्ठा सदा प्रशंसनीय है। आप युग-युगों तक अपने ज्ञान और चारित्र के द्वारा समाज को लाभान्वित करती रहें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

—आर्यिका ज्ञानमती

*

परम पूज्य (स्व०) १०८ मुनि श्री सन्मतिसागरजी महाराज का

卐 आशीर्वाद 卐

आर्यिका इन्दुमतीजी वहुत पुरानी दीक्षित हैं। क्षुल्लिका-दीक्षा श्री १०८ मुनि चन्द्र-सागरजी से ली और आर्यिका-दीक्षा आचार्य श्री १०८ श्री वीरसागरजी महाराज से ली। हमारा उनका वहुत पुराना सम्बन्ध है। श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज का विहार उज्जैन की तरफ हो रहा था, उस समय आप ब्रह्मचारिणी थी, मैं भी दूसरी प्रतिमा धारक श्रावक था। आपका हमारे से अधिक स्नेह था।

वहुत दिनों के पश्चात् आपका विहार हमारे प्रान्त में हुआ। मैं उस समय ठिकाने राजमहल में सर्विस करता था। मेरे घर माताजी का आहार हुआ, उस समय मैं अपने हाथ से रोटी वनाता था। माताजी का विहार नासरदा, सांपला की तरफ हुआ और वहुत प्रेरणा के साथ माताजी का चातुर्मास टोडारायसिंह में हुआ।

इस चातुर्मास में धर्मप्रभावना अधिक रही और कई व्यक्ति व्रती वने और कितनी ही वाइयाँ व्रती वनीं। उनमें से सौ० गुलाववाई ने ब्रह्मचर्य के व्रत लिये अर्थात् ब्रह्मचारिणी वनी, आज वह आर्यिका शान्तिमती के नाम से संघ में साथ है। यह सव प्रभाव आर्यिका इन्दुमतीजी का है। हमको उस समय दूसरी प्रतिमा के व्रत थे, पांचवीं प्रतिमा के व्रत माताजी से ही लिये। तत्पश्चात् नागौर में माताजी का चातुर्मास हुआ। मैं भी दर्शनार्थ वहां गया था। चातुर्मास में सिद्धचक्रविधान वड़ी प्रभावना के साथ हुआ।

माताजी ने श्री १०८ आचार्य वीरसागरजी से आर्यिका के व्रत धारण किये, मैं उस समय ब्रह्मचारी था। उसके वाद आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी, इन्दुमतीजी के साथ हो गई। सुपार्श्वमतीजी की दीक्षा जयपुर खानियाँ में हुई थी, उसके दो दिन पहिले हमारी और श्रुतसागरजी महाराज की दीक्षा हुई थी।

श्री १०५ आर्यिका इन्दुमतीजी और सुपार्श्वमतीजी माताजी ने अनेक प्रान्तों में भ्रमण करके धर्म की वहुत प्रभावना की है। यहां तक कि आसाम और डीमापुर जहां किसी भी साधु का विहार आज तक नहीं हुआ, ऐसे प्रान्त में धर्म की खूव प्रभावना की। जगह-जगह विम्वप्रतिष्ठा और वेदीप्रतिष्ठाएँ हुईं और अव भी गिरिडीह और कलकत्ता की तरफ माताजी का विहार हो रहा है। जगह-जगह प्रभावना हो रही है।

माताजी का अभिनन्दन ग्रन्थ छप रहा है। यह वहुत प्रसन्नता की वात है। माताजी के लिये हमारा 'समाधिरस्तु' शुभ आशीर्वाद है।

परम पूज्य १०८ मुनि श्री अजितसागरजी महाराज का

शुभाशीर्वाद

इस अनादि-अनिधन संसार में प्रत्येक जीव ने स्थावर-त्रस पर्याय में परिभ्रमण करते हुए अनन्त दुःख सहे हैं। इन दुःखों का मूल कारण संसार-शरीर-भोगों की आसक्ति है। अतः जब आसन्न भव्य जीवों के अन्तःकरण में भवाङ्ग योग से तत्त्वज्ञानपूर्वक यथार्थ वैराग्य होता है तव वे अनवरत आत्म-हित के मार्ग में रत रहते हुए आत्मगुणों का विकास करने में यथागति तथा यथाशक्ति तत्पर रहते हैं। स्वयंसिद्ध अनादि अनिधन जैन धर्म के सिद्धान्तानुसार १०५ श्री आर्यिका इन्दुमतीजी ने अपनी दुर्लभ मनुष्य पर्याय को सफल करने का जो पुरुषार्थ किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है तथा हिताभिलाषिणी प्रत्येक महिलावर्ग के लिए अनुकरणीय है।

आर्यिका इन्दुमतीजी का वाल्यकाल-जैसा कुलीन कन्या का होना चाहिये उसीके अनुरूप रहा है। यौवन अवस्था में ही वैधव्य का दुःख भार भी नित्यप्रति पूजा दान तीर्थयात्रा आदि शुभकार्यों में व्यतीत हुआ था।

कुलीन महिला को पति के मर जाने पर नियम से परम्परा से मुक्ति की कारणभूत आर्यिका दीक्षा लेनी चाहिए। आर्यिका दीक्षा से आत्म-कल्याण होता है तथा संसार के समस्त प्रकार के सुख देने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है विधवा स्त्री को अपने कुटुम्व से मोह छोड़ कर शुद्ध परिणामों को रखते हुए अपने जीवन को सफल वनाना चाहिए।

यदि आर्यिका दीक्षा लेने की सामर्थ्य न हो तो तीनों प्रकार के शल्यों को छोड़ कर शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना चाहिए।

इन्द्रिय विकार और कामवर्धक कथाएँ न तो पढ़नी चाहिए और न श्रवण ही करनी चाहिए। रागी स्त्री पुरुषों के संसर्ग से भी दूर रहना चाहिए। वहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अपने शरीर का शृङ्गार नहीं करना

चाहिए। मृदु शय्यासन पर नहीं सोना चाहिए। आँखों में अञ्जन नहीं लगाना चाहिए। शरीर पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप नहीं करना चाहिए। ताम्बूल-भक्षण नहीं करना चाहिए। रागवर्द्धक गीतों का श्रवण नहीं करना चाहिए। कामवर्द्धक गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए। शरीर शोषक तथा धर्मध्वंसक शोक नहीं करना चाहिए। असाता कर्म बन्धन अतिरुदन नहीं करना चाहिए।

विधवा स्त्री को व्रत तपश्चरण के द्वारा मन इन्द्रियों को वश में करना चाहिए तथा वैराग्यवर्द्धक द्वादश भावनाओं का चिन्तन सदा करते रहना चाहिए। धार्मिक ग्रन्थों के पठन पाठन में निरन्तर रत रहना चाहिए। जिनपूजा और पञ्चपरमेष्ठी के जाप आदि धार्मिक क्रियाओं का आचरण करते हुए समय का सदुपयोग करना चाहिए।

विधवा स्त्री का जो उक्त शास्त्रोक्त आचरण है उनका १०५ इन्दुमती आर्यिका ने अपने जीवन में यथा शक्ति पालन किया था।

तत्पश्चात् परम तेजस्वी, सिंहवृत्तिधारी, प्रखरवक्ता पू० १०८ मुनि श्री चन्द्रसागरजी महाराज का पावन समागम प्राप्त करके क्षुल्लिका के व्रत धारण कर एवं उनका आगमानुसार पालन करने के कुछ वर्ष पश्चात् ही गुरु वियोग हो जाने से परमशान्त, कृपासिन्धु आचार्य १०८ श्री वीर-सागरजी महाराज के चरणसान्निध्य को प्राप्त कर आर्यिका दीक्षा अंगीकार कर आगमोक्त विधि से पालन कर रही हैं।

आगमानुसार आर्यिका के कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं—

आर्यिकाएँ परस्पर अनुकूल रहती हैं। ईर्ष्याभाव नहीं रखतीं। आपस में संरक्षण में सदा तत्पर रहती हैं। क्रोध, वैर, मायाचार आदि दोषों से दूर रहती हैं। लोकापवाद से सदा भय-भीत रहती हैं। सतत लज्जाशील रहती हैं। न्यायमार्ग की मर्यादा का सदा ध्यान रखती हैं। जाति, कुल तथा गुरु परम्परा के अनुकूल आचरण करती हैं। शास्त्रपठन, श्रवण चिन्तन स्मरण में सदा रत रहती हैं। अनित्यादि द्वादश भावना, दशलक्षण धर्म के स्वरूप चिन्तन में सदा तत्पर रहती हैं। स्वशक्ति के अनुरूप द्वादश प्रकार के तपश्चरण करती हैं। यथाशक्ति द्विविध संयम पालन करती हैं। जैसा कि मूलाचारप्रदीप में आचार्य सकलकीर्ति ने भी कहा है—

परस्परानुकूलाः सदाऽन्योन्यरक्षणोद्यताः।
लज्जा मर्यादा संयुता मायारागादि दूरगाः ॥१॥

आचारादिसुशास्त्राणां, पठने परिपरिवर्तने।
तदर्थ कथने विश्वा-नुप्रेक्षागुणचिन्तने ॥२॥

सारार्थ श्रवणे शुद्ध-ध्याने संयमपालने ।
तपोविनय सद्योगे, सदा कृतमहोद्यमाः ।।३।।
मल्लजल्लविलिप्तांगाः, वपुः संस्कारर्वाजताः ।
विक्रियातिगवस्त्रैकावृताः शान्ताश्चला मताः ।।४।।
संवेगतत्परादक्षा, धर्मध्यान परायणाः ।
कुलकीर्ति जिनेन्द्राज्ञा, रक्षणोद्यतमानसाः ।।५।।
दुर्बलीकृत सर्वाङ्गा, तपसा सकलार्यिकाः ।
द्वित्र्यादिगणनायुक्ताः निवसन्ति शुभाशयाः ।।६।।
उत्तमं स्वात्मकल्याणं पुण्यं वा सर्व सौख्यदम् ।
सर्वदुःख निवृत्तिश्च, जायते जिन दीक्षया ।।७।।

आर्यिका इन्दुमती आगमानुसार आचरण करते हुए अपने पादमूल में रहने वाली आर्यिकाओं के संरक्षण तथा गुणवर्द्धन में तत्पर है । अनेक प्रान्तों के अनेक नगरों में विशेषतः गौहाटी, डीमापुर में पद-विहार कर महती धर्म प्रभावना कर रही हैं ।

यह धार्मिक पुरुषों के मुख से श्रवण कर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करता है । १०५ विदुषी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती भी भारतवर्ष में प्रत्येक प्रान्त, नगर ग्राम में यशोध्वजा फ़हरा रही है वह सम्पूर्ण, इन्दुमती माताजी का ही कृपा प्रसाद है, जैसा पुत्री के प्रति माता का वात्सल्य होता है वह यहाँ दृष्टिगत हो रहा है ।

मुझे कई बार उनकी ध्यानमुद्रा के निरीक्षण का अवसर मिला था, शरीर की बहुत स्थिरता रहती है, प्रत्येक आर्यिका को अनुकरणीय है । इतनी वृद्धावस्था में भी अपने आर्यिका के पद का निर्दोषरीत्या पालन कर रही हैं अतः अन्तिम जीवन में आगमोक्त विधि से समाधिमरण को प्राप्त हों, यही मेरी शुभ कामना है ।

प्रेषक : प्रभु चित्तौड़ा, उदयपुर

कतिपय मधुर
प्रेरक प्रसंग

आर्यिका सुपार्श्वमती

आर्यिका दीक्षा के बाद साहसी मातेश्वरी इन्दुमतीजी ने अपने पूत चरणों से पश्चिम से पूरब तक भारत को पवित्र किया है। सात बार सम्मेदशिखरजी की पदयात्रा की है। अनेक प्रान्तों में ज्ञानगंगा प्रवाहित की है तथा कितने ही भव्य नर-नारियों को व्रती बनाकर सन्मार्ग पर लगायाँ है।

आपने सात बार चम्पापुर की, पाँच बार राजगिरि, पावापुरी, गुरणावा की तथा दो बार खण्डगिरि की यात्रा की है। कुन्थलगिरि तीन बार, मुक्तागिरि तीन बार, बड़वानी दो बार जा चुकी हैं तथा बुन्देलखण्ड के सारे क्षेत्रों की भी पदयात्रा कर चुकी हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आपने अपने जीवन में कितने प्रदेशों की और कितने मीलों की पद यात्रा कर अपने धर्मोपदेश से कितने जीवों को लाभान्वित किया है। किस प्रकार धर्म का प्रचार किया है। आपने जन-जन के हृदय से मिथ्यात्व को निकालने का जो परिश्रम किया है, उसका उल्लेख करना भी कठिन है। आपकी प्रशंसा के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं आपके सम्बन्ध में क्या लिखूं ? आपके जीवन की एक-एक घटना प्रेरणाप्रद है। आपके हृदय में कोमलता कूट-कूट कर भरी हुई हैं। आपकी निर्भीकता और पुरुषार्थ पुरुषों को भी मात करते हैं।

卐 एक बार माताजी डेह ग्राम पधारीं। आषाढ़ का महीना था। समाज की तीव्र भावना थी कि आप चातुर्मास डेह में ही करें, बहुत अनुरोध किया गया परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया। कारण—डेह आपकी जन्म भूमि है। वहां कुटुम्बियों को एकत्वजन के निधन के कारण तथा कतिपय की गम्भीर अस्वस्थता के कारण बहुत अशान्ति थी। माताजी ने बार-बार सम्बोधन किया तो उन्हें कुछ शान्ति मिली।

माताजी आपने चातुर्मास की स्वीकृति क्यों नहीं दी ? इसके उत्तर में आपने कहा कि—"निमित्त कारण पाकर परिणामों की विशुद्धि और संक्लेश होता है; जैसे माला देखने से

फेरने के भाव होते हैं, दर्पण देखने से मुख देखने के भाव होते हैं; आहार देखने से आहार संज्ञा उत्पन्न होती है अतः बाह्य कारण कलापों से दूर रहना चाहिए।

यहाँ पर कुटुम्बी जन हैं। उनका मन अशान्त है। वे हमारे समक्ष आकर कभी रोते भी हैं इसलिए ममत्व होना सहज है। इनको देख कर मेरे मन में भी कभी आकुलता होना सम्भव है। अतः मैं यहाँ पर चातुर्मास करना नहीं चाहती।"

और माताजी अकेली ही अपनी पिच्छी-कमण्डलु उठा कर चल दीं, किसी से यह नहीं कहा कि मेरी व्यवस्था कर दो। आपका तो हमेशा यही कहना है कि "सबका भाग्य साथ रहता है; भाग्यानुसार व्यवस्था अपने आप हो जाती है। याचना करने से नहीं होती।" याचना करना तो आपने सीखा ही नहीं है। आपकी निर्भीकता और अयाचकवृत्ति अत्यन्त अनुकरणीय है।

卐 आपने वीरसागरजी महाराज के संघ के साथ सम्मेदशिखरजी की यात्रा की। जयपुर से चल कर शिखरजी पर्वत पर पहुँचने तक आपने अपना कमण्डलु किसी दूसरे को नहीं दिया। अपने ही हाथ में लेकर चलती थीं। अपनी चाल से तो आप सर्व साधुओं को पीछे छोड़ देती थीं अतः सभी संघस्थजन आपको गाड़ी का इंजन कहते थे। निश्चित किए हुए स्थान पर सबसे पहले आप ही पहुँचती थीं अतः आपको देख कर सिगनल हो गया, गाड़ी आने वाली है, ऐसा भी कहते थे।

विहार में आप कभी भयभीत नहीं होती थीं। धार्मिक कार्यों में तथा आगम पर दृढ़ विश्वास होने से आप आगम का निरादर अथवा आगमिक क्रियाओं की अवहेलना सहन नहीं करती थीं अतः चाहे कोई धनिक हो या निर्धन, सम्बन्धी हो या कोई विद्वान् आप शास्त्रीय चर्चा में तत्पर हो जाती थीं। कभी भय नहीं खाती थीं, निर्णय किये बिना पीछे भी नहीं हटती थीं अतः आपको पूज्य आदिसागर महाराज सिंहनी भी कहते थे।

卐 स्त्रियों में स्वभावतः ईर्ष्या होती है परन्तु ईर्ष्या आपके हृदय को स्पर्श भी नहीं कर सकी है। दूसरों की बढ़ती को देख कर आपके हृदय में वात्सल्य भाव उमड़ आता है। वैयावृत्ति करना तो आपका स्वभाव है। छोटे-बड़े सबकी वैयावृत्ति आप स्वयं करती हैं। साधुओं के लिए घास बिछाना, पुस्तक रखना, रोगी की इच्छानुसार उपचार करना आदि में आप निपुण हैं। मान कषाय का कण भी आपके पास नहीं फटकता। यह मुझसे छोटा है, मैं इसकी वैयावृत्ति कैसे करूँ, आदि का भेद आपके पास है ही नहीं। यदि रोगी का मल-मूत्र भी साफ करना पड़े तो आप बिना किसी हिचकिचाहट के ऐसा भी तुरन्त कर देती हैं।

आपकी विचारधारा इस प्रकार है—

मान के पर्वत पर मत चढ़ो। कोई भी काम करो, आगा-पीछा सोच कर करो। अपने पद का ध्यान रखो। कभी किसी की देखा-देखी मत करो। यशोलिप्सा से दूर रहो क्योंकि यह मिश्री मिला हुआ जहर है। स्त्रियों के प्रलोभन में मत आओ। लोकविरुद्ध कार्य मत करो। बात को बोलने से पूर्व पहले हृदय रूपी तराजू पर तोलो फिर बाहर खोलो। वचन की कीमत सबसे अधिक है। किसी भी काम को करना हो तो कृत्य में लाकर दिखाओ, वचनों से नहीं क्योंकि भाषण की अपेक्षा आचरण महत्त्वपूर्ण होता है। संसार के प्रवासी बनो, निवासी नहीं। ज्ञान की अपेक्षा संयम महान् है अतः संयम की रक्षा करो। संयमी के समीप ज्ञान स्वतः आ जाता है। संयमी का 'तुष माष भिन्न' ज्ञान भी श्रुतकेवली बनने में सहायक हो जाता है। संयम का धनी ही सच्चा धनी है। प्राण जाने पर भी शास्त्रविरुद्ध बात मत बोलो। कम खाना और गम खाना सीखो। शास्त्र के अनुसार अपनी बुद्धि बनाओ। बुद्धि के अनुसार शास्त्र का अर्थ मत करो।

आपका उपर्युक्त एक-एक वाक्य बहुमूल्य है। आपकी सहिष्णुता, निर्भीकता निर्लोभता अनुकरणीय है। आपके धैर्य को देख कर आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज तो आपको 'छोटे चन्द्रसागर' ही कह देते थे।

卐 कवियों ने मनुष्यों के पाषाण, किसमिस, नारियल और वेर के समान चार प्रकार के स्वभाव माने हैं। बाहर और भीतर दोनों रूपों में जिसके हृदय में कठोरता होती है वह मनुष्य पाषाण के समान है। बाह्य में कोमलता और अन्तरंग में कठोरता वाला मनुष्य वेर के समान है। ये दोनों दुर्जन प्रकृति के होते हैं। बाह्याभ्यन्तर दोनों में कोमलता वाला मनुष्य किसमिस के समान है और जिसके बाह्य अनुशासन में तो कठोरता है परन्तु अन्तरङ्ग में मृदुता है वह नारियल के समान है।[1]

---

१. उत्तम पुरुष की दसा ज्यों किसमिस दाख,
बाहिर अभितर विरागी मृदु अंग है।
मध्यम पुरुष नारियल कैसी भाँति लिये,
बाहिज कठिन हिय कोमल तरंग है।
अधम पुरुष वदरी फल समान जाके,
बाहिर सो दीखे नरमाई दिल संग है।
अधम सों अधम पुरुष पुंगीफल सम,
अन्तरंग बहिरंग कठोर सर्वग है।
—बनारसीदास

इन्दुमती माताजी का स्वभाव नारियल की भाँति है। ये बाहर से कठोर दिखाई देती हैं। कोई भी मनुष्य सहसा इनके समक्ष बोलने का साहस नहीं कर पाता। परन्तु इनका हृदय भीतर से बहुत कोमल है। ये दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझती हैं। किसी दुःखी को देखकर इनका हृदय द्रवीभूत हो जाता है। आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। पाप कार्य के लिए आपका हृदय पाषाण के समान है। कितना भी भय और संकट क्यों न आए, आप अपने पद के विरुद्ध कार्य नहीं करतीं। ख्याति, पूजा, लाभ के प्रलोभन से या किसी के द्वारा की हुई प्रशंसा से आपका हृदय धर्म के विरुद्ध नहीं हो सकता। अनुशासन करने में आप नारियल के समान हैं और दुःखियों के दुःख में किसमिस के समान हैं।

सम्यग्ज्ञान की सुगन्ध और सदाचार के आभूषण से आपका जीवन सुशोभित है। आप संयम की साबुन और भेदज्ञानरूपी निर्मल नीर के द्वारा आत्मा को निर्मल बनाती हैं। आपका हृदय निःकषाय और पवित्र है। जिनधर्म के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा है।

णमोकार मन्त्र का माहात्म्य :

एक बार महावीरकीर्तिजी महाराज के संघ के साथ आप खंडगिरि जा रही थीं। कटक जाने को एक नहर के पास से पगडंडी थी। अपने स्वाभावानुसार माताजी आगे-आगे जा रही थीं। जब संध्या समय संघ निश्चित स्थान पर पहुँचा तो देखा कि माताजी नहीं पहुँची हैं। महाराजश्री ने कहा—वह तो हम सबके आगे चल रही थी, पीछे तो नहीं है। कहीं जंगल में भटक गई। चारों तरफ दौड़-धूप मच गई। इधर रात्रि हो आई। आठ बजे तक श्रावक गण इधर-उधर खोजते रहे परन्तु माताजी का कोई पता नहीं लगा। सर्दी के दिन! कहां ठहरी होगी—अकेली है—स्त्री पर्याय है। सभी का चित्त शोकसागर में डूब गया। चिंता के सिवाय कर ही क्या सकते थे। चाँदमलजी चूड़ीवाल और दीपचन्दजी बड़जात्या ने सारी रात माताजी को खोजने में पूरी कर दी परन्तु कहीं पर भी माताजी का पता नहीं लग पाया।

प्रातः काल आठ बजे माताजी निश्चित स्थान पर अपने आप आ गई। सबकी चिंता दूर हो गई। हृदय हर्ष से भर गया। सबने नमस्कार करके पूछा—माताजी! रात्रि में आप अकेली कहां रहीं? सर्दी में क्या किया होगा? माताजी ने कहा—मैं अकेली कैसे? मेरे साथ णमोकार मंत्र था। मार्ग में चलते-चलते जब संध्या होने लगी तब मैं एक गांव में पहुँच गई। पहुँचते ही एक सज्जन मिले और अपने परिचित मानव के समान आदरपूर्वक अपने घर में ले गये तथा अपने घर के बाहर के कमरे में थोड़ा-सा घास बिछा दिया। एक दीपक रख दिया और कहा कि आप सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करिये। यहां किसी का भय नहीं है। मैंने दरवाजा बन्द कर लिया एवं णमोकार मन्त्र का जप करती रही। प्रातः काल हुआ। उसने रास्ता बता दिया और मैं यहां आ गई।

जिसके हृदय में णमोकार मन्त्र है उसको आपत्ति कैसे आ सकती है।

अभिलषितकामधेनौ, दुरितद्रुमपावके हि मंत्रेऽस्मिन्।
दृष्टादृष्टफले सति परत्र मंत्रे कथं सजतु ।।यशस्तिलक चम्पू।८।१५३।।

अभिलषित फल देने के लिये कामधेनु, पाप वृक्ष को भस्म करने के लिए अग्नि स्वरूप इस मन्त्र के द्वारा प्रत्यक्ष फल की सिद्धि हो जाने पर दूसरे मन्त्रों में रुचि कैसे हो सकती है। इसलिये इस मन्त्र में लीन हो जाओ।

यह मन्त्र परमोपकारी है। सर्व विघ्नों का नाशक है। जगत की सारभूत वस्तु णमोकार मन्त्र ही है। इस मन्त्र में अपूर्व शक्ति है। इसकी महिमा का वर्णन मैं क्या करूं।

卐 विक्रम संवत् २०२५ में आपने आकलूज में चातुर्मास किया था। वहाँ आपको एक भयंकर पीड़ा हो गई थी। मूत्राशय में ग्रन्थि हो जाने से मल-मूत्र करने में आपको तीव्र वेदना होती थी। आपके अनन्य भक्त श्री शांतिनाथ सोनाज ने तन-मन-धन से आपकी सेवा की परन्तु मर्मभेदी पीड़ा तो आपको ही भोगनी पड़ती थी। वैद्य, डाक्टर, सर्जनादि की परीक्षा के वाद एक ही निर्णय हुआ कि यह ग्रन्थि कैंसर की है। इसको कुछ भाग में आप्रेशन करके परीक्षा करनी पड़ेगी। माताजी ने सर्वथा इन्कार कर दिया, मुझे कुछ नहीं कराना है। उसी समय परम पूज्य, मन्त्रशास्त्रवेत्ता, धन्वन्तरि, १८ भाषाओं के ज्ञाता वाल ब्रह्मचारी १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज आ गये।

माताजी को और दुगुना साहस मिल गया। णमोकार मन्त्र पर अटल श्रद्धान होने से उन्होंने कह दिया कि मुझे किसी औषधि की जरूरत नहीं है। सर्व रोग का नाशक, अभ्युदय-प्रदायक णमोकार मन्त्र मेरे हृदय में अंकित है। अब मुझे दूसरी औषधि से क्या प्रयोजन। वैसा ही हुआ भी। उपचार में महाराजश्री के मुख से निर्गत (छाछ में तुलसी के पत्ते) औषधि और मुख्यतया णमोकार मन्त्र का जाप। बस, देखते-देखते चंद दिनों में ही ग्रन्थि कहां चली गई, पता ही नहीं लगा। पुन: वैद्य आदि ने निरीक्षण किया तो वे आश्चर्य करने लगे और कहने लगे, यह असाध्य रोग कैसे दूर हो गया। आपने कौनसी औषधि सेवन की। जब णमोकार मन्त्र का माहात्म्य सुना तो वे चकित रह गये और मंत्र की प्रशंसा करने लगे।

卐 वि० सं० २०२६ में माताजी रुग्ण थीं। पैर में भयंकर पीड़ा थी। आप वारामती में थीं। परन्तु चातुर्मास वहां नहीं करना चाहती थीं। क्योंकि शहर में मल-मूत्र के स्थान की उपयुक्त व्यवस्था नहीं थी।

एक दिन प्रात:काल वारामती के मुखिया श्रेष्ठिवर श्री चन्दुलालजी सर्राफ आये। उनके शरीर पर सिर्फ एक वस्त्र (धोती मात्र थी) हाथ में एक दुपट्टा।

माताजी के पैर पकड़ कर कहने लगे कि अम्मा मी भिक्षा साठी आलो आहे भला भिक्षा द्या भिक्षा घेतल्या सिवाय मीं जाणहार नाहीं ।। माताजी ने कहा—बाबा ! क्या मांगते हो ? बाबा ने कहा—तुम्हीं ये थे चातुर्मास करण्या ची स्वीकृति द्या होच माझी भिक्षा, मीं तुम्हाला ये पूत जाण देशहार नाहीं ।। माताजी ने कहा—मुझे यहां रहना पसन्द नहीं है क्योंकि यहां पर साधु के योग्य मल-मूत्र विसर्जन का स्थान नहीं है ।

बाबा ने कहा—अम्मा, दोन मील दूर एक बोर्डिंग आहे, तिको चैत्यालय पण आहै भी तुझी सगली व्यवस्था करतो—तो स्थान फार उत्तम आहे—तुमची स्वास्थ्य भी दृष्टि न पण। यदि तुम्हीं नहीं गेल्या तो भी तुला डोंक्यापर उचलून घेवून जाई ।

आखिर माताजी ने स्वीकृति दे दी और शहर के बाहर दो मील दूर पर जैन बोर्डिंग में चातुर्मास किया । प्रतिदिन सैंकड़ों नर-नारी गाड़ी-मोटर, साईकिल आदि पर दर्शन करने और उपदेश सुनने आते और कृतकृत्य हो जाते ।

卐 वि० सं० २०२४ में गोम्मटेश्वर के अभिषेक के बाद विहार करके कुंभोज बाहुबली पहुँचे । वहां पर बाहुबली की २७ फुट ऊँची मूर्ति है । अनेक क्षेत्रों की रचना है । वयोवृद्ध, ज्ञानी, ध्यानी १०८ श्री समन्तभद्र महाराज वहां पर रहते हैं । जब कुम्भोज बाहुबली में पांच दिन रह कर विहार करने लगे तब समन्तभद्र महाराज ने कहा—अम्मा, आपको चातुर्मास यहीं पर करना पड़ेगा । माताजी ने कहा—मैं इधर के श्रावकों के हाथ का आहार नहीं लेती हूँ । इसलिये यहां पर चातुर्मास करना कठिन है । महाराजश्री ने वहां के कार्यकर्त्ताओं को कहा कि या तो माताजी के चातुर्मास की यहां व्यवस्था करो, नहीं तो मैं अम्मा जहां चातुर्मास करेगी वहां जाऊंगा । मैं भी वहीं पर चातुर्मास करूंगा । महाराज की आज्ञानुसार गजावैन आदि कार्यकर्त्ताओं ने व्यवस्था करके माताजी का चातुर्मास कुम्भोज बाहुबली में कराया । इससे ज्ञात होता है कि माताजी के प्रति दिगम्बर साधुओं का कितना स्नेह है ।

वीरसागर महाराज, आदिसागर महाराज, महावीरकीर्तिजी महाराज आदि दिगम्बर साधु माताजी को कर्मठ, निर्भीक सिंह पुरुष मानते थे ।

महावीरकीर्तिजी महाराज तो कभी कभी माता कह करके पुकार लेते थे और कहते थे, ये तो छोटे चन्द्रसागर हैं ।

मैं ३२ साल से माताजी के साथ रहती हूँ । मैंने कभी माताजी के मन में ईर्षा, असूया, परनिन्दा के भाव नहीं देखे । यद्यपि आपकी दृष्टि तेज है, मुख पर ओज है इसलिये सामने आने

वाले को क्रोध मालूम होता है परन्तु सहवासी सहवासी के गुण जानता है। आपके हृदय में कितनी कोमलता है, वह कहने की नहीं अपितु अनुभव करने की वस्तु है।

卐 आप अपने शरीर से निस्पृही हैं। दूसरों को कष्ट होगा यह सोच कर आपका हृदय कांप जाता है।

विक्रम सम्वत् २०२७ का चातुर्मास कारंजा में था। असाता के उदय से आप रुग्ण हो गईं। एक दिन आपको बहुत जोर से ज्वर था। हम लोग पास में ही सोये हुए थे। निद्रा आ गई। प्रातःकाल देखा तो माताजी जमीन पर सोये हुए थे। मैंने पूछा—माताजी आप जमीन पर क्यों सोये ? वहां से उठकर यहां पर क्यों आये ? माताजी ने कहा—रात में मुझे घबराहट हो गई। मैंने सोचा—अन्तिम समय आ गया है। इसलिये चार घन्टे तक पाटा आदि का त्याग करके नीचे सो गई। वहां पर शास्त्र थे इसलिए यहां आ गई। हमको क्यों नहीं जगाया ? जगा कर क्या करती—मैं अपना णमोकार जप करती रही। मैंने सोचा कि तुम सब घबरा जाओगे, आकुलता करोगे इसलिये नहीं जगाया।

इस प्रकार मैंने अपने जीवन में माताजी का साहस, धैर्य, निर्भीकता, अनुसूया, ममत्व, वैयावृत्तित्व आदि गुणों को जैसा देखा वैसा सर्वत्र सुलभ नहीं है।

सर्व वृक्षों में चन्दन, सर्व गजों के गण्डस्थल में मोती सुलभ नहीं है। उसी प्रकार सर्व गुण सम्पन्न होकर आर्यिका व्रत धारण करना भी सुलभ नहीं है।

卐 एक बार हम लोग शिखरजी आ रहे थे। रास्ता भूल गये। संध्या होने वाली थी। एक ग्राम में पहुँचे। वहां पर एक सज्जन ने कहा—आप यहां कैसे आये ? आपको कहां जाना है ? मैंने कहा—सिंहपुरी चन्द्रपुरी जाना है। इधर सिंहपुरी का रास्ता नहीं है यह चोरों का ग्राम है। आप मेरे साथ चलिये, यहां रुकने से धोखा है। दो मील पर उसका घर था वहां पर ले गया। गर्मी के दिन थे। उसके आंगन में ठहर गये। हम दस स्त्रियां थीं। उसमें तीन कुमारिकाएँ १८ वर्ष की, दो आदमी थे। सब घबरा गये। अब क्या होगा ? ग्राम से चार पांच लोग हाथों में लाठी लेकर आ गये। यद्यपि वे लोग हमारी रक्षा करने के लिये आए थे परन्तु हम सब घबरा गए। अब क्या होगा ? विशेष चिंता कुमारियों की थी। माताजी ने कहा—तुम सब सो जाओ, मैं बैठी हूँ। अरे ! जिसके पास णमोकार मन्त्र है, उसको भय किसका ? वास्तव में, रात्रि निर्विघ्न पूरी हो गई। प्रातः काल उन लोगों ने सड़क पर पहुँचा दिया। दो घन्टे में हम बनारस पहुँच गए। ऐसे कितने ही प्रसंग आये परन्तु माताजी अपने धैर्य से कभी विचलित नहीं हुईं। धन्य है इनका जीवन।

इन्होंने अपने धैर्य के बल पर ही बाहुबली की यात्रा की तथा आसाम और बंगाल में विहार करके सुषुप्त मानवों को जाग्रत किया। इनके प्रभाव से बोकाघाट, गौहाटी, जागीरोड़, बगाई गांव, डेरगांव, मंडिया, डीमापुर, गौरीपुर आदि जगहों पर चैत्यालय की स्थापना हुई है और दो साल में विजयनगर में दो पंच कल्याणक, व बरपेटा आदि में वेदीप्रतिष्ठा जैसे महान कार्य हुए हैं।

आप ख्याति पूजा-लाभ रूपी राक्षसों से भयभीत हैं। आपकी आत्मा में निर्लेपता, निष्कपटता, निष्पक्षता, उदारता और सरलता आदि अनुकरणीय गुण विद्यमान हैं। वैसे तो आपमें सम्यक्त्व के आठों अंगों की आभा स्फुटित है। किन्तु आपके हृदय में वात्सल्य अंग और निःशंकित अंग तो विशेष है। आस्तिक्य भाव की तो आप मूर्ति ही हैं।

यद्यपि आप मितभाषी हैं तथापि आपका तत्त्वज्ञान अगाध है। आपने बहुत से ग्रन्थों की स्वाध्याय की है। जब स्वाध्याय करते हैं तो उसमें जो कोई नवीन प्रकरण आता है तब झट से मुझे दिखाते हैं—देखो, यह बात कैसी है?

आपके हृदय में चन्द्रसागर महाराज के प्रति अगाध भक्ति एवं श्रद्धा है। उनका स्मरण करते ही आपकी आँखों में अश्रुधारा बहने लगती है।

आपका गुणानुवाद जितना भी किया जाय उतना ही थोड़ा है।

संक्लेश रूपी व्याघ्रों से युक्त, संकल्प-विकल्प रूपी भयंकर क्रूर प्राणियों से व्याप्त मम-कार-अहंकार रूपी सघन अन्धकार से भयावह और आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान रूपी कंटकों से भरे हुए गृहस्थाश्रम से निकाल कर मुझे आर्यिका पद पर स्थापित करने का श्रेय आपको ही है।

मेरे अध्ययन में आपका ही परम सहयोग रहा है। मेरे प्रति आपका जो उपकार है उसको मैं किसी जन्म में भुला नहीं सकती। वीर प्रभु से प्रार्थना है कि आप चिरायु होवें तथा आपकी छत्रछाया में रह कर मैं निर्दोष व्रतों का पालन करती रहूँ।

❖

गुरुभक्त माताजी

✡ आर्यिका १०५ श्री विद्यामती माताजी
संघस्था

चारित्र शिरोमणि, प्रबल धर्मप्रचारक, जैनधर्म उद्योतक, प्रातः स्मरणीय परम पूज्य (स्व०) १०८ आचार्यकल्प श्रीचन्द्रसागरजी महाराज की परम भक्त शिष्या १०५ इन्दुमती माताजी जब डेह पधारी थीं उस समय मैं २४ वर्ष की थी। उस समय मेरी कोई विशेष धार्मिक रुचि भी नहीं थी। माताजी से भेंट होने पर आपने मुझ से कहा—"मनुष्य भव प्राप्त करके क्यों इसे व्यर्थ व्यतीत कर रही हो ? यह समय ज्ञानाभ्यास करने का और संयमी बनने का है तुम्हारे लिये। यदि यह मनुष्य भव बिना ज्ञान संयम के चला गया तो फिर इसका मिलना महान् दुर्लभ है।" माताजी के उद्बोधन से मानो मैं सोते से जागी। उनके वचनामृत मेरे हृदय में पैठ गए। माताजी गृहस्थावस्था में भी हमारे परिवार के थे, यह जानकर तो उनका सान्निध्य पाने की मेरी भावना बलवती हो उठी।

विक्रम संवत् २०१७ में आचार्यवर्य परम पूज्य (स्व०) १०८ शिवसागरजी महाराज का वर्षायोग सुजानगढ़ में सम्पन्न हुआ था। उस समय संघ में ३० पीछी थी। आर्यिका इन्दुमतीजी और सुपार्श्वमतीजी भी वहीं विराज रही थीं। इस विशाल संघ की चर्या को देख कर मेरे मन में भी आर्यिका दीक्षा लेने की भावना हुई। परन्तु परिवार ने आज्ञा नहीं दी। मुझे पूज्य इन्दुमती माताजी और सुपार्श्वमती माताजी का सहारा था। वे बोले—"तुम चिन्ता न करो, हम तुम्हें अपने पास रखेंगे।" इससे मेरा उत्साह बढ़ा और मैंने पूज्य शिवसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ले ली। तब से अब तक मैं पूज्य आर्यिका द्वय के संरक्षण सान्निध्य में ही रही हूँ।

पूज्य बड़े माताजी, आर्यिका इन्दुमतीजी के गहन गुणों का वर्णन मुझ जैसी अज्ञानी क्या कर सकती है तथापि भक्तिवश कुछ लिखने का प्रयास करती हूँ।

गुरु की महिमा वरणी न जाय।
गुरु नाम जपो मन वचन काय।।

मुझ अबोध को माताजी ने सन्मार्ग दिखाया है। 'गुरु बिना ज्ञान, भेद बिना चोरी' गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती और भेद के बिना चोरी नहीं होती। माता-पिता तो सिर्फ जन्म देने वाले होते हैं, सच्चा मार्ग दर्शाने वाले तो गुरु ही होते हैं—

गुरुरेव भवेन्माता, गुरुरेव भवेन् पिता।
गुरुरेव सखा चैव, गुरुरेव भवेद्धितं ।।
गुरुःस्वामी गुरुर्भ्राता, गुरु विद्यागुरु गुरुः।
स्वर्गोगुरुर्गुरुर्मोक्षो, गुरुर्बन्धुर्गुरुः सखा ।।

आज यदि मुझे माताजी के धर्मामृत रूप वचन प्राप्त नहीं होते तो न जाने मेरा क्या हाल होता! इस संसार रूपी मरुस्थल में भटकती हुई, दुःख रूपी सूर्य की प्रखर किरणों के आताप से त्रस्त हुई मैं कैसे शान्ति पाती! माताजी के मुझ अकिंचन पर असीम उपकार हैं। माताजी के सम्बन्ध में क्या लिखूँ? धन्य हैं वे जनक जननी जिन्होंने इस महान् सन्तान को जन्म दिया।

पूज्य माताजी अपने गुरु चन्द्रसागर महाराजजी की अत्यन्त भक्त हैं। उनके प्रति आज भी आपका अटल श्रद्धान है। महाराज का नाम लेने मात्र से आपकी आँखों में अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। माताजी के हृदय में अपने गुरु के प्रति जो भक्ति है, वह सामान्यतः देखने को नहीं मिलती। यही प्रगाढ़ गुरुभक्ति माताजी की संयमसाधना में सहायक बनी है। वृद्धावस्था एवं दुर्बल शरीर के होते हुए भी आपका आत्मबल विशेष वृद्धिगत है। ७६ वर्ष की इस उम्र में भी आप निरन्तर १२ घण्टे तक बिना किसी सहारे के बैठकर स्वाध्याय करती रहती हैं, किसी प्रकार की आकुलता नहीं होती। जब विहार करते हैं तो एक दिन में २० मील तक पैदल चल लेती हैं। दूसरों की वैयावृत्य स्वयं अपने हाथों से करती हैं, चाहे बालक हो या वृद्ध हो, कोई भी अस्वस्थ हो, निरन्तर वैयावृत्य में जुट जाती हैं।

एक बार कुन्थलगिरिजी के रास्ते में हम तीनों ही साथ थीं, साथ में कोई भी श्रावक नहीं था। सामने पर्वत भी दिखने लगा था; हमने एक पगडण्डी पकड़ी और चलने लगे परन्तु मार्ग भूल गए। बियावान जङ्गल में जा पहुँचे। मैं तो ऐसे ही बहुत घबराती हूँ; अब तो और ज्यादा घबराने लगी। माताजी ने धैर्य बँधाते हुए कहा—"णमोकार मन्त्र का जाप करो। हृदय में भगवान की उत्कृष्ट भक्ति है तो स्वयं ही पहुँच जाओगे।" णमोकार मंत्र का जाप करते-करते स्वयं ही मार्ग मिल गया। ऐसे लगा जैसे कोई व्यक्ति दीपक हाथ में लेकर मार्ग दर्शाता हुआ आगे-आगे चल रहा है।

कुन्थलगिरि निर्विघ्न पहुँचे। यह महिमा माताजी की निर्भीकता, भगवद्भक्ति और गुरुभक्ति की है। ऐसी अनेक घटनाएँ घटित हुई हैं जो मैंने प्रत्यक्ष देखी हैं। माताजी की जिनवाणी के प्रति भी अविचल श्रद्धा है। शास्त्र विरुद्ध कार्य—चाहे कोई भी करता हो—उन्हें स्वीकार्य नहीं, वे उसका निग्रह करने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं।

पूज्य माताजी का हृदय नवनीतवत् कोमल है। आचार्यों ने गुरु की उपमा नारियल से दी है। जैसे नारियल ऊपर से कठोर होते हुए भी भीतर से कोमल होता है, खाने वाले को पुष्टि और सन्तोष देता है वैसे ही माताजी भी ऊपर से कठोर प्रतीत होती हैं किन्तु उनका हृदय बड़ा कोमल है। उनके साथ रह कर ही उनके गुणों को पहचाना जा सकता है।

गुरु कुलाल शिष्य कुम्भ है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट।
भीतर हाथ पसार कर, बाहिर मारे चोट॥

माताजी का भी यही रूप है। जैसे कुम्भकार घट बनाते समय ऊपर चोट मारता है परन्तु साथ ही भीतर हाथ भी रखता है वैसे ही माताजी अपने शिष्यों के प्रति ऊपर से कठोर बोलते हुए भी अन्दर-अन्तर में हाथ रखते हैं। जैसे माता हमेशा अपनी सन्तान का हित चाहती है वैसे ही माताजी भी सब जीवों का हित चाहती हैं; उन्हें सन्मार्ग में लगाती हैं।

मेरी तो निशि दिन यही भावना है कि आपकी छत्रछाया में रहकर मेरा संयम सतत वृद्धिगत होता रहे। आप चिरायु हों, आपका पुनीत आशीर्वाद हमें दीर्घकाल तक मिलता रहे।

मेरी भी गुरुभक्ति अटूट बनी रहे, इसी भावना के साथ पूज्य माताजी के चरणों में शत शत वन्दामि।

❖

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि"

卐 ❂ आर्यिका सुप्रभामती

जिस प्रकार मयूर वर्षाऋतु के आगमन की प्रतीक्षा करता है, हम भी उसी प्रकार किशोरावस्था में स्कूल की छुट्टी की राह देखते थे क्योंकि लम्वी छुट्टी के दिनों में हम लोग परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के सान्निध्य-लाभ का अवसर नहीं चूकते थे। आचार्यश्री के दर्शन, आहारदान-लाभ, स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा और उनकी अमृतवाणी सुनने की अत्यन्त उत्कण्ठा वनी रहती थी। आचार्यश्री स्वाध्याय के वाद या सायं-कालीन प्रतिक्रमण से पूर्व अपने चिन्तन से प्राप्त अनुभव से उपलब्ध 'वोल' कहते थे। परम पूज्य आचार्यश्री के मुखारविन्द से कई वार सुना कि "चन्द्र-सागर जैसा सिंहवृत्ति का वीर तपस्वी कहीं नहीं मिलेगा।" "विचारों की स्पष्टता, मन की दृढ़ता, वाणी की निर्भयता तपस्या की कठोरता आदि गुणों की खान चन्द्रसागर था।" "उत्तरप्रान्त में समाजजाग्रति हेतु मानो उसने शङ्खनाद ही किया था। त्यागी-तपस्वियों की तपस्या से हरा-भरा और प्रफुल्लित यह मरुस्थल चन्द्रसागरजी की ही देन है।"

वाप जैसी बेटी :

पूज्य इन्दुमती माताजी उन्हीं चन्द्रसागरजी महाराज की सुशिष्या हैं जिनके सम्बन्ध में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महा-राज अपने विचार उपर्युक्त रीत्या व्यक्त किया करते थे। पूज्य माताजी में भी अपने गुरु के गुण ज्यों के त्यों फलीभूत दिखाई देते हैं। निर्भयता, कुशल संचालन, दृढ़ अनुशासन, वैचारिक स्पष्टता और कठोर तपस्या में आप भी कुछ पीछे नहीं हैं। माताजी के इन गुणों का परिचय उनके सान्निध्य में रहने से शीघ्र प्राप्त होता है। निश्चय ही आप 'गुरु जैसा शिष्य' 'वाप जैसी वेटी' उक्ति को चरितार्थ करती हैं।

कुन्थलगिरि निर्विघ्न पहुँचे। यह महिमा माताजी की निर्भीकता, भगवद्भक्ति और गुरुभक्ति की है। ऐसी अनेक घटनाएँ घटित हुई हैं जो मैंने प्रत्यक्ष देखी हैं। माताजी की जिनवाणी के प्रति भी अविचल श्रद्धा है। शास्त्र विरुद्ध कार्य—चाहे कोई भी करता हो—उन्हें स्वीकार्य नहीं, वे उसका निग्रह करने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं।

पूज्य माताजी का हृदय नवनीतवत् कोमल है। आचार्यों ने गुरु की उपमा नारियल से दी है। जैसे नारियल ऊपर से कठोर होते हुए भी भीतर से कोमल होता है, खाने वाले को पुष्टि और सन्तोष देता है वैसे ही माताजी भी ऊपर से कठोर प्रतीत होती हैं किन्तु उनका हृदय बड़ा कोमल है। उनके साथ रह कर ही उनके गुणों को पहचाना जा सकता है।

गुरु कुलाल शिष्य कुम्भ है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट।
भीतर हाथ पसार कर, बाहिर मारे चोट॥

माताजी का भी यही रूप है। जैसे कुम्भकार घट बनाते समय ऊपर चोट मारता है परन्तु साथ ही भीतर हाथ भी रखता है वैसे ही माताजी अपने शिष्यों के प्रति ऊपर से कठोर बोलते हुए भी अन्दर-अन्तर में हाथ रखते हैं। जैसे माता हमेशा अपनी सन्तान का हित चाहती है वैसे ही माताजी भी सब जीवों का हित चाहती हैं; उन्हें सन्मार्ग में लगाती हैं।

मेरी तो निशि दिन यही भावना है कि आपकी छत्रछाया में रहकर मेरा संयम सतत वृद्धिगत होता रहे। आप चिरायु हों, आपका पुनीत आशीर्वाद हमें दीर्घकाल तक मिलता रहे।

मेरी भी गुरुभक्ति अटूट बनी रहे, इसी भावना के साथ पूज्य माताजी के चरणों में शत शत वन्दामि।

❖

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि"

卐

✡ आर्यिका सुप्रभामती

जिस प्रकार मयूर वर्षाऋतु के आगमन की प्रतीक्षा करता है, हम भी उसी प्रकार किशोरावस्था में स्कूल की छुट्टी की राह देखते थे क्योंकि लम्बी छुट्टी के दिनों में हम लोग परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के सान्निध्य-लाभ का अवसर नहीं चूकते थे। आचार्यश्री के दर्शन, आहारदान-लाभ, स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा और उनकी अमृतवाणी सुनने की अत्यन्त उत्कण्ठा बनी रहती थी। आचार्यश्री स्वाध्याय के बाद या सायं-कालीन प्रतिक्रमण से पूर्व अपने चिन्तन से प्राप्त अनुभव से उपलब्ध 'बोल' कहते थे। परम पूज्य आचार्यश्री के मुखारविन्द से कई बार सुना कि "चन्द्र-सागर जैसा सिंहवृत्ति का वीर तपस्वी कहीं नहीं मिलेगा।" "विचारों की स्पष्टता, मन की दृढ़ता, वाणी की निर्भयता तपस्या की कठोरता आदि गुणों की खान चन्द्रसागर था।" "उत्तरप्रान्त में समाजजाग्रति हेतु मानो उसने शङ्खनाद ही किया था। त्यागी-तपस्वियों की तपस्या से हरा-भरा और प्रफुल्लित यह मरुस्थल चन्द्रसागरजी की ही देन है।"

बाप जैसी बेटी :

पूज्य इन्दुमती माताजी उन्हीं चन्द्रसागरजी महाराज की सुशिष्या हैं जिनके सम्बन्ध में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महा-राज अपने विचार उपर्युक्त रीत्या व्यक्त किया करते थे। पूज्य माताजी में भी अपने गुरु के गुण ज्यों के त्यों फलीभूत दिखाई देते हैं। निर्भयता, कुशल संचालन, दृढ़ अनुशासन, वैचारिक स्पष्टता और कठोर तपस्या में आप भी कुछ पीछे नहीं हैं। माताजी के इन गुणों का परिचय उनके सान्निध्य में रहने से शीघ्र प्राप्त होता है। निश्चय ही आप 'गुरु जैसा शिष्य' 'बाप जैसी बेटी' उक्ति को चरितार्थ करती हैं।

असाधारण धैर्य :

'अबला' होते हुए भी आपने अपने पुरुषार्थपूर्वक सुयोग्य, आज्ञाशील, विदुषी शिष्या सुपार्श्वमतीजी और विद्यामतीजी को साथ लेकर केवल ब्र० देवकुमारी, ब्र० हरकीबाई, ब्र० सन्तोषबाई और ब्रह्मचारी कैलाशजी के सहयोग से मरुभूमि से लेकर श्रवणबेलगोलादि दक्षिण भारत की पैदल यात्रा सम्पन्न की है।

पूज्य इन्दुमती माताजी के कुशल अनुशासन और सुपार्श्वमती माताजी की धाराप्रवाही सिद्धान्त गर्भित प्रवचन शैली से आकृष्ट हो परम पूज्य समन्तभद्र मुनिराज ने कुम्भोज बाहुबली में चातुर्मास करने की प्रेरणा दी। अकलूज, बारामती, कारञ्जा आदि स्थानों पर भी आर्यिकासंघ के चातुर्मास महाराजश्री की प्रेरणा से ही हुए। माताजी के प्रति आज भी उनकी धर्म-वत्सलता बनी है।

कारञ्जा से सम्मेदशिखरजी की ओर विहार हुआ। बनारस के बाद कहीं श्रावकों की बस्ती नहीं। दो तीन ब्रह्मचारी, ड्राईवर और क्लीनर के अलावा अन्य कोई श्रावक साथ नहीं। अनोखा प्रान्त ! कई मील तक ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं मिला।। चारों ओर जङ्गल ही जङ्गल था। अन्धकार होने आया, ठहरने को स्थान का पता नहीं था। कुछ दूरी पर ऊँची-ऊँची झाड़ियों के झुण्ड के बीच तापसियों का एक आश्रम दिखाई दिया। गर्मी के दिन थे, वहीं रुकना पड़ा। कुछ देर बाद वे संन्यासी ताड़ी पीके मस्त हुए थे। चारों ओर अग्नि जला कर वे जोर-जोर से 'धुनी' करने लगे। हम घबराए लेकिन बड़े माताजी धीरतापूर्वक बोलीं—"क्या वे तुमको खा जाएंगे? घबराते क्यों हो ? णमोकार महामन्त्र का जाप करो, विश्वास करो। जिसके पास णमोकार महामंत्र रूप अमूल्य शस्त्र है, उसका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता।" णमोकारमन्त्र के जाप्यपूर्वक रात्रि निर्विघ्नतया पूरी हुई; सुबह विहार हुआ।

मिरजापुर, आरा, पटना के पास शाम के समय ताड़ी पी कर मस्त हुए लोगों के समुदाय जगह-जगह दिखाई देते थे, अनेक बार ऐसे स्थानों पर ठहरने के प्रसंग भी आए। कई स्थानों पर तो ऐसे ही लोग रात्रि भर जागरण करके हम लोगों को धैर्य बँधाते थे; इतना ही नहीं—"हम गरीबों के यहां ठहर कर हमारा आतिथ्य स्वीकारो और हमारा घर-आंगन पवित्र करो" ऐसी याचना करते थे।

कुशल अनुशासन :

योग्य अनुशासन न हो तो बड़े से बड़े राष्ट्र का चन्द दिनों में 'तीन तेरह नौ बारह' हो जाता है। घर में भी योग्य मार्गदर्शक न हो तो वह भी अशान्ति का स्थान हो जाता है। इसी तरह कुशल अनुशासक न हो तो संघ द्वारा भी धर्मप्रभावना नहीं हो सकती। अनुशासक के लिये 'नारियल'

(श्रीफल) की उपमा दी जाती है जो ऊपर से कठोर होते हुए भी अन्दर से मधुर और कोमल होता है तथा शीतल जल से परिपूर्ण होता है। पूज्य इन्दुमती माताजी का व्यक्तित्व भी ऐसा ही है, ऊपर से नारियल जैसा कठोर और भीतर से दया-अनुकम्पा के जल से लबालब।

पूज्य बड़े माताजी के पास सहसा सीधे जाने का कोई साहस नहीं करता किन्तु पास बैठने के बाद इन्दुवत् शीतलता के प्रभाव से मुग्ध हुआ वहाँ से उठ कर जाने के लिए भी तैयार नहीं होता क्योंकि माताजी के नाम में ही—मोहनी से इन्दुमती एक प्रकार का जादू है। अनुभव करने वाला ही इस रहस्य को समझेगा।

अद्भुत सेवावृत्ति :

अन्तःकरण की कोमलता बिना दूसरों की सेवा नहीं बन सकती। पूज्य इन्दुमती माताजी के मन में—चाहे छोटा हो या बड़ा हो उसकी सेवा करने हेतु हिचक नहीं होती। विहार में भी सबसे पहले पहुँच कर घास-चटाई स्वयं अपने हाथ से बिछायेंगे। शास्त्र के लिए चौकी-पाटा पहले से लगाया हुआ मिलेगा, शास्त्र खोलना बाँधना आदि सब काम स्वयं करेंगे। वह भी बड़ी चतुराई से। माताजी के समान काम की चतुराई क्वचित् ही देखने में आएगी। कितने भी मील चल कर आए हों शरीर थका हो तो भी सारा काम स्वयं करेंगे, प्रमाद तो आपको छू भी नहीं गया।

सम्मेदशिखरजी में पहाड़ की वन्दना हेतु कभी विलम्ब हो जाता तो हाथ में कमण्डलु लिये पहाड़ की तलहटी में हमारी राह देखते हुए दिखाई देते, लौटते ही गर्म जल आदि तैयार मिलता।

धुलियान चातुर्मास में दशलक्षणव्रतों में एक स्त्री का स्वास्थ्य नवमें उपवास के दिन बिगड़ गया। जीवन बचने की भी आशा नहीं रही थी। धर्मशाला में ठहरी हुई उस स्त्री की वैयावृत्य हम लोग करते थे लेकिन माताजी जैसी सेवा कोई नहीं कर सकेंगे। पूज्य बड़े माताजी का चतुर्दशी का उपवास था, माताजी ने दो दिन तक उस स्थान को छोड़ा ही नहीं—रात दिन णमोकार मन्त्र सुनाते थे, इतना ही नहीं लघुशंका के लिए भी स्वयं हाथ पकड़ कर ले जाते थे। माताजी का यह सेवाभाव देखकर दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। आप कभी किसी काम के लिए दूसरे से कहते नहीं, सब काम स्वावलम्बनपूर्वक स्वयं करते हैं।

अन्तःकरण की दयालुता :

संघ के अन्य त्यागी व्रती जब माताजी के पास व्रत-उपवास की प्रतिज्ञा लेने जाते हैं तो अन्तराय अथवा स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उपवास देने की माताजी की इच्छा कम ही रहती है। लेकिन हम लोगों की उपवास की भावना प्रबल देख कर माताजी कहेंगे—"मैं भी करूंगी उपवास" या फिर "मन्नै ठा कोनी"।

निर्भयवृत्ति :

कलकत्ता-चातुर्मास में श्री सुपार्श्वमती माताजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। आठ माह तक वहां रहे। आखिर, विहार करने का विचार किया। गर्मी का मौसम होने से विहार में तकलीफ होगी ऐसा विचार कर वहाँ के प्रमुख लोगों—जयकुमारजी, कल्याणमलजी, शान्तिलालजी सीतारामजी प्रभृति ने विहार का विरोध किया, सत्याग्रह किया। परन्तु विहार का एक बार निश्चय कर लेने पर बड़े माताजी ने लोगों के विरोध की, अनशन की तनिक भी परवाह नहीं की। माताजी ने संघ सहित विहार कर दिया। पू० माताजी स्पष्टवक्ता हैं, छोटा हो चाहे बड़ा जो कहना है, स्पष्ट कह देंगे; गुत्थी या ग्रन्थि बनाए रखना उनका स्वभाव नहीं।

कर्त्तव्यपरायणता :

वि० सं० २०३४ में विजयनगर (आसाम) में चातुर्मास हुआ। इसके बाद माताजी ने कानकी (बंगाल) के श्रावकों के विशेष आग्रह के कारण सं० २०३५ का चातुर्मास वहाँ करने का आश्वासन दे दिया। विहार में, मार्ग में फाल्गुन के अष्टाह्निका महोत्सव हेतु नलवाड़ी रुके। तत्रस्थ श्रावकों ने वहाँ चातुर्मास करने के लिए बहुत आग्रह किया। समाज के छोटे-बड़े सभी की एक यही इच्छा कि आर्यिका संघ का चातुर्मास वहाँ हो। परन्तु कानकी के समाज को पहले आश्वासन दे चुके थे, तो भी लोगों ने हठ न छोड़ी। विहार मार्ग में जगह-जगह आते थे। बरपेटा में बस लेकर ५०-६० श्रावक-श्राविकाएँ नलवाड़ी से आए। चातुर्मास की स्वीकृति लेने के लिए माताजी के चरणों में गिर पड़े परन्तु स्वीकृति नहीं मिली। अस्वीकृति के कारण वे हतोत्साहित हुए, उनके नेत्रों ने जल प्रवाहित कर माताजी के चरण प्रक्षालित किये। करुणाविगलित माताजी की आँखों से भी अश्रु बहने लगे। सामने वाले की आँखों में अश्रु देखकर दयालु माताजी के करुणापूर्ण नेत्र भी अश्रु-विमोचन करने लगते हैं। माताजी का हृदय गद्गद् हो गया—चारों ओर स्तब्धता छा गई। अपूर्व-भक्ति और करुणा का यह हृदयद्रावक दृश्य देख कर सुपार्श्वमती माताजी कहने लगीं—"स्वीकृति ही चाहिए ना? दे दो माताजी!" लेकिन कर्त्तव्यपरायण और कुशल अनुशासक बड़े माताजी ने कहा—"थूकना और फिर उसे चाटना कहां का न्याय है?" अर्थात् किसी को प्रथम वचन दे के बाद में ना कहना योग्य नहीं। साधु के वचन एक बार ही निकलते हैं।" इस रहस्य को समझकर नलवाड़ी के श्रावक दुःखी मन से लौट गये।

धोवड़ी में फाल्गुन की अष्टाह्निका में सिद्धचक्र मण्डल विधान हुआ। एक दो दिन के बाद विहार का निश्चय किया गया। गर्मी थी, विहार के दिन, आहार के आरम्भ में ही बड़े माताजी की अञ्जुलि में बाल निकलने से अन्तराय हो गया। श्रावक गण कहने लगे—कल आहार के बाद विहार करना। लेकिन विहार करने का विचार प्रथमतः कर लेने से उसी दिन विहार हुआ।

अपरिमित वात्सल्यभाव :

अकलूज में श्री गंगाराम दोशी द्वारा निर्मित श्री वाहुबली मन्दिर में वर्षायोग सम्पन्न किया था। श्री सुपार्श्वमती माताजी बहुत अस्वस्थ थीं। प्रतिदिन उलटी (वमन) होने से पेट में एक बूंद पानी भी नहीं ठहर पाता था। श्री शान्तिनाथ सोनाज्ञ, चम्पावाई, माणिकचन्दजी ने खूब प्रयत्न किया। वैयावृत्ति में कोई कमी नहीं थी। गर्मी के दिन थे, अन्तराय भी बहुत आती थी। क्या करें, समझ में नहीं आता था। अन्तराय न हो इसलिये बहुत सावधानी रखते थे। एक दिन बिल्ली का बच्चा चौके में घुसने लगा। माणिकचन्दजी ने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया। दो तीन बार हाथ से छूट कर बिलकुल माताजी के समक्ष जाकर बैठ गया। अन्तराय हो गई। सुपार्श्वमतीजी को अन्तराय हुई, ऐसा समझते ही बड़े माताजी की अञ्जुलि अपने आप छूट गई, अन्तराय हुई। यह है हार्दिक वात्सल्य। संघ में किसी को भी जरा कुछ हो जाए तो माताजी स्वयम् वैयावृत्ति करेंगे, पास में बैठेंगे, सिर पर पीठ पर हाथ फेरेंगे, बार-बार पूछेंगे। इस प्रकार की वात्सल्य परिपूर्ण सहानुभूति क्वचित् ही कहीं मिलेगी।

गुरु-भक्ति :

पूज्य बड़े माताजी को गुरुवर्य श्री चन्द्रसागर महाराज के वचनों पर अटल श्रद्धा रही है। शास्त्रीय या व्यावहारिक कोई भी चर्चा होगी तो माताजी—'आगम में ऐसा कहा है, यह नहीं कहेंगी' अपितु चन्द्रसागर महाराज ऐसा कहा करते थे, यही बात बार-बार कहेंगी। क्योंकि गुरु कभी आगम के विरुद्ध नहीं कहते, यह दृढ़ श्रद्धा है। गुरु के वचन जगत् के जीवों के अज्ञानान्धकार का नाश करने में कारणभूत होते हैं। गुरु ही संसार में भटकने वाले जीवों को दीपस्तम्भ के समान मार्गदर्शक होते हैं; इसीलिये तो सिद्धों से पहले अरिहन्तों को नमस्कार किया गया है क्योंकि वे ही हमारे प्रत्यक्ष गुरु हैं। उनकी दिव्यध्वनि सुन कर भव्य जीव अरिहन्त जैसे स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

आचार्य कल्प चन्द्रसागरजी जैसे गुरु की शिष्या पूज्य वड़े माताजी इन्दुमतीजी की हम लोग अनुगामिनी हैं। हमें माताजी की छत्रछाया दीर्घकाल तक प्राप्त होती रहे, यही कामना है।

❖

सहवासिनो हि जानन्ति

✪ आर्यिका सुपार्श्वमती

बहुत से लोग कहते हैं कि इन्दुमती माताजी विदुषी नहीं हैं। नीति यह कहती है कि—"सहवासिनो हि जानन्ति, चरित्रं सहवासिनाम्" सहवासी ही सहवासी के गुणों को जानता है। मुझे गत ३३ वर्षों से आपके साथ रहने का सौभाग्य मिला है। यद्यपि माताजी कोई डिग्रीप्राप्त-उपाधिधारी नहीं हैं, वक्ता भी विशिष्ट नहीं हैं तथापि आपका अनुभव ज्ञान अति शोभनीक है। "थोथा चना बाजे घना" सारहीन चना बहुत आवाज करता है, बजता रहता है परन्तु भरे हुए चने में आवाज नहीं आती। इसी प्रकार वक्ता का ज्ञान थोथे चने के समान भी हो सकता है परन्तु अनुभव ज्ञान भरे हुए चने की भाँति है। माताजी का ज्ञान भरे हुए चने की भाँति है। वह अनुकरणीय है। मैं जब उपदेश देती हूँ, उस समय मुझे संकेत करती हैं कि यह बात कल बोली हुई है, एक ही बात को बार-बार कहने से पुनरुक्ति दोष होता है। आपको कितने ही स्तोत्रपाठ एवं ग्रन्थों के श्लोक कण्ठस्थ हैं। जब मैं बोलते-बोलते कोई श्लोक भूल जाती हूँ तो आप शीघ्र ही बता देती हैं।

आप शास्त्रविरुद्ध कोई भी बात सुनना नहीं चाहतीं। कितना ही बड़ा विद्वान् हो या कोई प्रभावशाली धनिक हो—शास्त्रविरुद्ध बोलने पर आप उसे डाँटे बिना नहीं रह सकतीं। मुझे तो बार-बार कहती हैं—यशोलिप्सा के कारण कभी धर्ममार्ग से च्युत नहीं होना। जिनधर्म पर आपकी दृढ़ आस्था है। आपका हृदय अत्यन्त दयालु है, किसी की आँखों में अश्रु देख कर आपकी आँखें भी जल बहाने लगती हैं।

आप शास्त्रविरुद्ध कार्य (यथा—विधवा विवाह, विजातीय विवाह) की कट्टर विरोधिनी हैं। अतः कोई-कोई आपका भी विरोधी बन जाता है परन्तु आप उसकी किंचित् भी परवाह नहीं करती हैं। माताजी कहती हैं कि शक्तिप्रमाण शास्त्रोक्तविधि के अनुसार कार्य करना

चाहिए। शक्ति न हो तो श्रद्धान अवश्य करना चाहिए। शास्त्र हमारे देखने में न आवे तब तक संगति के प्रभाव से या रूढ़िवशात् कोई क्रिया करते हैं—यह बात अलग है परन्तु शास्त्र देख लेने पर, विशिष्ट आचार्यों के कथनों को ज्ञात कर लेने पर भी जो दुराग्रह या पक्षपात को नहीं छोड़ना चाहते हैं और विपरीत कल्पना कर अपनी मनमानी करते हैं; उन्हें समझाने के लिए हमारे पास शब्द नहीं है। अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के वचनों पर ध्यान देना चाहिए—

"सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगात् ॥"

(सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्रदेव के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है और स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के उपदेश से 'जिनेन्द्रभगवान का कहा हुआ है' ऐसा समझ कर विपरीत भाव का श्रद्धान करता है तो भी वह सम्यग्दृष्टि है।) परन्तु—

"सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवई मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥"

(आचार्य कथित सूत्रों से सम्यक्प्रकार समझाए या दिखाए जाने पर भी यदि श्रद्धान नहीं करता है तो वह उसी समय मिथ्यादृष्टि हो जाता है, इसलिए शास्त्रानुसार मति करनी चाहिए।)

ज्ञान लव के घमण्ड में आकर देव-शास्त्र-गुरु की अवहेलना मत करो। ज्ञान क्षणध्वंसी है। ज्ञान का फल चारित्र है, उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पूज्य माताजी इस समय ७६ वर्ष की हैं परन्तु प्रमाद आपको आज भी स्पर्श नहीं कर सका है। यद्यपि आपका स्वास्थ्य कमजोर है, जङ्घाबल क्षीण हो गया है, उठने-बैठने में तकलीफ होती है तथापि अपना काम आप स्वयमेव करती हैं। किसी से इतना भी नहीं कहतीं कि यह पुस्तक उठाकर मुझे दे दीजिए।

आपके गुणों की प्रशंसा जितनी की जाए उतनी ही कम है। मैंने अनेक आर्यिका-माताओं के दर्शन किए हैं, महान् विदुषियों के भी दर्शन किए हैं परन्तु इन्दुमती माताजी के समान शान्ति, सरलता, अनसूया भाव विरलों में ही हैं।

चन्द्रमा के समान आपका चारित्र निर्मल है; चन्द्रमा तो फिर भी कलङ्कित है आपका चारित्र निर्दोष है। सूर्य के समान तेजस्वी होती हुई भी आप सन्तापकारी नहीं हैं समुद्र के समान गम्भीर होते हुए भी आपके वचन मधुर हैं, समुद्र के पानी के समान खारे नहीं हैं। मेरु के समान थिर होते हुए भी आप जड़ नहीं हैं—अतः समझ नहीं पा रही—आपको किसकी उपमा दूँ?

ऐसी परोपकारिणी माता के चरणों में मेरा शत शत वन्दन! शत शत वन्दन!! ❖

धर्ममूर्ति माताजी

—क्षुल्लक सिद्धसागर, लाडनूं वाला

आर्षमार्ग एवं आगम की पोषिका, निर्भीक, त्याग की प्रतिमूर्ति, धर्मसंरक्षिका, वैयावृत्य आदि तपों में असाधारण विश्वास रखने वाली, आर्यिका शिरोमणि १०५ श्री इन्दुमती माताजी का जीवन अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं श्रद्धा का आधार केन्द्र है। आपका अध्यात्मपूर्ण त्यागमय जीवन सम्पूर्ण नारी जाति के लिए तथा समाज के लिए अतीव सशक्त स्तम्भ के रूप में विद्यमान है। स्वर्गीय आचार्यकल्प १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज की अन्यतम शिष्या रत्न होने के साथ-साथ आपने उनकी आर्षमार्ग परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने में जिस साहस के साथ सत्यधर्म का पोषण किया है, वह धार्मिक जनों के लिए युग-युगान्तर तक आदर्शमार्ग के रूप में अमर रहेगा।

आपने अपनी धर्मोद्योत की प्रबल भावना से अगणित प्राणियों को सन्मार्गगामी बनाया है जिसकी गुणगाथा आज देश के कोने-कोने में गाई जाती है। आपने देश के सभी प्रान्तों में विहार करके जैनधर्म की महती प्रभावना की है। आगमसम्मत सिद्धान्त के प्रतिपादन में आप निर्भीक कुशल वक्ता हैं। आपके मुखमण्डल पर सदैव वीतरागता, गम्भीरता एवं विद्वत्ता का तेज चमकता रहता है। आपके धर्मोपदेश में सिद्धान्त और व्यवहार आदि का पूर्ण समावेश रहता है, जो व्यक्ति आपका मधुर प्रवचन एक बार भी सुन लेता है, वह अपना अहोभाग्य मानने लगता है।

आपकी शिष्यपरम्परा में १०५ आर्यिका रत्न श्री सुपार्श्वमती माताजी का नाम वर्तमान समय में जैनजगत में कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। आपकी ज्ञानगरिमा से देश व समाज को मार्गदर्शन मिलता है। आपकी स्फुरणशील प्रतिभा से सम्पूर्ण मानव समाज गौरवान्वित हो रहा है। आपके ही संघ में आपकी आज्ञाकारिणी व आपके पदचिह्नों पर चलने वाली १०५ आर्यिका श्री विद्यामतीजी व सुप्रभामती जी भी निरन्तर ध्यानाध्यन में रत रहती हैं।

इस संघ का अवदान अत्यन्त सराहनीय अथ च अनुकरणीय है।

पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन दिगम्बर जैन समाज का अतीव स्तुत्य कार्य समझा जाएगा। ऐसी परम धर्ममूर्ति माताजी के चरण कमलों में मेरा त्रिधा शत शत वन्दन ! शतशत वन्दन !! शतशत वन्दन !!!

अपने विशेषण आप

ब्र० कुमारी प्रमिला एम. ए. शोधस्नातिका
संघस्था

संवत् २०२७। आषाढ़ का अष्टाह्निका पर्व निकट था। मंदिरजी के सूचना पट्ट पर सूचना लिखी थी कि कल प्रातःकाल नौ बजे परम विदुषी आर्यिकारत्न इन्दुमतीजी एवं सुपार्श्वमतीजी के संघ का नगर में पदार्पण हो रहा है अतः सभी बन्धुओं से प्रार्थना है कि अधिकाधिक संख्या में गढ़ा रोड पर उपस्थित होकर माताजी के स्वागत-समारोह में सम्मिलित होकर पुण्योपार्जन करें।

सूचना पढ़ कर मैं घर आ गई। तब मुझे देवदर्शन और साधु-दर्शन में कोई विशेष रुचि नहीं थी। सिर्फ माँ की प्रेरणा से ही यदा कदा मन्दिर चली जाया करती थी।

आर्यिका संघ का शहर में पदार्पण हुआ। एक दो दिन में ही सारे शहर में यह चर्चा होने लगी कि ऐसी विदुषी आदर्श आर्यिकाएँ हम लोगों ने आज तक नहीं देखीं। इन्दुमती माताजी की सौम्य शान्त मुखमुद्रा देखते ही बनती है। सुपार्श्वमती माताजी तो मानो साक्षात् शुभ्रवस्त्रावृता सरस्वती देवी ही हैं। विदुषी तो हैं ही, साथ में उत्कृष्ट चारित्र की धनी हैं और योग-ध्यान साधना की देदीप्यमान मणि भी हैं। यह भी सुना कि उनके हृदय में क्रोध, मान, माया और लोभ का प्रवेश नहीं है, पक्षपात से वे कोसों दूर हैं। जो कहती हैं, शास्त्रोक्त और सप्रमाण कहती हैं।

प्रातः और मध्याह्न दो समय प्रवचन होते थे। प्रतिदिन सूचना के द्वारा उपदेश का विषय और स्थान बता दिये जाते थे। मेरा घर आर्यिकाओं के ठहरने के स्थान से लगभग दो मील दूर था, मन में धर्म के प्रति कोई विशेष रुचि या आकर्षण भी नहीं था अतः मैं नहीं जाती थी। माँ प्रतिदिन उपदेश सुनने के लिए जाती थी और घर आकर आर्यिकाओं की और उनके

उपदेश की जी भर प्रशंसा किया करती थी कि ऐसी साध्वियां तो मैंने अपने जीवन में अभी तक नहीं देखीं। क्योंकि हमारे नगर में प्रतिवर्ष साधु संघों का आगमन होता रहता है, इसीकारण हमारा नगर 'धर्मनगरी' भी कहा जाता है। माँ मुझे भी बार-बार कहती कि "बेबी ! तुम भी एक बार तो उपदेश सुनने चलो।" इस सारी चर्चा और माँ की बार-बार की प्रेरणा ने मुझे उत्साहित किया और एक दिन प्रवचन सुनने के इरादे से मैं भी माँ के साथ गई।

वह दिन मैं अपने जीवन में कभी नहीं भूल सकती। वह छवि भी मेरे स्मृतिपटल पर पूर्ववत् अंकित है। माताजी वर्ग पाट पर आसीन थीं। श्रोतासमुदाय के कारण स्थान भी छोटा पड़ रह था। आर्यिकाओं के सौम्य स्वरूप को देख कर मेरा मस्तक स्वतः ही नत हो गया, न जाने किस आकर्षण ने मुझे बाँध लिया था; हृदय असीम आह्लाद व शान्ति का अनुभव करता प्रतीत हुआ। अन्तरङ्ग में भावना जागी कि आर्यिकाओं के निकट जाकर बैठूँ परन्तु भीड़ में आगे जा पाना सर्वथा असम्भव था अतः पीछे ही बैठना पड़ा। आर्यिका सुपार्श्वमतीजी का उपदेश प्रारम्भ हुआ। विषय था : मानव जीवन का शृङ्गार ब्रह्मचर्य। माताजी कह रही थीं—

मातायें अनेक सन्तानों को जन्म देती हैं। यदि उनकी एक भी सन्तान—मुनि, आर्यिका, ब्रह्मचारी या त्यागी, व्रती बन जाती है तो उस माता का जन्म सफल हो जाता है। जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, देव भी उनके चरणों में नतमस्तक होते हैं। जिस पुरुष ने तीन लोक में चिन्ता-मणि रत्न समान अपना समस्त शील खो दिया है उसने मानो जगत में अपनी अपकीर्ति का ढोल बजाया है, अपने वंश में कालिमा लगाई है, चारित्र को जलाञ्जलि दी है, गुणों के समूह रूप बाग में आग लगाई है। समस्त आपत्तियों का संकेत स्थान कुशील है। जिसने शील बिगाड़ा है उसने मानो मोक्षनगर के द्वार पर दृढ़ता से किवाड़ लगा दिये हैं; ऐसा समझ कर हे भव्यप्राणियो ! कुशील का त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन करो।

अङ्कस्थाने भवेच्छीलं, शून्याकारम् व्रतादिकम्।
अङ्कस्थाने पुनर्नष्टे, सर्वं शून्यव्रतादिकम्॥

× ×

शुचिर्भूमिगतं तोयं, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचिर्धर्मपरो राजा, ब्रह्मचारी सदा शुचिः॥

× ×

अभुक्त्वाऽपि परित्यागात्स्वोच्छिष्टं विश्वभाषितं।
येन चित्रं नमस्तस्मै, कुमारब्रह्मचारिणे॥

सम्पूर्ण सभा ने मन्त्रमुग्ध होकर प्रवचन सुना। माताजी धारा प्रवाह बोल रही थीं नके विशद ज्ञान की थाह नहीं लगा पा रही थी मैं। भीतर ही भीतर मेरा मन मानव जीवन के ृङ्गार स्वरूप ब्रह्मचर्य को अपनाने का निश्चय कर रहा था। मैं प्रवचन से पूर्णतः ग्रभिभूत हो गई ी। ग्रनेक स्त्रीपुरुषों ने ग्रार्यिकाश्री से ब्रह्मचर्यव्रत ग्रंगीकार किया। मेरे मन ने भी निर्णय लिया— ाजीवन ब्रह्मचारिणी रहना।

सभा के बाद भी भीड़ के कारण ग्रार्यिकाग्रों के निकट जाकर चरण स्पर्श करने का ौभाग्य मेरा नहीं हो सका। मन ही मन कुमारब्रह्मचारिणे नमः का भाव लिए लौटी। माताजी ी ग्राहार क्रिया देखने का ग्रवसर भी मिला। ज्ञात हुग्रा ग्राज ही संघ का यहाँ से विहार होने ाला है। ग्राहार के बाद जब ग्रार्यिका सुपार्श्वमतीजी दातार के गृहाङ्गण में कुछ क्षणों के लिए ठीं तो शिक्षा देने लगीं—

ग्राहारनिद्राभयमैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

नुष्य पर्याय की सार्थकता धर्म धारण करने में ही है। हिंसा, झूठ, चोरी कुशील ग्रौर परिग्रह इन ाँच पापों का त्याग करना ही धर्म है।

माताजी ने वहाँ उपस्थित हम सब बालिकाग्रों को यह भी कहा कि जब तक तुम्हारा ववाह न हो तब तक के लिए तुम ब्रह्मचर्य व्रत ले लो। मैं बोली—माताजी! यदि कोई ग्राजीवन ह्मचर्य से रहे तो क्या हानि है? माताजी ने कहा—इसमें हानि कैसी; यह तो सर्वोत्कृष्ट है।

माताजी धर्मशाला में लौट ग्रायी। मेरा कोई विशेष परिचय नहीं हो सका। कुछ ण्टों बाद ग्रार्यिका संघ का विहार हो गया। पर मुझे न जाने क्या हुग्रा—ग्रार्यिका संघ के चले जाने मानो मेरा कुछ खो गया। रात हो ग्राई—मगर मेरी ग्राँखों में नींद नहीं। इन्दुमती ाताजी की स्नेहमयी छवि ग्रौर सुपार्श्वमती माताजी का उपदेशामृत मेरे हृदय को रससिक्त कर हे थे। माताजी की मन्द मुस्कान ग्रौर मधुर झिड़कियाँ रह-रह कर याद ग्रा रही थीं। मेरा मन ुग्रा यदि पंख होते तो..........

साहस करके मैंने माँ से कहा—"माँ! मुझे तो इन्दुमतीजी के चरणों की दासी बनना ै।" यह सुन कर एक बार तो मेरी माँ हँसी, मेरी बात को मखौल समझ कर बोली—जाग्रो! ार्यिका बन जाग्रो।

मैंने कहा—बहुत ठीक! ग्रार्यिका तो ग्रभी नहीं परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत तो मैंने ग्रभी से ही ले लिया है। मैं विवाह नहीं करूंगी–यह मैं भगवान की साक्षी ग्रौर तेरे चरणों का स्पर्श करके कहती हूँ।

मेरी मन:स्थिति भाँप कर माँ मुझे कुछ दिन बाद माताजी के पास ले आई। मेरा उनसे किसी प्रकार का परिचय तो था नहीं। इन्दुमती माताजी परीक्षक हैं। बिना जाँचे-परखे किसी को साथ रहने की अनुमति नहीं देते। मैं सुपार्श्वमती माताजी के पास पहुँची। मैंने कहा—मातेश्वरी! मैं तो आपके चरणों का आश्रय लेने आई हूँ। माताजी मुझे इन्दुमतीजी के पास ले गये। माताजी ने सब पूछताछ करने के बाद मुझसे कहा—बाई, ब्रह्मचर्य व्रत सोरो कोनी, लोहा का चना चबाना है, तू तो छोटी है, ब्रह्मचर्य व्रत पाल लेसी कांई? मैंने हाँ भरी तो माताजी ने कहा—अच्छा, अबार पाँच वर्ष को ब्रह्मचर्य व्रत ले ले। मैंने स्वीकार कर लिया, उसी दिन से माताजी के चरणसान्निध्य में रह रही हूँ।

मैं माताजी के गुणों का क्या वर्णन करूँ? आप वात्सल्य की अमृतसिन्धु हैं। भव-समुद्र से पार करने के लिए छिद्ररहित नौका हैं। भव्यात्मारूपी कमल वन को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य हैं। आप बाह्य में श्रीफल के समान कठोर दिखते हुए भी अन्तरङ्ग में द्राक्षावत् मृदु हैं। प्रमाद, आलस्य और निद्रा रूपी तस्करों से सदा सावधान रहने वाला आपका मानस निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लवलीन रहता है।

विहार करते हुए एक बार हम लोग रात्रि में किसी निर्जन स्थान में ठहरे। चारों ओर घना अन्धकार था। रात्रि में उल्लू की आवाज सुन कर तो मैं घबरा उठी, नई-नई आयी थी, कमरा छोड़ कर बाहर खुले में कभी सोई भी नहीं थी। माताजी ने कहा—किस बात का डर है? तुम्हें कोई खाता है क्या? चुपचाप सो जाओ। मैं बैठी हूँ।

उद्यमं साहसं धैर्यं बलबुद्धिपराक्रमाः।
षडेते यत्र विद्यन्ते तत्र दैव सहायकृत्॥

माताजी का साहस और धैर्य सराहनीय है। कैसी भी आपत्ति आ जाए आप घबराती नहीं। आपने निद्रा को तो मानो जीत ही लिया है। ११ बजे रात के बाद तो आप ही हम लोगों का पहरा देने के लिये सजग होकर बैठ जाती हैं।

आप रुग्ण होते हुए भी अपने सारे कार्य स्वयं करती हैं। समीप में सोने वालों की नींद न खुल जाए अतः आप बहुत धीमी चाल से चलती हैं, दरवाजे तक की आवाज नहीं होने देतीं। आपकी चाल वैसे तो तेज है परन्तु आश्चर्य यह है कि चलते समय आपका शरीर हिलता नहीं, न हाथ हिलते हैं। आप ऐसे चलती हैं जैसे नदी का पानी प्रवाहित हो रहा हो।

आप जिनभक्ति के घृत से भरा हुआ सम्यग्ज्ञान का दीपक लेकर चिदानन्द के अन्वेषण में तत्पर हैं। आपका हृदय करुणा का सागर है। वस्तुतः आपके गुणों की आप ही विशेष्य और

आप ही विशेषण हैं। मात्र ज्ञान के कोष तो कई हैं परन्तु उस ज्ञान को जीवन में उतारने वाले विरले ही हैं—माताजी उन विरलों में से हैं। आप रत्नत्रय की सजीव मूर्ति हैं।

विश्ववन्द्य वीतराग प्रभु के आगमानुकूल चर्या वाली, प्रातः स्मरणीय परम तपोधन, लोकोत्तरगुणसम्पन्न, आदर्श साधुराज पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज के चरण चिह्नों का अनुगमन करने वाली, धैर्यशालिनी, मृदुभाषिणी, करुणामूर्ति, अनेकानेक सद्गुणों की खान आर्यिका इन्दुमती माताजी के चरणों में मेरा कोटिशः वन्दन !

मेरी माता चिरायु होवे। जब तक गगन में सूर्यचन्द्र हैं तब तक माँ का उज्ज्वल यश जगत को समुज्ज्वल करता रहे। आपकी तेजोमय आभा मुझे दीप्ति प्रदान करे, मैं आपकी छत्रछाया में रह कर निरन्तर उन्नति करती रहूँ, यही भावना है।

चिरस्मरणीय प्रभावना

*

परम हर्ष का विषय है कि जैन समाज श्री १०५ आर्यिकारत्न पूज्य माताजी इन्दुमतीजी का अभिनन्दन कर रहा है। यह अभिनन्दन एक महान् साध्वी इन्दुमती माताजी का ही अभिनन्दन नहीं, अपितु एक त्यागी, तपस्वी एवं आदर्श नारी का अभिनन्दन है। पूज्य माताजी ने जिस उत्ताम त्याग मार्ग पर चल कर इस देश में आत्म कल्याण हेतु धर्मप्रचार करके हजारों अज्ञ प्राणियों को ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान किया है, वह समाज में चिरस्मरणीय रहेगा।

मैं १०५ आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी की शतायु की कामना करती हूँ। अभिनन्दन समारोह के लिये भी मंगल कामनायें प्रेपित करती हूँ।

—ब्र० कमलाबाई जैन, संस्थापिका व संचालिका
आदर्श महिला विद्यालय, श्रीमहावीरजी

पूज्य माताजी

❖

मेरी मातृभूमि डेह में श्री चन्दनमलजी पाटनी की सुपुत्री मोहनी बाई का जन्म आज से ७६ वर्ष पूर्व हुआ। वही मोहनीबाई आज अपने संयम, तप और त्याग के द्वारा आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के नाम से विख्यात है।

प्रथम बार जब मोहनीवाई मुनिसंघ के सान्निध्य में कुछ समय व्यतीत कर डेह लौटीं तब यहाँ के दोनों मन्दिरों में 'स्त्री-प्रक्षाल' की प्रथा न होने से अभिषेक पूजन में उन्हें काफी असुविधा हुई। कई दिनों तक श्री दिगम्बर जैन चिन्तामणि पार्श्वनाथ की नसियांजी में अभिषेक-पूजन की व्यवस्था हुई परन्तु शीघ्र ही आपने अपने ही मकान में गृहचैत्यालय स्थापित किया और इस प्रकार समस्त स्त्री समाज के लिए अभिषेक पूजन हेतु निर्विघ्न धर्मसाधना का उपयुक्त स्थान बना दिया।

वि० सं० २००६ में १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के कर कमलों से नागौर में आपकी आर्यिका दीक्षा हुई थी। तब से आज तक आप निरन्तर धर्म-साधना और धर्मप्रभावना के कार्यों में ही संलग्न रही हैं। अपने छोटे से संघ के साथ बंगाल, बिहार, आसाम, नागालैंड आदि प्रदेशों में भ्रमण कर आपने जैनधर्म की प्रभावना की है, वह अपने आप में एक मिसाल है।

मैंने भी आपकी और पूज्य (स्व०) आर्यिका विमलमती माताजी की प्रेरणा से डेह में पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के विशाल संघ की उपस्थिति में दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। अनन्तर आप ही की प्रेरणा से सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार किए हैं। मेरी प्रबल भावना है कि मैं भी पूज्य माताजी के समान ही आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्त्रीपर्याय से छूटने का पुरुषार्थ करूँ।

मैं देवाधिदेव १००८ वीर प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि माताजी दीर्घायु हों और इसी तरह श्रावक-श्राविकाओं को सन्मार्ग पर लगाती रहें।

—ब्रह्मचारिणी मदीवाई, डेह

परम करुणाशील आर्यिका

✲ संघस्था ब्र० नयनाकुमारी

इन्दु अर्थात् चन्द्रमा। चन्द्रमा के समान है धवल यशरूपी कान्ति जिनकी ऐसी प० पूज्य श्री १०५ आर्यिका इन्दुमती माताजी के सम्बन्ध में कुछ अभिप्राय प्रकट करने को मन अत्युत्कट हो रहा है।

चन्द्रमातुल्य ही नहीं अपितु चन्द्रमा को भी जीतने वाली, शीतलता प्रदान करने वाली इन माताजी का सान्निध्य, चरणसेवा, नेतृत्व-छाया बड़े सौभाग्य से मुझे मिल रही है। भव-भव के सन्ताप को मिटाने वाली शीतलता जहाँ मिलती है उससे अधिक कौनसा सुकृत्य है? चन्दन का तो कोई प्रयोजन ही नहीं ऐसा मुझे मालूम हो रहा है। इस भव सन्ताप को ही मिटाने के लिये आये हुए पू० माताजी के चरण सान्निध्य में पूज्य सुपार्श्वमती माताजी, विद्यामती माताजी, सुप्रभामती माताजी उत्कृष्ट शान्ति का लाभ ले रहे हैं। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

प्रजा तो उत्पन्न करने वाले सभी कोई हैं लेकिन सुप्रजा को तो बहुत विरले लोग ही उत्पन्न करते हैं। सुप्रजा के निर्माण का श्रेय त्यागी गणों को है। केवली भगवान कुछ नहीं कहते लेकिन उनकी मौन आकृति ही अन्य संसारी लोगों के वैराग्य का कारण बनती है।

इन्दुमती माताजी स्त्री होकर भी वीर पुरुषों के समान कार्य करने वाली महती गुण वाली हैं। आपने पूरे भारत देश का विहार केवल तीन माताजी को साथ में लिये हुए किया। ऐसी निर्भरता दृढ़ श्रद्धान के विना कैसे प्राप्त हो सकती है।

जो निश्चय किया है, चाहे कुछ भी हो जाय उससे फिर मुंह नहीं मोड़ते। निश्चयता पर अटल रहना ही महान् लोगों का लक्षण है।

आपके दिव्य अनुशासन में संघ परम वीतरागता की दृढ़ता का अनुकरण कर रहा है। आपका अन्तःकरण परमदया से आर्द्र रहता है। छोटे-वड़े सभी जीवों के प्रति आपके हृदय में परम करुणा भाव है किसी को भी किसी प्रकार की तकलीफ न हो, इस सम्बन्ध में आप पूर्ण सतर्क रहती हैं। लेकिन अपने बारे में यत्किंचित् भी भाव प्रकट नहीं करतीं। मानो आपको कभी किसी प्रकार का दुःख ही नहीं होता। एक बार की बात है—विहार में मार्ग में एक समय लघुशङ्का कर लौटते हुए आपके पाँव में एक नुकीला कांटा इस तरह चुभा कि कोमल चरण से खून की धारा वहने लगी। मैं आपके साथ गयी थी। मैं घबरा गयी। तुरन्त अन्य माताजी को आकर बोला। इतने में कमण्डलु के पानी से पैर धोकर अन्दर आ गयीं। मुझे कुछ भी नहीं हुआ—ऐसा बोलीं। अपने कारण विहार न रुक जाय, यह विशेष भावना थी।

आपका प्रत्यक्ष जीवन प्रतिक्षण प्रेरणा देता है, वीतरागता का दर्शन कराता है। विहार में कोमल चरण कमल, संयम का उपकरण पिच्छिका, कार्य करते समय कोमल हस्त, परम गम्भीर मुद्रा, खरगोश के समान चाल आदि शरीर की प्रतिक्षण की क्रिया में करुणा का श्रोत वहता है। वीतरागता के प्रति उन्मुखता है, ऐसे जान पड़ता है।

सम्यग्दर्शनदीपप्रकाशकामेयबोधसंभूताः।
भूरिचरित्र पताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु ॥

सम्यक्दर्शन रूपी दीपक से भव्य जीवों को प्रकाशित करने वाले जीवादि तत्वों के ज्ञान से सुशोभित, अतिशय से चारित्र की ध्वजा जिन्होंने फहराई है, वे साधुगण मेरी रक्षा करें।

सन्मार्गदर्शिका

वैधव्य—जीवन का भार, खुद के लिये भी और दूसरों के लिए भी अपशकुन; १८ वर्ष की आयु, अपरिपक्वबुद्धि, परिवार के वात्सल्य से वंचित मैं...... दुविधाग्रस्त, किंकर्त्तव्यविमूढ़, सर्वथा निराश, हताश !! तभी सुखद सान्निध्य मिला पूज्य इन्दुमती माताजी का और सुपार्श्वमतीजी का—अब तो मुझे ऐसा लगने लगा मानो अन्धे के हाथ बटेर लग गई हो। माताजी की ममतामयी वाणी से मेरा वैधव्य मेरे लिए वरदान बन गया। वह धर्मध्यान से संयुक्त हुआ और मैं साधनापथ पर आगे बढ़ी।

परम पूज्य इन्दुमती माताजी की अनुकम्पा और आशीर्वाद दीर्घकाल तक मुझे प्राप्त होते रहें, इसी भावना के साथ मैं पूज्य आर्यिका श्री के चरणों में शतशः वन्दामि निवेदन करती हूँ।

—ब्रह्मचारिणी देवकी बाई, संघस्था

वात्सल्यमयी माताजी

पूज्य माताजी इन्दुमतीजी के चरण सान्निध्य में लगभग पिछले वीस वर्षों से रहने का मुझे जो सुअवसर प्राप्त हुआ है इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। मैं निपट अबोध बालक था, यह भी नहीं जानता था कि भोजन किस हाथ से करना चाहिए, पूज्य माताजी ने मुझे शिक्षा दी और अपने आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो सकूँ, इस प्रकार की योग्यता प्रदान की। माताजी के मुझ पर अगणित उपकार हैं।

जन्मदात्री माँ का वात्सल्य न तो मैंने देखा और न ही अनुभव किया किन्तु उससे अधिक वात्सल्य मुझे पूज्य माताजी से मिला।

दीर्घकाल तक इनकी हार्दिक ममता प्राप्त करता हुआ आत्मकल्याण के पथ पर आगे बढ़ता रहूँ—इस भावना के साथ पूज्य माताजी के चरणों में सविनय, श्रद्धा सहित विनयाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

माँ के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन !

—ब्रह्मचारी कैलाशचन्द सेठी, संघस्थ

अटूट गुरुभक्ति

ब्रह्मचारी नेमीचन्द बड़जात्या, नागौर

महान् तपस्वी (स्व०) आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज का चातुर्मास जब खानियां-जयपुर में हुआ था तब मैं (स्व०) भाईजी श्री चाँदमलजी बड़जात्या, ब्र० मोहनीबाई और ब्र० मथुराबाई (स्व० विमलमती माताजी) आदि के साथ पूज्यश्री के दर्शनार्थ गया था। लगभग एक माह तक महाराज के सान्निध्य का बड़ा लाभ मिला। उन दिनों खानियां की स्थिति आज जैसी नहीं थी, पहाड़ पर घने जंगल के कारण जंगली जानवरों का उपद्रव भी होता रहता था।

पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज आहार के बाद सामायिक करने हेतु प्रायः पहाड़ पर चले जाया करते थे। एक दिन की बात है कि महाराज के पहाड़ पर चले जाने के बाद, थोड़ी देर में एक व्यक्ति ने आकर सूचित किया कि नागा बाबा के पास तो शेर आया है। इस सूचना से हम सब भयभीत हो गये कि अब क्या होगा? महाराजश्री के पास जाने की हिम्मत भी नहीं हो पा रही थी और सबके चित्त चिन्तित भी हो रहे थे। तभी ब्र० मोहनी बाई ने हिम्मत करके सबको ललकारते हुए कहा कि यदि महाराज को कुछ हो गया तो हम भी जीवित रह कर क्या करेंगे? चलो, मेरे साथ!

गुरुभक्त ब्र० मोहनी बाई आगे बढ़ कर जय बोलती हुई पहाड़ की ओर जाने लगी तो हम सब उपस्थित श्रावक-श्राविकाएँ भी उनके साथ हो गये। जय बोलते हुए जब महाराजश्री के पास पहुँचे तब तक शेर उठ कर जा चुका था, उसके पांवों के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। महाराज-श्री प्रसन्नमुद्रा में स्वाध्याय कर रहे थे। यही निर्भीक, निडर मोहनी बाई आज पूज्य इन्दुमती माताजी के रूप में दिगम्बर जैन धर्म की अतिशय प्रभावना कर रही हैं। आपकी क्षुल्लिका दीक्षा

(स्व०) आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज के हाथों हुई थी कसावखेड़ा में और नागौर में आपने (स्व०) आचार्य वीरसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी। तब से आप निर्दोषरीत्या स्व-पर कल्याण में संलग्न हैं।

संघस्थ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी परम विदुषी एवं प्रखर वक्ता हैं। आपके प्रवचनों से व लेखनी से जैनाजैन समाज का महान् कल्याण सम्पन्न हो रहा है। आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी भी निरन्तर स्वाध्याय निरत रहती हैं। पूज्य इन्दुमतीजी ने संघ सहित सुदूर पूर्वाञ्चल में विहार कर जैनाजैन समाज को जैन धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों से परिचित कराया है।

पूज्य माताजी दीर्घायु होकर स्वपर कल्याण करते रहें और क्रमशः स्त्री पर्याय का छेद कर शीघ्र अविनाशी मोक्षसुख प्राप्त करें, यही भावना है। साथ ही हमें भी आशीर्वाद प्रदान करें ताकि हम भी आत्मकल्याण में अग्रसर हो सकें।

मंगल कामना

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अभिनन्दन समिति ने आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का अभिनन्दन करने एवं अभिनन्दन के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन करने का निश्चय किया है।

पूज्य आर्यिकाश्री के श्रीचरणों में नमोस्तु निवेदन करता हुआ मैं आपके प्रयास एवं अभिनन्दनग्रन्थ की पूर्ण सफलता की मङ्गल कामना करता हूँ।

—प्रकाशचन्द सेठी, रेल मन्त्री, भारत सरकार

चारित्र शिरोमणि

❖ ब्र० धर्मचन्द जैन
आचार्य धर्मसागर महाराज संघस्थ

मानव समाज का कल्याण करने वाले साधनों में सन्त समागम का सर्वोपरि स्थान है। प्रातः स्मरणीय आ० श्री जिनसेन स्वामी ने महापुराण में कहा है कि :—

मुष्णाति दुरितं दूरात्परं पुष्णाति योग्यताम्।
भूयः श्रेयो नु बध्नाति प्रायः साधुसमागमः ॥

सन्त समागम द्वारा पापों का क्षय होता है, आत्मा की शक्ति विकसित होती है और जीव कल्याण के पथ में प्रवृत्त होता है। संत तुलसीदासजी ने कहा है :—

पुण्य पुञ्ज बिनमिलहिं न संता।
सत् संगति संसृति कर अन्ता ॥

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का सान्निध्य मुझे १९७२ ई० में जब मैं मासोपवासी मुनिराज १०८ श्री सुपार्श्वसागरजी के संघ के साथ तीर्थराज सम्मेदाचल पर दर्शनार्थ गया था, प्राप्त हुआ था।

तब से निरन्तर मुझे उनका वात्सल्य प्राप्त होता रहा है। गुणीजनों के प्रति उनके हृदय में सहज वात्सल्य भाव है। उनकी प्रवृत्ति अनुसन्धानोन्मुखी रही है। मैं तभी से माताजी के सम्पर्क में रहा। आपके संघ में प्रेम पीयूष प्रदायिनी विदुषी रत्न आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी के उपदेश से स्वाध्याय के फल ज्ञान का विकास प्राप्त करता रहा हूँ।

आर्यिका इन्दुमती माताजी कहा करती हैं कि—भैया! ज्ञान कोई किताबों में नहीं लिखा, यथार्थ ज्ञान तो हमारी आत्मा में विद्यमान है, पर

कर्म मैल ने उसे ढक रखा है, धर्मशास्त्र इस कर्म मैल को साफ करने में मार्ग दर्शक हैं। जो ज्ञान चिन्ता को मिटाये वह सुख का मार्ग है एवं कारण है।

वचन की पक्की :

पूज्य माताजी वचन की पक्की हैं। अड़गाबाद (बंगाल) में माताजी ने कहा कि—यहाँ से कल विहार होगा। परन्तु रात्रि को पूज्य माताजी (इन्दुमतीजी) के पैर में भयानक दर्द हो गया। चलना-फिरना कठिन हो गया तब समस्त समाज को चिन्ता हो गई, क्या उपचार किया जाय।

सभी गाँवों में विहार का समाचार चला गया। आगे वाले गाँव के लोग लेने के लिये आ गये परन्तु प्रात: १० बजे तक पैर वैसे का वैसा रहा। उठना कठिन हो रहा था। लोगों को चिन्ता हो चली विहार कैसे होगा। स्थानीय लोग तथा संघ के अन्य साधुओं ने कहा कि—पैर जब ठीक होगा तब विहार होगा—आदि। सब की बातें सुनने के बाद आ० इन्दुमतीजी ने कहा कि—हमने कह दिया एवं वचन दिये हैं सो हम तो विहार करेंगे। माताजी ने मन्दिर में भगवान के दर्शन किये और णमोकार महा मन्त्र का जाप्य करके वहाँ से विहार कर दिया। लोग आश्चर्य करने लग गये। दर्द था वह कहाँ गायब हो गया। धन्य है त्याग, तपके प्रभाव को।

आपके जीवन में अनेकानेक आश्चर्यकारी घटनाएँ घटीं, उपसर्ग भी आये परन्तु आपने सब कुछ समता भाव से सहन किया।

चारित्र शिरोमणि :

बंगाल, बिहार, आसाम जहाँ सैंकड़ों वर्षों से दिगम्बर जैन साधु नहीं गये वहां पर जा कर भगवान महावीर का सन्देश गाँव-गाँव, नगर-नगर में पहुँचा कर सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह के मार्ग का दिग्दर्शन करते हुए गौहाटी (आसाम) में चातुर्मास किया।

परम पूज्य चारित्र शिरोमणि आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी अनेक गुणों की पुञ्ज हैं। आपकी सौम्य व सरल आकृति, आपके आन्तरिक वैराग्य की परिचायिका है। आपका हृदय निष्कपट एवं उदार है, आप प्राणि मात्र की हितचिन्तक, मानव समाज की मंगल विधायिका और संघ की सफल संचालिका हैं। ऐसी त्यागमूर्ति, वैराग्यमयी, चारित्र शिरोमणि के चरणों में विनम्र नमोस्तु !

❖

शान्त मौन मूर्ति

मुझे पूज्य इन्दुमती माताजी के सर्वप्रथम दर्शन किशनगंज में हुए। बाद में तो कई बार दर्शन करने के अवसर मिले किन्तु प्रथम-दर्शन में जो छवि मेरे मनदर्पण में उतरी, उसे यहाँ अंकित करने का प्रयास है।

शान्त मौन-मूर्ति, यह है उनका सर्वांग, सम्पूर्ण परिचय। कम से कम बोलना, यह माताजी की विशिष्टता है। परिणामों में शान्ति अवतरित हुई है जो सारे दिन-रात उन्हें घेरे में रख कर सच्चे साधु का साक्षात् परिचय कराती है। वात्सल्यपूरित माँ के सभी गुण आप में भरे हुए हैं। आपके संघ में जो कौटुम्बिक वातावरण है, वह दूसरे संघों के लिए पदार्थपाठरूप है। इतनी उम्र में भी आपकी सारी चर्या शास्त्रोक्त है।

आपने आर्यिका श्री सुपार्श्वमतीजी को इस चर्या का पहरेदार बना रखा है, सो वे खुद चलती हैं और साथ में आर्यिका विद्यामतीजी, सुप्रभामतीजी व संघ को चलाती हैं। वे खुद अत्यन्त विदुषी होते हुए भी अपनी गुराणी का अनहद मान-सम्मान रखती हैं जिससे वे एक आदर्श शिष्या बनी हुई हैं।

पूज्य इन्दुमतीजी 'इन्दु' माने चन्द्रमा जैसी शीतल हैं, उष्णता का अंश नजर नहीं आता। अपने पद के अनुकूल जानकारी—शास्त्रों की (सिद्धान्त) और आचरण दोनों आपमें पूर्ण रूप में है।

सारे भारत के संघों में अत्यन्त प्रभावशाली और पुण्यशाली कोई संघ है तो वह पूज्य माताजी का संघ है। प्रभावना अनहद होती है और भक्तों को ज्ञान-प्रसाद मिलता है जो अन्यत्र दुर्लभ है या नहिवत् है।

पूज्य माताजी शत् शरद् जीवें, धर्म की प्रभावना में वृद्धि करती रहें। इन्हीं कामनाओं के साथ मेरी नम्र प्रणामाञ्जलि स्वीकार करें।

—ब्र० कपिल कोटड़िया, हिम्मतनगर

जगदुद्धारक आर्यिकाश्री

मैं १२ वर्ष की अल्पायु में ही विधवा हो गई थी। माता-पिता की इकलौती लाड़ली बेटी थी। धर्म क्या होता है? और विधवावस्था में क्या करना चाहिए कुछ भी नहीं समझती थी। माँ दिन भर मुझे देख-देख कर रोती थी कि कैसे इसका जीवन पूरा होगा तभी मेरे शहर कुचामन सिटी में परम पूज्य इन्दुमती माताजी का पदार्पण हुआ। प्रवचन होते—मैं भी जाती, परिचय हुआ। शनैः शनैः माताजी ने मेरी वेशभूषा उतरवायी तथा अनेक बार मार्मिक उद्‌बोधन देते हुए यथार्थ जीवन का परिचय कराया। इस प्रथम परिचय के कुछ समय बाद से ही मैं माताजी के साथ रहने लगी और आपकी प्रेरणा से धर्मसाधना हेतु सप्तम प्रतिमा के व्रत भी ग्रहण किये।

माताजी के हृदय की अनुकम्पा का क्या बखान करूँ! उनके हृदय को तो वही जान सकता है जो कभी उनके निकट आया हो या कुछ काल तक साथ रहा हो। अन्यथा उनके चेहरे के तेज से सबको भय सा लगता है। सभी कहते हैं कि आर्यिका सुपार्श्वमतीजी में तो माँ जैसी ममता है परन्तु बड़े माताजी (इन्दुमतीजी) में पिता जैसी कठोरता, सख्त अनुशासन। हाँ, अनुशासन तो उनमें है पर वे द्रवीभूत भी शीघ्र हो जाती हैं। उन्हें प्रत्येक कार्य समय पर करना ही अच्छा लगता है। किसी को तकलीफ हो ऐसा तो वे सहन भी नहीं कर सकतीं। उनके गुणों को व्यक्त करने की क्षमता मुझमें बिल्कुल भी नहीं है; जो कुछ योग्यता मुझमें विकसित हुई है, वह सब पूज्य माताजी की ही अनुकम्पा है, अनुग्रह है, प्रसाद है।

जगदुद्धारक माताजी के श्रीचरणों में शत-शत वन्दन!!!

—ब्रह्मचारिणी हरकीबाई, संघस्था

प्रभावक संघ

भागचन्द सोनी, अजमेर
संरक्षक : अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

वर्तमान आर्यिका संघों में परम पूज्य १०५ श्री इन्दुमती माताजी का संघ अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। पूज्य माताजी सरल, शान्त, गम्भीर, संयम-साधिका और तपस्विनी हैं। आपके नेतृत्व में संघ ने भारत के सभी प्रमुख नगरों में विहार किया। विशेषतः भारत के सुदूरवर्ती पूर्वी प्रदेशों में जहां अभी तक दिगम्बर साधुओं का कभी विहार नहीं हुआ—वहाँ पिछले वर्षों में आपके संघ का विहार हुआ जिससे वहां की जनता को अपूर्व और अनुपम धर्म-लाभ हुआ। इसके साथ ही अनेक धर्म-प्रभावक महोत्सव व समारोह हुए। जहाँ जहां भी आपके संघ का विहार हुआ वहां की जैन व जैनेतर जनता ने आपके धर्मोपदेशों को सुना और जीवन में उतारने का भी प्रयत्न किया। इस विहार-काल में आपके संघ ने अपनी धर्मसाधना और त्यागमयी वाणी की अमिट छाप छोड़ी। यह, वास्तव में, जैन इतिहास में एक उल्लेखनीय महत्त्वपूर्ण बात है। माताजी का संघ सर्वत्र सभी वर्गों के व्यक्तियों व समाज द्वारा अभिनन्दित हुआ; यह गौरव का विषय है।

पू० माताजी इन्दुमतीजी का संघस्थ आर्यिकाओं के साथ मातृत्व भरा, मृदुल एवं वात्सल्यपूर्ण व्यवहार है, इस कारण ही वे संघ-नायिका के पद पर प्रतिष्ठित हैं और अपनी गरिमा से संघ का संचालन कर रही हैं। संघस्थ आर्यिकाओं ने भी धर्म-प्रभावना के कार्यों में महान् योग दिया है।

आपके संघ की परम विदुषी, सुयोग्य, गहन अध्ययनशील, ललित वाणी धारिका पू० १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी के द्वारा संघ को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है और आपके पांडित्यपूर्ण धर्मोपदेश से भारत का कोना-कोना प्रभावित हुआ है। आप सदृश परम विदुषी से सारा समाज गौरवान्वित हुआ है।

बहुत समय हो गया, आपके संघ का चातुर्मास होने का सौभाग्य अजमेर नगर को प्राप्त हुआ था, सभी समाज को आपके उपदेशों से अपरिमित लाभ हुआ और संघ की वैयावृत्ति का दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ। मुझे व मेरे परिवार को संघ के दर्शनों का सौभाग्य चातुर्मास के समय एवं श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के समय भी प्राप्त हुआ था।

पू० इन्दुमतीजी, सुपार्श्वमती माताजी एवं अन्य माताजी को मेरा सपरिवार सादर वन्दामि। संघ के सर्व प्रकार से कुशल-मंगल की इच्छा करता हुआ, निर्विघ्न संयम-साधना की भावना करता हुआ, उनके द्वारा सदैव जैन धर्म की विशेष प्रभावना की कामना करता हूँ।

मंगल कामना

परम पूज्य आर्यिकारत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी सतत आत्मकल्याण में जागरूक रहने वाली निर्भीक नारी रत्न हैं। आपके सौम्य व्यक्तित्व का साहचर्य पाकर अनेक स्त्री पुरुषों ने शक्त्यनुसार व्रत नियम ग्रहण किये हैं। आपको अपने जैसी ही विदुषी शिष्या श्री सुपार्श्वमती माताजी का समागम मिला है। श्री विद्यामतीजी और श्री सुप्रभा-मतीजी के साहचर्य ने भी संघ की गरिमा बढ़ाई है। आपने संघ सहित सम्पूर्ण भारत में विशेषतः पूर्वोत्तर भारत में जैनधर्म का प्रचार-प्रसार कर अभूतपूर्व कार्य किया है। जहां मन्दिर-चैत्यालय नहीं थे वहाँ इनकी स्थापना कर सुश्रावकों के लिए निष्ठा के आलम्वन केन्द्र स्थापित किये हैं। ऐसी गणिनी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर आप प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।

मैं अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु सफलता की कामना करती हूँ। साथ ही पूज्य माताजी के स्वस्थ एवं नीरोग, दीर्घजीवन के लिये प्रार्थना भी।

"हे माता शत-शत वन्दन, तुम हो जग में शीतल चन्दन।"

—चरणसेविका : ब्र० मैनाबाई डेह निवासी

अभिवन्दन !

*

त्याग और तपस्या की मूर्ति हैं पूज्य इन्दुमती माताजी। समिति ने उनके अभिनन्दन ग्रन्थ का कार्य हाथ में लिया........यह एक पुनीत कार्य है जिसके लिए सबका आशीर्वाद अभीष्ट है।

आर्यिका के व्रत धारण कर पूज्य माताजी आत्म कल्याण में प्रवृत्त हुई हैं। आप सदैव आत्मचिन्तन में लीन रहती हैं। प्रमाद से कोसों दूर हैं। "सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं" की आप साकार रूप हैं।

आप धन्य हैं ! डेह की पावन नगरी धन्य है जिसने ऐसे महिला-रत्न को जन्म दिया है। डेह निवासी इसलिए भी सारे भारत में प्रसिद्ध हैं कि वे कट्टर आर्षपरम्परा के रक्षक हैं, पोषक हैं और किसी के भुलावे में आने वाले नहीं।

पूज्य माताजी के संघ में आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी जैसी विदुषी और प्रभावशालिनी माताएँ हैं। पिछली कई शताब्दियों में पहली बार इस संघ ने आसाम, डीमापुर, नागालैंड प्रदेशों में विहार कर तत्रस्थ निवासियों का समीचीन मार्गदर्शन कर उनका महदुपकार किया है जिसके लिये सम्पूर्ण जैन जगत् संघ का कृतज्ञ है।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महा सभा ऐसे रत्नों का हार्दिक अभिनन्दन करती है। जिनेन्द्र भगवान से यही प्रार्थना है कि माताजी दीर्घायु हों और दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियों की धार्मिक आस्था को दृढ़ करने में अपना अनुपम योग देती रहें।

—निर्मलकुमार जैन सेठी

अध्यक्ष, अखिल भारतवर्षीय दि० जैन महासभा

निर्भीक गुरु की निर्भीक शिष्या

हरकचन्द सरावगी (पाण्डया)
अध्यक्ष, अ० भा० शान्तिवीर दि. जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा

महान् तपस्वी आचार्यकल्प १०८ चन्द्रसागरजी महाराज के सम्पर्क ने डेह निवासी, पाटनी एवं सेठी कुल को समुज्ज्वल करने वाली मोहनी बाई का जीवन-क्रम ही पलट दिया। मोहनी बाई ने गुरुवर से क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण किये थे। आपकी आर्यिका दीक्षा नागौर में पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के कर-कमलों से हुई थी। गुरुभक्त माताजी ने अपनी जीवनचर्या से सभी को आकृष्ट और मुग्ध किया है। मुझे भी समय-समय पर आपके दर्शन करने का व प्रवचन सुनने का अवसर मिलता रहता है। मैंने आपको सदैव 'ज्ञानध्यानतपोरक्तः' पाया है। आपकी चर्या पूर्णतः आगम के अनुकूल होती है। निर्भीक गुरु की आप निर्भीक शिष्या हैं।

हमारे निवास स्थान सुजानगढ़ में वि० सं० २०१७ में आचार्यश्री १०८ शिवसागरजी महाराज ने विशाल संघ सहित चातुर्मास किया था। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का संघ भी साथ में था। साधुओं के समागम से समाज में त्याग और चारित्र के प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। श्री विद्यामतीजी ने आर्यिका के व्रत इसी वर्षायोग में विशाल जनसमूह के मध्य ग्रहण किये थे। वह दृश्य आज भी मेरी स्मृति में ज्यों का त्यों सुरक्षित है।

पूर्वोत्तर भारत में आर्यिका संघ के विहार से जो धर्मप्रभावना हुई है उसे यदि 'न भूतो न भविष्यति' भी कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। साधुगण चलते फिरते तीर्थ होते हैं, उनके समागम से तत्काल फल की प्राप्ति होती है अर्थात् जीव का कल्याण होता है। माताजी के सम्पर्क में आने से अनेक लोग हिंसा के मार्ग से विरत हुए हैं, उन्होंने दुर्गुणों का त्याग किया है और अपने श्रेष्ठ आचरण से वे आज सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

संघ की सभी आर्यिकाओं—आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी की आप पर अटूट श्रद्धा-भक्ति है और उन्हें भी आपसे अनुपम वात्सल्य और सौहार्द सम्प्राप्त हुआ है। सबके सहयोग से संघ विशेष धर्मप्रभावना कर रहा है।

मैं यही भावना भाता हूँ कि यशस्वी माताजी चिरजीवी हों और इसीप्रकार स्वपर-कल्याण में रत रहें।

तपस्विनी माताजी के चरणों में सविनय वन्दामि !

अभिवादन

परम पूज्य आर्यिका इन्दुमती माताजी अपने छोटे से संघ सहित जैनधर्म की जो अभूतपूर्व प्रभावना इस युग में कर रही हैं वह चिरस्मरणीय रहेगी। आपके प्रयत्नों से अनेक गृह चैत्यालय स्थापित हुए हैं। आपके सान्निध्य में वेदी प्रतिष्ठाएँ और पंचकल्याणक महोत्सव आयोजित हुए हैं। श्रद्धा और भक्ति के इन स्थानों के निर्माण से आने वाली कई पीढ़ियाँ लाभान्वित होंगी और उनमें धार्मिक संस्कार विकसित होंगे।

आसाम, बंगाल, नागालैण्ड आदि प्रदेशों में आपके मंगलविहार से नयी धर्म-चेतना जाग्रत हुई है। अनेक स्त्री पुरुषों ने मद्य-मांस-मधु और रात्रि भोजन का त्याग किया है अहिंसा धर्म को अंगीकार किया है।

मेरा माताजी से काफी पुराना परिचय है। माताजी प्रारम्भ से ही अपनी चर्या में कठोर रही हैं, शिथिलता आपको जरा भी पसन्द नहीं। अनुशासन और स्वावलम्वन ही आपको विशेष प्रिय रहते हैं। आप कम बोलती हैं पर बिना बोले ही आपके सौम्य मधुर व्यक्तित्व से बहुत कुछ उपदेश मिल जाता है, यह सम्पर्क में आने से ही ज्ञात होता है।

पूज्य माताजी नीरोग और स्वस्थ रह कर सतत स्व-पर कल्याण में संलग्न रहें यही भावना है। आर्यिकाश्री के चरणों में सविनय वन्दामि !

—ब्र० सूरजमल जैन, निवाई

अनुपम धर्मोद्योत

✡ रायबहादुर हरकचन्द्र जैन, राँची

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि आप पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी का अभिनन्दन करने जा रहे हैं और उस अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन भी कर रहे हैं।

श्री पूज्य १०५ आर्यिका इन्दुमती माताजी के संघ द्वारा सम्पूर्ण भारत में विशेष धर्मोद्योत हुआ है। संघस्थ सभी आर्यिका माताजी के उपदेशों द्वारा लाखों ही प्राणी लाभान्वित हुए हैं। संयम एवं चारित्र का विशेष रूप से प्रसार हुआ है। आपके संघ में पूज्य आर्यिका सुपार्श्व-मतीजी, विद्यामतीजी, सुप्रभामतीजी सभी ध्यानाध्ययन में रत रहते हैं। पूज्य १०५ आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी अनेक ग्रन्थों के रचयिता, सरल स्वभावी, मृदुभाषी और जैन सिद्धान्त के विशेष पाठी हैं। आपका मधुर उपदेश सुनते हुए श्रोतागण कभी नहीं अघाते।

पूज्य माताजी ने संघ सहित सारे भारत में विहार किया है। पश्चिमी बंगाल के अनेक नगरों में तथा आसाम प्रान्त में भी आपका ससंघ विहार हुआ है। आपकी प्रेरणा, सान्निध्य एवं छत्रछाया में आसाम में विजयनगर का सुप्रसिद्ध पञ्चकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुआ। सम्पूर्ण आसाम प्रान्त में आपके संघ के माध्यम से जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ है, जैनधर्म की ध्वजा खूब फहरी है।

वर्तमान में पूज्य माताजी के संघ का चातुर्मास गिरिडीह में हुआ है। गिरिडीह जैन समाज का यह अत्यन्त सौभाग्य है कि आर्यिका संघ का चातुर्मास उनके नगर में सम्भव हो सका। विहार प्रान्त में भी अनेक नगरों में तथा सम्मेदाचल तीर्थराज पर आपका विहार हुआ।

उस समय अनेक वार आपके दर्शनों का लाभ मिला। राँची समाज के पुण्योदय से आर्यिका संघ का पदार्पण राँचीनगर में भी हुआ था। उस समय मुझे पूज्य आर्यिका संघ के दर्शनों व उपदेशों का लाभ विशेष रूप से मिला, जिससे मुझे बड़ी शान्ति मिली।

मैं पूज्य १०५ ससंघ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी का सादर अभिनन्दन कर उनके चरणों में प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हुआ, आर्यिका माताजी के स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य एवं रत्नत्रय-कुशलता की कामना श्री वीर प्रभु से करता हूँ तथा भावना करता हूँ कि उनके संघ के माध्यम से अवनितल पर दीर्घ काल तक निरन्तर रत्नत्रयधर्म का प्रचार प्रसार होता रहे।

मैं अभिनन्दन ग्रन्थ और अभिनन्दन समारोह दोनों की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

मंगल कामना

पूज्य आर्यिका इन्दुमती माताजी के संघ की सभी आर्यिकाएँ सुन्दर आदर्श प्रस्तुत कर रही हैं। विदुषी आर्यिका सुपार्श्वमतीजी के उपदेश से लाखों लोगों का कल्याण हुआ है। वे चारों अनुयोगों की ज्ञाता हैं। आर्यिका सुप्रभामतीजी हमारे श्राविकाश्रम की छात्रा रही हैं। वे विदुषी और अध्यवसायी हैं। सम्पूर्ण संघ उत्कृष्ट चारित्रधारी है। हमारे श्राविकाश्रम में संघ का आगमन हुआ था। संघ की विद्वत्ता का लाभ सब छात्राओं को प्राप्त हुआ। इस संघ का विहार सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में हुआ है।

संघ के द्वारा धर्म प्रभावना होती रहे और पू० इन्दुमती माताजी शतायु हों—यही मंगल भावना है।

—पद्मश्री पं० सुमतिबाई शहा
अध्यक्षा, श्राविका संस्थानगर, सोलापुर

रत्नत्रय की मूर्ति माताजी

परम पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतीजी का दि० जैन समाज अतिशय कृतज्ञ है। उन्होंने अपने नारी जीवन को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। वे प्रभावक संघ नायिका सिद्ध हुई हैं। उनके संघ ने भारत के पूर्वांचल में जो प्रभावक छाप छोड़ी है वह सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहेगी। आज पूज्य माताजी गिरिराज सम्मेदशिखरजी पर विराजमान हैं। अतः वहां की यात्रा करने वाले को द्विगुणित लाभ की प्राप्ति होती है। उनके संघस्थ पूज्य आर्यिका माता सुपार्श्वमतीजी, जिनकी कि सच पूछो तो माता इन्दुमतीजी ही संस्कारदायिनी माँ हैं, अपने प्रामाणिक सदुपदेशों द्वारा जन-जन को सन्मार्ग की ओर अनुप्राणित कर रही हैं। उनकी सरल एवं सरस वाणी के द्वारा जिज्ञासु सहज ही अपनी शंका का समाधान प्राप्त कर लेता है।

माता इन्दुमतीजी के श्रद्धालु भक्त उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर रहे हैं। इससे पूज्य माताजी का क्या यह तो उनके भक्तों का ही स्वतः पुण्योपार्जन का एक अंग है जिसके वहाने से वे गुरु भक्ति के सुमन अर्पित कर रहे हैं। मैं इस श्रद्धा यज्ञ में अत्यन्त भक्ति के साथ सम्मिलित हूँ। जब भी अवसर मिला है मैंने माताजी के पुण्य दर्शन का लाभ उठाया है और वे क्षण मेरे जीवन के धन्य क्षण हैं। इस युग में ऐसे वीतरागी गुरुओं का चरण-सान्निध्य ही वास्तव में संयम की भूमिका निभाने में दृढ़ता प्रदान करता है, ऐसा मेरा अटूट विश्वास है। यद्यपि पूज्य माताजी बहुत कम बोलती हैं परन्तु उनकी अत्यन्त सौम्य एवं वात्सल्य पूर्ण मुद्रा विना बोले ही बहुत कुछ कह देती है। यह सुस्मित दृष्टि जिस पर पड़ गई उसका सौभाग्य जग गया समझना चाहिए।

श्री पार्श्वप्रभु के चरणों में मेरी विनम्र प्रार्थना है कि समस्त दि० जैन समाज का ऐसा सौभाग्य रहे जो तीर्थराज सिद्ध क्षेत्र पर आने वाले श्रद्धालु भक्त तीर्थ वन्दना के साथ ही दीर्घकाल तक पूज्य माताजी के पुण्य दर्शन एवं उनका आशीर्वाद प्राप्त करते रहें।

—सेठ बद्रीप्रसाद सरावगी, पटना सिटी

❖

मंगल कामना

परम पूज्य १०५ आर्यिका इन्दुमतीजी ने अपने आदर्श जीवन से भारत देश और नारी जाति को गौरवान्वित किया है। मरुभूमि में जन्म लेकर सम्पूर्ण देश को अपने उत्कृष्ट आचरण से लाभान्वित करते हुए आपने नारी पर्याय को सार्थक किया है।

महानगर कलकत्ता में वर्षायोग करके आपने हम लोगों पर असीम उपकार किया; अनन्तर, जहां कभी दिगम्बर साधुओं के चरण नहीं पड़े उन क्षेत्रों—बंगाल, आसाम, नागालैंड—में भी मंगल विहार करके आपने जैनधर्म की विशेष प्रभावना की है; अहिंसा धर्म का उद्योत किया है।

मैं यही मंगल कामना करता हूँ कि पूज्य माताजी दीर्घायु हों और उनका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता रहे। उनके श्री चरणों में शत-शत वन्दन !

माणकचन्द पाटनी, अध्यक्ष
आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अभिनन्दन समिति

विनयाञ्जलि

विद्यमान दिगम्बर जैन आम्नाय की साध्वियों में आर्यिकारत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी का उल्लेखनीय स्थान है। प्राय: बालब्रह्मचारिणी पूजनीया माताजी गत तीस-पैंतीस वर्षों से गृहत्यागिनी तपस्विनी का जीवन जीती हुई स्व-पर कल्याण में रत रहती आई हैं। ऐसी एकनिष्ठ धर्मप्रभाविका, आत्मसाधिकाओं से ही स्त्रीजाति गौरवान्वित है।

पूज्या माताजी के तप:पूत व्यक्तित्व एवं धर्मप्रभावक कृतित्व का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए, हम उनकी मोक्षमार्गी साधना की सफलता की कामना करते हैं और उनके प्रति अपनी विनम्र विनयाञ्जलि अर्पित करते हैं।

—(डॉ०) ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

विनयाञ्जलि

संसार में प्राणियों के लिए सिर्फ एक ही कार्य ऐसा है जो दुष्कर है और वह है वीतरागमार्ग की साधना। पञ्चम काल में तो यह बात और भी सटीक है। भव्यों के ज्ञानचक्षु खोलने में सतत तत्पर रहने वाले त्यागी और ज्ञानी साधु सन्तों की अक्षुण्ण परम्परा के रूप में आज जो भी आर्षमार्गी त्यागी-व्रती मुनियों की चर्या का निरतिचार पालन करते हैं, उनके ही ज्ञान, तप, कृपा और आशीष से हमारा धर्म और समाज आज की विकट परिस्थितियों में भी अपना अस्तित्व कायम रखे हुए है। ऐसे कुछ इन-गिने सन्तों की परम्परा में १०५ परम पूज्य विदुषी आर्यिकारत्न श्री इन्दुमती माताजी की ओजमयी धर्मवाणी के रसास्वादन का अवसर हमें मिल रहा है, यह सभी का सौभाग्य है।

जीवित तीर्थ के रूप में माताजी ने देश में सर्वत्र विहार करके ज्ञान, धर्म, त्याग तपस्या की जो मिसाल कायम की है वैसी मिसाल सदियों में कभी-कभी ही देखने में आती है। आपके ज्ञान-प्रकाश से समाज आलोकित हुआ है और आज हमें धर्मचर्चामय वातावरण की झलक जगह-जगह दिखाई देने लगी है। ७६ वर्ष की उम्र में आज भी आपकी निरतिचार साधना दूसरों के लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य कर रही है। यह समस्त श्रावकों के लिए परम गौरव और हर्ष की बात है। परम विदुषी पूज्य १०५ आर्यिका श्री सुपार्श्वमतीजी का सान्निध्य प्राप्त होना तो जैन परम्परा के सौभाग्य का सूचक है ही, शायद ही इसमें दो राय हो।

श्री सम्मेदशिखरजी में वृहद् इन्द्रध्वजविधान के आयोजन के समय पूज्य माताजी ने उमड़ते मेघों और बढ़ते तूफानी बवण्डर को अपने तपोबल से तिरोहित करके विमार्गियों और अनास्थावादियों के मन में भी आस्था के कोमल अंकुर अंकुरित करके जैन धर्म की जो प्रभावना की है वह जैन इतिहास में अमिट लेख के रूप में सदैव स्मरण की जाएगी। देवशास्त्र और गुरु के प्रति श्रद्धा और उस मार्ग का अनुसरण करने में लाखों भव्यों का जो स्थितिकरण आपने किया है वह अन्य के लिए भी अनुकरणीय मार्ग है। जैनशासन की सेवा में अहर्निश संलग्न तपस्विनी माताजी की तपस्या का अभिनन्दन समाज जितनी बार भी करे, उतना ही कम है। आज अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में समाज जो एक छोटा सा प्रयास कर रही है, वह सराहनीय प्रयास का पहला कदम मात्र है। अन्यथा हम

क्षुद्रशक्तिधारी साधारण गृहस्थों की इतनी औकात ही कहाँ कि वह तपस्वियों के तपोबल की क्षमता मापने का साहस कर सके। परन्तु अपनी श्रद्धा, अपनी भावना प्रदर्शित करने का हमारे समक्ष अन्य विकल्प भी तो नहीं है।

मुझे प्रसन्नता है कि आज समाज ने वीतरागी की शक्ति के प्रति नमनभाव के रूप में अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने की योजना को साकार रूप देने का निश्चय किया है। मेरी शुभकामना है कि यह प्रयास शीघ्र साकार हो तथा पूज्यश्री माताजी के चरण कमलों में भी सविनय प्रार्थना है कि इसी प्रकार हम सभी को संसार समुद्र से तिरने का मार्ग प्रशस्त करती रहें; जिससे स्वपर कल्याण की मङ्गलमयी भावना फलीभूत होकर जिनशासन की प्रभावना से विश्व में सुखमय वातावरण की सृष्टि हो सके।

—**बाबूलाल जैन, जमादार**

महामन्त्री, श्री भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्

हार्दिक शुभकामना :—

प्रात: स्मरणीय परम पूज्य आर्यिका १०५ इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह व ममता से रहित, आडम्बरहीन, सरल, धैर्यशील, इन्द्रिय सुखों की लिप्सा से दूर, राग-द्वेष-मोह-माया-अहंकार एवं कषायों के आवेश से विरत, ज्ञान ध्यान में लीन, परोपकार की साक्षात् मूर्ति पूज्य इन्दुमती माताजी के चरणों में मेरा सविनय शत शत वन्दन।

पूज्य माताजी शतायु होकर भव्य जीवों के अभ्युत्थान एवं जिनवाणी की रक्षा के साथ साथ आत्मकल्याण कर परमस्थान प्राप्ति की साधना में सफल हों—यही मेरी जिनेन्द्र प्रभु से प्रार्थना है।

—जयचन्द डी० लोहाड़े

महामन्त्री, भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई
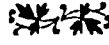
धम्मं सरणं पव्वज्जामि

पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी का सम्पूर्ण जीवन आदर्श नारी जीवन का निदर्शन है। आप प्रारम्भ से ही स्वावलम्बी, साहसी, धैर्यशीला और दृढ़ निश्चयी रही हैं। १३ वर्ष की अवस्था में ही वैधव्य का पर्वत सम संकट भी आपके मन में निराशा को जन्म न दे सका। लोक में चार ही शरण हैं—'अरिहन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।' ऐसा दृढ़ श्रद्धान करते हुए आपने देव गुरु धर्म की शरण ली। और इस प्रकार आपने अपनी पर्याय को सार्थक किया है।

अपने आद्यगुरु आचार्य कल्प (स्व०) श्री चन्द्रसागरजी महाराज के प्रति आपके मन में आज भी अटूट भक्ति है। आपकी यह गुरु भक्ति सबके लिए ईर्ष्या की वस्तु है। जब १०८ मुनिराज श्री चन्द्रसागरजी महाराज मारवाड़ में पधारे थे तभी से श्रीमती मोहनीबाई ने अपने जीवन का कर्त्तव्य निश्चित कर मन ही मन उनका शिष्यत्व स्वीकार करने का संकल्प कर लिया था। आप उनके दर्शन-पूजन, आहारदान, उपदेश श्रवण आदि क्रियाओं में सतत संलग्न रहतीं, फिर दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए और संघ के साथ में रह कर कसावखेड़ा में आपने पूज्य गुरुदेव से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। जब आचार्यकल्प गुरुदेव अपने पूज्य गुरुदेव शान्तिसागरजी महाराज के सान्निध्य में कुन्थलगिरि पर विराज रहे थे तब मुझे और नागौर निवासी (स्व०) श्री चांदमलजी बड़जात्या को सपरिवार एक, डेढ माह तक आपके निकट रहने का अवसर मिला था। तब हमें पूज्य माताजी इन्दुमतीजी के उपदेशों से ही ज्ञात हुआ था कि साधु-सेवा और गुरुभक्ति किस विधि से की जाती है।

पूज्य वीरसागरजी महाराज से आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। अपने दीक्षागुरुओं की भांति आप भी विगत कई वर्षों से जैनधर्मकी अभूतपूर्व प्रभावना कर रही हैं। जिस तरह चन्द्र-सागरजी महाराज ने मारवाड़ का उद्धार किया था उसी तरह आपने संघ सहित बंगाल, बिहार, आसाम, नागालैंड प्रदेशों में विहार कर अनेक भव्य जीवों को सन्मार्ग पर लगाया है। आप साहसी गुरु की साहसी शिष्या हैं। आसाम प्रान्त में आपके ही प्रसाद से पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें, वेदी प्रतिष्टायें हुई और स्थान-स्थान पर गृह चैत्यालयों का निर्माण हुआ। संघ में आप सहित चारों ही माताजी

शान्त स्वभावी, मृदुभाषी और सतत स्वाध्यायी हैं। सबकी सब अपनी चर्या पालन में कठोर हैं। आर्यिका सुपार्श्वमतीजी तो साक्षात् सरस्वती तुल्य हैं। आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी भी निरन्तर पठन-पाठन में ही संलग्न रहती हैं। मैं अल्पज्ञ हूँ, संघ के और संघनायिका के गुणों का शतांश भी वर्णन नहीं कर सकता हूँ।

अन्तमें, पूज्य माताजी इन्दुमतीजी व संघस्थ माताजी के पवित्र चरणों में त्रियोग शुद्धिपूर्वक त्रिवार नमोस्तु निवेदन करता हूँ और यही भावना भाता हूँ कि संघ दीर्घकाल तक हम संसारी प्राणियों को धर्म मार्ग का दिग्दर्शन कराता रहे।

विनीत : **झूमरमल बगड़ा, सुजानगढ़**

प्रभावशाली व्यक्तित्व

गत वर्ष माताजी के संघ का चातुर्मास शिखरजी में हुआ था। उस समय मुझे भी वहाँ जाने का सुअवसर मिला था। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी और आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी व अन्य माताओं के दर्शनों का लाभ भी मिला। तदुपरान्त बीस पन्थी कोठी में इन्द्रध्वज-विधान समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ था। यह भी निर्णय हुआ कि चौबीसी मन्दिर की बगल की पहाड़ी पर एक विशाल भवन का निर्माण कराया जाए। इसकी स्वीकृति भी मैंने बीस पन्थी कोठी कमेटी की अध्यक्षता करते हुए दिलवाई थी।

इतनी सारी बातें मात्र एक चातुर्मास के दौरान निर्णीत हो जावें, यह कोई साधारण बात नहीं है। इसके लिए बहुत बड़े पुण्य का प्रताप होना चाहिए। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी की तपस्या, उनके त्याग से प्रभावित होकर ही श्रावकों को दान करने की प्रेरणा होती है।

मैं पूज्या आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी के प्रति अपने श्रद्धासुमन सादर समर्पित करता हूँ तथा आपके अभिनन्दन समारोह की सफलता चाहता हूँ।

—सुबोधकुमार जैन

मानद मंत्री श्री जैन बाला विश्राम, आरा (बिहार)

चारित्रगुरु माताजी

भोग और योग के आकर्षण में जिन्होंने 'योग' का चयन किया, उन पूज्य इन्दुमती माताजी का जीवन आज 'कुन्दन' की भाँति दमक रहा है। उनकी विचारधारा पूर्णतः आगमानुकूल है। मैंने माताजी को विविध रूपों और परिस्थितियों में देखा है। उन्हें देव-शास्त्र-गुरु पर अगाध श्रद्धा है। वे गुरुओं के आदेश का अक्षरशः पालन करती हैं। जिनवाणी उनका प्राण है।

उनका छोटा सा संघ निरन्तर ज्ञान-ध्यान रत रहता है। श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी में गजब की विद्वत्ता है, उनकी वक्तृत्व शैली बड़ी प्रभावशालिनी है। संघस्थ सभी आर्यिकाएँ मूर्तिमन्त चारित्र हैं।

पू० इन्दुमती माताजी, आर्यिका सुपार्श्वमतीजी की चारित्र गुरु हैं। सप्तम प्रतिमा के व्रत इन्होंने पूज्य माताजी से ही ग्रहण किये थे।

पू० इन्दुमती माताजी से व्रत ग्रहण करने का सौभाग्य अनेक लोगों को मिला है, मैं भी उनमें से एक हूँ। मैंने भी यथाशक्ति कुछ नियम अंगीकार किये हैं और गुरुवर्या के अनुग्रह से उनके निर्दोष पालन में पूर्णतया सावधान हूँ।

मैं पूज्य माताजी के चरणों में नमोस्तु निवेदन करता हुआ उनके दीर्घ स्वस्थ जीवन की शुभ कामना करता हूँ। चारित्रगुरु के चरणों में पुनः नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु।

—मदनलाल गंगवाल, डेह

वन्दन !

पूज्य पितामह ब्र० दीपचन्दजी बड़जात्या एवं पिताश्री चाँदमलजी बड़जात्या के संस्कारनिष्ठ जीवन का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव को गहराई प्राप्त हुई है गुरुजनों के सम्पर्क से। स्व० पिताजी के विशेष सम्पर्क के कारण मुझे भी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के संघ में दर्शन-वन्दनार्थ जाने का सौभाग्य मिलता रहा है। आर्यिका द्वय की प्रेरणा से मेरी श्रद्धा को बल मिला है। इन्हीं की प्रेरणा से मैंने दशलक्षण व्रत व अष्टाह्निका व्रत किए हैं। सिद्धचक्रविधान व शान्तिविधान की विशेष पूजायें की हैं। गतवर्ष तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी पर आयोजित वृहत् इन्द्रध्वज विधान में सहयोग करने का भी मेरा सौभाग्य रहा है।

चार आर्यिकाओं के इस छोटे से संघ ने अपने ज्ञान और चारित्र से जैनाजैन जनता का जो उपकार किया है वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

मैं १००८ श्री पार्श्वनाथ भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि पूज्य माताजी इन्दुमतीजी का दिव्यदर्शन, सदुपदेश और आशीर्वाद हमें दीर्घकाल तक प्राप्त होता रहे। माताजी के पुनीत चरणों में शत-शत वन्दन !

—चा० पारसमल बड़जात्या, कलकत्ता

नमन !

यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि पूज्य आर्यिका माताजी १०५ श्री इन्दुमतीजी का अभिनन्दन ग्रन्थ छप रहा है।

पूज्य इन्दुमती माताजी के संघ का सुजानगढ़ में संवत् २०१७ में चातुर्मास हुआ था। माताजी संघ का संचालन बड़ी कुशलता एवं दूरदर्शिता से करती हैं। संघ में पूज्य माताजी श्री सुपार्श्वमतीजी विशेष विदुषी हैं और वह सब पूज्य इन्दुमती माताजी के ही कारण।

पूज्य माताजी के चरणों में मेरा शत शत वन्दन !

—प्रकाशचन्द पाण्ड्या, कोटा
(सुजानगढ़ निवासी)

—卐 卐 卐— मंगल कामना —卐 卐 卐—

मरुभूमि में जन्मी, प्रशम मूर्ति, तपस्विनी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी ने संघ सहित समस्त भारत में निर्भीकतापूर्वक विचरण कर धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की है। अपने गुरु आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज की भाँति ही सदा दृढ़ रहकर आपने श्रमण संस्कृति को प्रचारित प्रसारित किया है। जैनाजैन जनता को कल्याणकारी धर्म का उपदेश देकर अहिंसा के पथ पर प्रवृत्त किया है। अनेक भव्य जीवों ने आपकी प्रेरणा से मद्य, मांस रात्रि भोजन व अशुद्ध खान-पान का त्याग किया है।

आसाम प्रान्त के विभिन्न स्थानों में जहाँ श्रावकों के घर तो थे परन्तु चैत्यालय या मन्दिर नहीं थे वहां आपकी प्रेरणा से चैत्यालयों का निर्माण हुआ है। विजयनगर में आपके सान्निध्य में विशेष उत्साहपूर्वक पंचकल्याणक जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ था। अनेक स्थानों पर संघ के सान्निध्य में मण्डल-विधान आदि महदनुष्ठान सम्पन्न हुए हैं।

ऐसी अद्वितीय धर्मप्रभावक पूज्य १०५ श्री इन्दुमती माताजी एवं अन्य माताओं के चरणों में सविनय नमोस्तु निवेदन करता हूँ। मैं माताजी की आरोग्यपूर्ण दीर्घायु की कामना करता हूँ।

—अमरचन्द पहाड़्या, कलकत्ता

*** माता ! तुम सजीव श्रद्धा हो !**

परम पूजनीया प्रातः स्मरणीया श्री १०५ इन्दुमतीजी ने समग्र समाज को—विशेषतया महिला समाज को—सही दिशा में जो गति-मति दी है, उससे उनकी संज्ञा और कक्षा सार्थक हुई है। उनके चन्द्र से उज्ज्वल चरित्र और शीतल स्वभाव तथा वरदा बुद्धि एवं सुखदा सुमति को लखते और देखते हुए मेरे कविकण्ठ से वरवस निकल रहा है—

माता, तुम सजीव श्रद्धा हो !
चिरायु हो; प्रण-सन्नद्धा हो !!

—लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'; जावरा (म० प्र०)

त्यागमूर्ति

जिस समय ब्र० मोहनीबाई की क्षुल्लिका दीक्षा कसावखेड़ा में होने के तार-पत्र डेह में आपके ससुराल पक्ष एवं पीहर पक्ष के पास आये तब दीक्षा-समारोह में सम्मिलित होने की प्रबल इच्छा हुई।

कसावखेड़ा में महान् तपस्वी आचार्यकल्प १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के दर्शन प्राप्त कर महान् हर्ष हुआ। माताजी की दीक्षा के लिये आज्ञा देने पर गुरुवर के वैराग्यपूर्ण उपदेश को सुनकर हम लोगों ने अशुद्ध जल का त्याग किया।

माताजी इन्दुमतीजी साक्षात् त्याग की मूर्ति हैं। आपके संघ में आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी और सुप्रभामतीजी हैं। आपने अनेक उपसर्ग सहते हुए भी जैनधर्म का प्रकाश मारवाड़ से आसाम तक फैलाया है।

आपके गुणों का वर्णन करने की शक्ति सुरेन्द्र में भी नहीं, मैं अज्ञानी आपके गुणों का क्या वर्णन कर सकता हूँ। आप आप ही हैं; जैसा नाम है वैसी ही आप हैं।

कब मेरा सौभाग्य होगा कि आपके दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करूँ?

आप दीर्घायु हों; यही प्रार्थना है।

—हुकमीचन्द सेठी, डेह

विनयाञ्जलि

महान् प्रवक्ता, त्यागमूर्ति, घोर तपस्विनी, परम विदुषी आर्यिका माताजी श्री १०५ इन्दुमतीजी के पावन चरणों में विनयाञ्जलि अर्पित करते हुए कामना करता हूँ कि आप दीर्घायु हों।

विनयावनत : वैद्य राजकुमार शास्त्री, निवाई

गुरुभक्त आर्यिका

परम पू० १०५ आर्यिका श्री इन्दुमतीजी आर्ष प्रणीत आगम में परिपूर्ण आस्था रखने वाली, निर्भीक, साहसी और कर्त्तव्यनिष्ठ आर्यिकाश्री हैं। आप डेह (नागौर) की सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जात्युत्पन्न वीर महिलारत्न हैं। डेह में जब आर्ष आगम के निर्देशक, विशिष्टवक्ता, संस्कृतज्ञ, वहुश्रुतविद्वान्, सिंहवृत्तिधारक, निस्पृही, जितेन्द्रिय (घृत, मीठा, लवण के आजन्मत्यागी), स्पष्टवक्ता, क्रान्तिकारी ऋषि १०८ (स्व.) श्री चन्द्रसागरजी महाराज का पदार्पण हुआ था तब आपके सदुपदेश से समाज में एक धार्मिक क्रांति आई थी।। अनेक भव्य जीव व्रत, नियम, संयम की ओर आकृष्ट हुए थे, उन्हीं में से महिलारत्न मोहनीवाई (आर्यिका इन्दुमतीजी) भी एक थी। इन्होंने गुरुदेव से क्षुल्लिका के व्रत लिये। फिर गुरुराज के संघ के साथ विहार करती रहीं। व्रतपरिपालन में आप सहिष्णु और दृढ़ सिद्ध हुई। गुरुभक्ति से आपकी आत्मा में वैराग्य भावना वलवती हुई, फलस्वरूप आपने पू० १०८ वीर सागरजी महाराज से आर्यिका के व्रत लिये।

जव आपका विहार संघ के साथ-साथ मारवाड़ में सुजानगढ़, लाडनूं आदि नगरों ग्रामों में हुआ तव ब्र० भँवरीवाई (वर्तमान आर्यिका सुपार्श्वमतीजी) को आपका परिपूर्ण धार्मिक स्नेह मिला, इससे इनका भाव भी आपकी सेवा में रत रहने का हो गया। पूज्य माताजी इनके लिए सिद्धान्त, व्याकरण, साहित्य आदि के पठन-पाठन हेतु विद्वद् संयोग के लिए प्रयत्नशील रहतीं। (मैं उस समय सुजानगढ़ के जैन विद्यालय में धर्म अध्यापक था) तथा आपकी पूरी सार-संभाल रखतीं। परिणाम सामने है, आज आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी जैन दर्शन, साहित्य, न्याय, व्याकरण, इतिहास की प्रकाण्ड विदुषी हैं, अपनी प्रवचनशैली से विद्वद्वर्ग को भी मुग्ध कर देती हैं। पू० इन्दुमती माताजी के प्रति आपकी अटूट भक्ति है।

आप दोनों के अतिरिक्त संघ में आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामती माताजी भी हैं। सव ज्ञान, ध्यान और लोकोपकार में लीन रहती हैं।

संघस्थ सभी आर्यिकाओं के गुणों का अभिनन्दन करते हुए मैं १००८ पद्मप्रभु भगवान से सवके शतायुष्य होने की कामना करता हूं।

शुभमिति !

—पं० मिश्रीलाल शाह जैन शास्त्री

❖ वन्दन ❖

पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन की योजना ज्ञात कर अतीव प्रसन्नता हुई। पूज्य माताजी जब संघ सहित हमारे प्रान्त में पधारे थे तथा गौहाटी में वर्षायोग सम्पन्न किया था, वह एक अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटना है। क्योंकि इस सुदूर प्रदेश में तब तक दिगम्बर साधुओं ने कभी प्रवेश नहीं किया था।

मैं पूज्य आर्यिकासंघ के श्रीचरणों में वन्दामि निवेदन करता हूँ।

अभिनन्दनग्रन्थ पूर्ण सफलता के साथ शीघ्र प्रकाशित हो; यही कामना है।

विनीत : **हुकमचन्द सरावगी**
फर्म : छगनलाल सरावगी एण्ड संस, गौहाटी

मंगल कामना

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन का जो कार्यक्रम बना है वह वास्तव में बहुत प्रशंसनीय है। अभिनन्दन ग्रन्थ से धर्मप्रभावना में व्यापक वृद्धि होगी।

पूज्य माताजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन समाजहित में लगाया है उनकी अमृतमयी वाणी और उपदेश जैन-जगत् के लिये ही नहीं अपितु समस्त मानव-जगत् के लिए कल्याणकारी हैं।

मैं पूज्य माताजी के चरणकमलों में सविनय वन्दामि निवेदन करता हुआ अभिनन्दन ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशन हेतु अपनी शुभ कामनाएँ सम्प्रेषित करता हूँ।

विनीत : कमलकुमार जैन, कलकत्ता

शुभकामना

—डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया
डी. लिट्.
मानद संचालक, जैन शोध अकादमी
अलीगढ़

पूजनीया आर्यिका १०५ इन्दुमतीजी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकट करना वस्तुत: जिनवाणी को अनेक अंशों में प्रकाशित करना है।

पञ्च परमेष्ठियों में आचार्य और उपाध्याय के उपरान्त साधु का क्रम आता है। साधु में मुनि १०८ गुणों का धारी होता है। ऐलक और क्षुल्लक १०५ गुणों के धारी होते हैं। १०५ गुणों से समलंकृत साध्वी को आर्यिका कहा जाता है। इस पर्याय में आर्यिका ही श्रेष्ठ स्तर माना गया है। पूजनीया आर्यिका इन्दुमतीजी सुधी आर्यिकाओं में असाधारण स्थान रखती हैं।

पूजनीया माताजी की जीवनचर्या, वाणी वैदुष्य तथा आहार-विहार जिन-साधु चर्या की प्रयोगशाला है। ऐसी गुणवती आत्माओं के मंगल दर्शन कर भव्य आत्माएँ कल्याणोन्मुख होती हैं।

पूजनीया माताजी की वन्दना करते हुए संघस्थ साध्वी समुदाय की सुखसाता की मंगल-कामना करता हूँ। अभिनन्दनग्रन्थ के सम्पादन और प्रकाशन में आप अतिशय साफल्य प्राप्त करें; ऐसी मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ और भावनाएँ कृपया स्वीकार कीजिए।

☼

* मंगल कामना *

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आप आर्यिकारत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी का एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। यह बहुत ही सराहनीय कार्य है। इस ग्रन्थ के माध्यम से समाज को कई प्रकार की अनुभूतियाँ मिलेंगी।

पूज्य माताजी राजस्थान की एक महिला रत्न हैं जिन्होंने नागौर जिलान्तर्गत डेह में जन्म लेकर अपने जीवन को सार्थक बनाया है और जो मुक्ति-मार्ग पर आरूढ़ हैं।

आज लगभग ७४ वर्ष की आयु में भी आपका ध्यानाध्ययन अबाधगति से नियम पूर्वक चल रहा है और एक संघ का कुशल संचालन भी आपके सान्निध्य में हो रहा है। आपकी परमशान्त मुद्रा वन्दक को अनायास आकर्षित करती है।

श्री वीर प्रभु से हम यही मंगलकामना करते हैं कि आप दीर्घ काल तक पूर्ण आरोग्यतापूर्वक रत्नत्रय का धर्माराधन करती हुई, हमें सन्मार्ग-देशना देती रहें और जिस मार्ग को आपने अपनाया है, उसकी अन्तिम मंजिल को प्राप्त करें।

—पं० लाड़लीप्रसाद जैन, पापड़ीवाल
सवाई माधोपुर

भिवन्दन

❖ श्री धर्मचन्द मोदी
महामन्त्री
भा. दि. जैन महासभा राजस्थान शाखा

विश्ववन्द्य भगवान आदिनाथ के सुपुत्र भरत के नाम से सम्बोधित किया जाने वाला हमारा देश भारतवर्ष आध्यात्मिकता का केन्द्र रहा है। यहाँ अध्यात्मप्रेमियों ने अपनी साधना और तपस्या के बल पर स्वयं का तो कल्याण किया ही है, संसार के प्राणियों को भी इस ओर प्रेरित किया है। आधुनिक युग भौतिक विकास का युग है। भौतिकता की चकाचौंध से लोकरुचि भोगाकांक्षा और विषयवासनाओं की पूर्ति में ही बनी हुई है अतः आध्यात्मिकता उपेक्षित है। अधुना, जहाँ ज्ञानविज्ञान प्रतिदिन आश्चर्यचकित करनेवाली प्रगति की ओर अग्रसर है वहां व्यक्ति का चरित्र पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। प्राचीन संस्कृति के प्रति उपेक्षा और आधुनिक भौतिकता की तीव्र आकांक्षा ने मानव जीवन को विकृत बना दिया है, फलस्वरूप उसका हेयोपादेय का ज्ञान जाता रहा है। ऐसी स्थिति में जीवनाकाश में सुख शाँति के स्थान पर दुःख और अशान्ति की घटाओं का घहराना स्वाभाविक है। परन्तु मनुष्य सुख शान्ति की खोज के लिए व्यग्र है। उसे मार्ग नहीं सूझ रहा है। इस प्रकार के त्रस्त एवं संतप्त जीवन के लिए आर्ष परम्पराओं एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक मुनि जन व आर्यिकाओं का सान्निध्य तथा जिनवाणी ही समीचीन एवं प्रशस्त मार्ग का दिग्दर्शन कराने में साधक-तम साधन हो सकते हैं। इस दृष्टि से परम विदुषी पूज्य आर्यिकाश्री १०५ इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन की योजना न केवल श्लाघनीय ही है अपितु समय की पुकार भी है।

संसार में व्यक्ति आता है और चला जाता है। ऐसी महान् विभूतियों का भी प्रादुर्भाव होता है जिनका जीवन स्व-पर कल्याण हेतु समर्पित

होता है। ऐसी महान् आत्माओं में परम पूज्य आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी भी एक हैं की आत्मा का प्रकाश आध्यात्मिक चेतना एवं स्फूर्ति प्रदान करते हुए जगमगा रहा है। आपने के सभी प्रान्तों में विशेषत: पूर्वोत्तर भारत में भ्रमण कर आत्मधर्म की दुन्दुभि बजाते हुए अपनी मधुर, मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी वाणी से तथा चारित्र के प्रभाव से सहस्रों प्राणियों को सद् की ओर उन्मुख किया है। आपके इस महदुपकार के लिए यह राष्ट्र सदैव कृतज्ञ रहेगा। आपके व्यक्तित्व ने अपनी महान् साधना, उज्ज्वल चारित्र एवं समीचीन ज्ञान के आधार पर नारी महत्व को उजागर करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि भारत वसुन्धरा पर नारियों ने भी अपने शाली पवित्रतम चारित्र से भारतीय संस्कृति के इतिहास में स्वर्ण पृष्ठ जोड़े हैं।

मैं परम पूज्य माताजी के चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित करता हुआ आपकी आयु की कामना करता हूँ। शत शत वन्दन !

मंगल कामना

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी के सम्मान प्रकाश्य अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता के लिए अपनी हार्दिक मंगलकामना संप्रेषित करता हूँ।

पूज्य माताजी ने अपने ज्ञान और आचरण द्वारा समस्त नारी जगत का मस्तक ऊँचा किया है और अनेक प्राणियों को संयम मार्ग में अग्रसर किये हैं।

अपने ज्ञान और विवेक द्वारा आपने अनेक प्रांतों की धर्म पिपासु जनता को धर्मामृत का पान करा कर उसे सच्चे देवशास्त्र गुरु की दृढ़श्रद्धा पर आरूढ़ किया है।

माताजी ने अपने छोटे से संघ के माध्यम से जैन धर्म का जिस रूप में प्रचार प्रसार किया है वह अविस्मरणीय है। आपके दर्शन-वन्दन और आशीर्वाद प्राप्ति बड़े पुण्य का फल है।

पूज्य माताजी के चरणों में सविनय नमोस्तु। मैं आपके उत्तम स्वास्थ्य व दीर्घजीवन की कामना करता हूँ।

—शिखरीलाल पाण्ड्या, डेह

मंगल कामना

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी ने सुदूर पूर्वाञ्चल में संघ सहित विहार कर जैनाजैन समाज पर जो उपकार किया है वह कभी भूला नहीं जा सकता।

आपने आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी और सुप्रभामतीजी के साथ इस अंचल में विहार कर हजारों लोगों को मद्य मांस का त्याग कराया है; अनेक लोगों ने आपकी प्रेरणा से अशुद्ध आहारादि का त्याग किया है।

डीमापुर वर्षायोग में संघ के द्वारा हमारा व समाज का अमित उपकार हुआ है। संघ के सान्निध्य में धर्मप्रभावना के अनेकानेक कार्य हुए, लोगों को जैनधर्म के सम्वन्ध में विशेष जानकारी मिली, साध्वी संघ की चर्या से 'त्यागमयी जैनधर्म' की अमिट छाप इस क्षेत्र के लोगों पर पड़ी है।

पूज्य माताजी की दीर्घायु की कामना करता हुआ, अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता चाहता हूँ।

—राजकुमार सवलावत, डीमापुर

*

मैं इसे अपना असीम पुण्योदय ही मानता हूँ कि गौहाटी वर्षायोग पूरा करके जैन प्राचीन ऐतिहासिक स्थल 'सूर्य पहाड़' का अवलोकन कर पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी संघ सहित हमारे तेल डिपो--ग्वालपाड़ा में पधारीं। साध्वियों की चरण रज से मेरा तो घर परम पवित्र हो गया।

पण्डाल में सार्वजनिक उपदेश एवं केशलोच की क्रिया को देख कर जैन साध्वियों की विद्वत्ता, तप, त्याग, कष्टसहिष्णुता एवं संयमाराधना का जैनाजैन जनता पर काफी प्रभाव पड़ा। लोग कहने लगे कि "ये वास्तव में तप त्याग की साक्षात् मूर्तियां हैं।" अनेक स्त्री-पुरुषों ने मद्य मांस त्याग के नियम लिये।

आसाम में संघ के विहार से अभूतपूर्व जागृति आई है, अनेक नर-नारी आत्महित में प्रवृत्त हुए हैं।

मैं परम पूज्य माताजी का श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करता हूँ और आपके दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

—हुलासचन्द पाण्ड्या, ग्वालपाड़ा (आसाम)

❖ अभिनन्दन

यह जान कर प्रसन्नता हुई कि 'आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अभिनन्दन ग्रन्थ' का प्रकाशन हो रहा है। माताजी ने समाज जागरण एवं नारियों में धार्मिक भावना भरने का वृहद् कार्य किया है। यह उपयुक्त ही है कि समाज उनके चरणों में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करे।

हमारे विनम्र अभिनन्दन सहित—

—अक्षयकुमार जैन, नई दिल्ली

❖ शुभकामना

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का अभिनन्दन ग्रन्थ शीघ्र ही तैयार होने जा रहा है।

मेरी यही कामना है कि यह ग्रन्थ पूर्ण सफलता के साथ शीघ्र ही पूर्ण हो।

—सेठ सुनहरीलाल जैन, बेलनगंज, आगरा

❖ महान् माताजी

पूज्य माताजी १०५ श्री इन्दुमतीजी के अभिनन्दन के बारे में लिखा सो जानकर बहुत खुशी हुई। मेरे संस्मरण मँगाए सो मैं तो सिर्फ इतना ही लिखना चाहता हूँ कि माताजी महान् हैं; उनके बारे में जितना लिखा जावे, उतना थोड़ा है।

मैं उनके चरणों में अपने नमस्कार भेज रहा हूँ।

—सुमेरचन्द जैन, डालीगंज लखनऊ

कोटि कोटि वन्दन !

पूज्य आर्यिका इन्दुमती माताजी द्वारा ऐसे स्थानों पर भ्रमण करके जैनधर्म का प्रचार-प्रसार हुआ है जहाँ पर अब तक जैन साधुओं का भ्रमण इस शताब्दी में सुनने में भी न आया था।

आगम के प्रति अटूट श्रद्धान, ज्ञान और दृढ़ निश्चय का संगम माताजी में अलौकिक प्रतिभा का द्योतक है।

मैं अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन युवा परिषद् परिकर एवं अपनी ओर से पूज्य आर्यिकारत्न श्री १०५ इन्दुमती माताजी का कोटि-कोटि वन्दन कर अभिनन्दन करता हूँ और श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता हूँ कि माताजी दीर्घायु हों।

—**कैलाशचन्द्र जैन, सर्राफ**
अध्यक्ष अ० भा० दिगम्बर जैन युवा परिषद्, टिकैतनगर

❋

हार्दिक विनयाञ्जलि

भारतीय जैनधर्माकाश में आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का संघ इन्दु के समान समुज्ज्वल वृष चन्द्रिका का वर्षण कर भ्रान्त भव्य जीवों को कर्त्तव्यपथ का वोध करा रहा है। संघ नायिका इन्दुमती माताजी आगम रहस्य की महान् ज्ञाता, रत्नत्रय की अनुपम साधिका और परम तपस्विनी हैं। साधारणतः रुक्षस्वभावी भासित होती हैं—वस्तुतः 'नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते हि सुसज्जनाः' उक्ति के अनुसार आपका अन्तर कितना स्नेहसिक्त है; यह उनके सान्निध्य में रह कर ही अनुभव किया जा सकता है। आप देव-शास्त्र-गुरु और धर्म का किंचित् भी अवर्णवाद सहन नहीं कर सकती। आपके संघ के आसाम प्रदेश के विहार को आसामवासी आज भी पूर्ण श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं। विशेषतः आसाम के जैनेतर विवेकी व्यक्ति तो आपसे वहुत ही प्रभावित हुए हैं।

आपके अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादन-प्रकाशन हेतु गठित व्यवस्था समिति निश्चय ही अतिशय धन्यवाद की पात्र है।

परम पूज्य आर्यिकाश्री के चरणकमलों में पूर्ण श्रद्धा के साथ वन्दना करता हुआ मैं अपनी हार्दिक विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

मांगीलाल सेठी 'सरोज', सुजानगढ़
मन्त्री, प्रचार विभाग
श्री भा० दि० जैन सि० सं० सभा

मंगल कामना :

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन स्वरूप ग्रन्थ-प्रकाशन की योजना ज्ञात कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। मैं ग्रन्थ के त्वरित प्रकाशन की मंगल कामना करता हूँ।

आर्यिकाश्री ने संघसहित ऐसे प्रान्तों में विहार किया है जहाँ दिगम्बर साधु नहीं पहुँचते। वहां जैन और जैनेतर समाज में आपके संयमित और अनुशासित जीवन की गहरी छाप पड़ी है। जैनाजैन जनता ने संघ का सर्वत्र भावभीना स्वागत किया है।

गौहाटी और डीमापुर के चातुर्मास एवं विजयनगर की 'बिम्ब प्रतिष्ठा' देखकर तथा आपके प्रवचन पीयूष का पान कर जनता इतनी अभिभूत हुई थी कि उसके मुख से यही उद्गार प्रकट होते थे—"जैनधर्म के सिद्धान्तों का पालन करने से ही घर में, समाज में, देश में, और सम्पूर्ण विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है।।"

माताजी के त्याग-तपस्या एवं मधुर उद्बोधन में ऐसी आकर्षणशक्ति है कि बार-बार सान्निध्यलाभ लेने एवं आशीर्वाद पाने की अभिलाषा बनी ही रहती है।

मैं माताजी के दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ ताकि हम लोगों को सन्मार्ग का दिग्दर्शन होता रहे।

—माँगीलाल बड़जात्या, नागौर

जीवन्त संस्कृति :

आर्यिका इन्दुमतीजी के अभिनन्दन का आयोजन निश्चय ही बहुत सुन्दर बात है। पूज्य माताजी के सान्निध्य लाभ का सुअवसर तो मुझे नहीं मिला परन्तु उनके बारे में स्वर्गीय पण्डित श्री राजकुमारजी, पण्डितश्री बाबूलालजी जैन जमादार आदि अन्य विभूतियों व जैन समाचार पत्रों द्वारा जो ज्ञात हुआ उसके आधार पर कह सकता हूँ कि उनमें अद्वितीय स्फूर्ति, गति और संकल्प है। शुद्ध खान-पान, निर्मल मन और निष्काम आचरण। उनमें वह सब है जो भारतीय संस्कृति को सम्पूर्ण जीवन्तता के साथ परिभाषित करता है।

सन्यासी नदी की भाँति जीता है। वह ऐसी सरिता के समान है जो निरन्तर बहती जाती है, जहाँ जाती है वहां की प्यास बुझाती है, रस बरसाती है और अन्त में अपने आराध्य सागर में लीन हो जाती है।

धर्म जब ज्ञानी के हाथ पड़ता है तो वह मोक्ष बन जाता है। पण्डित से केवल जानकारी मिलती है, ज्ञानी से सच्चा ज्ञान मिलता है। साधु का लक्षण है सन्तोष।

साधु वही है जो जागा हुआ है।

जो त्यागते गए, वे पूज्य होते गए, तिरते गए।

—प्रेमचन्द्र जैन, अध्यक्ष, अहिंसा मन्दिर, नई दिल्ली

मंगल कामना

आर्यिकारत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में विशेषतः पूर्वाञ्चल में संघ सहित विहार करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की ज्योति प्रकाशित की है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों के सदुपदेश द्वारा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील सेवन, मद्य-मांस भक्षण आदि का त्याग कराके जीवों को सन्मार्ग पर लगाया है, इस तरह आपने जैन धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की है।

अपनी वृद्धावस्था के बावजूद माताजी अपनी क्रियाओं में चारित्र पालन में पूर्णतः सावधान और दृढ़ हैं; इसे तपश्चर्या का या संयम का प्रभाव ही कहा जा सकता है।

मैं ऐसी महान् विभूति के उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु की कामना करता हूँ।

माताजी के चरणों में बारम्बार नमन!

—उम्मेदमल पाण्ड्या, शान्ति रोडवेज, दिल्ली

मरुधरप्रदेश में जन्मी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी ने दोनों कुलों को उज्ज्वल करके अपनी स्त्रीपर्याय को सार्थक किया है। अपनी शिष्याओं—श्रुतपारगामी आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी और सुप्रभामतीजी—सहित सारे भारत में विहार करके मानव जाति का महान् उपकार किया है।

आपकी प्रेरणा से अनेक लोग अपनी शक्त्यनुसार व्रत-नियम ग्रहण करके चारित्रशुद्धि की ओर अग्रसर हुए हैं। आप डेह में जन्मी थीं। सम्वत् २००६ में नागौर में दीक्षा लेकर आपने इस क्षेत्र का नाम उज्ज्वल किया है। आपने यहाँ तीन चातुर्मास किए हैं, नागौरवासी आपके उपकार को कभी विस्मृत नहीं कर सकते। आज यहाँ देव-शास्त्र-गुरु के प्रति जो असीम श्रद्धा भक्ति दिखाई दे रही है वह सब आपकी ही देन है।

पूर्वाञ्चल में पदविहार कर आपने जो धर्म चेतना जाग्रत की है वह ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य है।

मैं त्यागमूर्ति, परम निस्पृह आर्यिका इन्दुमती माताजी के चरण कमलों में शत-शत वन्दन निवेदन करता हूँ और यही मंगल कामना करता हूँ कि वे दीर्घजीवी हों और इसी तरह धर्म-प्रभावना करती रहें।

—सोहनसिंह कानूनगा, नागौर

卐 माताजी शतायु हों 卐

पूज्य १०५ इन्दुमती माताजी का संघ एक छोटा संघ होते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली संघ सिद्ध हुआ है। संघ के सान्निध्य में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति संघ की आगमानुकूल चर्या, विद्वत्ता और प्रभावना क्षमता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता।

सीकर में आपका चातुर्मास विशेष धर्मप्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ था। आज से बीस वर्ष पूर्व हमारे ग्राम लालास में हुई वेदी प्रतिष्ठा में आपकी उपस्थिति ने समारोह में चार चांद लगा दिये थे। संघ के आगमन से व प्रवचनों से जैनाजैन जनता को काफी धर्मलाभ मिला था।

यों तो संघ के दर्शनों का सौभाग्य कई बार मिला है परन्तु विजयनगर (आसाम) की पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा में जो चमत्कार देखने को मिला वह चिरस्मरणीय है। समारोह के समय वर्षा होने लगी थी जो रुकने का नाम नहीं लेती थी। उस समय संघ के सान्निध्य में खचाखच भरे पण्डाल में पाँच मिनट तक णमोकार मन्त्र का पाठ हुआ और पाँच दिनों तक वर्षा ऐसे गायब रही मानो वर्षा का कोई मौसम ही न हो। यह है आपकी चमत्कारिक प्रतिभा व धर्म के प्रति अटूट आस्था।

पूज्य माताजी ने संघ सहित भारत के अन्य प्रान्तों के अलावा आसाम, नागालेंड, बंगाल आदि प्रान्तों में—जहाँ जैन साधुओं का गमन प्रायः नहीं होता—पैदल विहार कर जैनधर्म की जो प्रभावना की है वह चिर उल्लेखनीय है।

पूज्य माताजी शतायु हों, ऐसी मेरी वीरप्रभु से प्रार्थना है।

—चरणचञ्चरीक : महावीरप्रसाद जैन, लालास वाला

आदर्श आर्यिका संघ

(लेखक : डा० लालवहादुर शास्त्री, दिल्ली)

इस बीसवीं शताब्दी में जैनधर्म के प्रचार और प्रसार के लिए मुनि, आर्यिका, त्यागी, व्रतियों ने जो अनवरत प्रयत्न किया है वह आज के इतिहास में अभूतपूर्व है। गृहस्थों की इस भावना को "जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व सौख्यप्रदायी" मूर्त रूप देने वाला हमारा उक्त समुदाय ही है। देश-देशान्तर में भ्रमण करना, रूखा-सूखा अनियमित एक वार आहार लेकर रहना, प्रतिदिन दो-दो वार प्रवचन-उपदेश करना, निन्दा-स्तुति से उपेक्षित रहकर सर्वसाधारण को आत्मज्ञान, संयम में रहने को प्रोत्साहित करना, (वदले में) किसी प्रकार के प्रति ग्रहण की आशा न रखना, साधु की अपनी विशेषता रहती है। यही विशेषता धर्म के प्रचार-प्रसार को प्रभावक वना देती है। धर्म आचरण माँगता है और आचरण हृदय माँगता है। ये दोनों ही वातें धर्म-प्रचार को सफल और प्रभावक बनाती हैं। साधु इन दोनों के सहारे ही जीवित रहता है अतः उसकी क्षीण आवाज भी श्रोताओं के हृदय में अक्षीण वल और उत्साह उत्पन्न करता है, यही कारण है कि—साधुओं के सम्पर्क में आकर तो गृहस्थ साधु वन जाता है, किन्तु किसी गृहस्थ या विद्वान् के सम्पर्क में आकर किसी को साधु बनते नहीं देखा। यह साधु जीवन भारत देश का प्राण रहा है, अतः कहना चाहिए कि यदि देश में कुछ भी नैतिकता का या सदाचार का अस्तित्व है तो उसका श्रेय साधु-साध्वी संघ को है।

महान् त्यागी, तपस्वी पूज्य १०५ श्री माता इन्दुमतीजी का संघ एक ऐसा ही साध्वी संघ है, जिसने देश के कोने-कोने में धर्म की जागृति की है, पश्चिमी भारत में एक लम्वे अर्से तक विहार कर इन दिनों आप ससंघ पूर्वाञ्चल प्रदेश आसाम की तरफ विहार कर रही हैं। कहते हैं कि यह पहला ही अवसर है जव आसाम जैसे सुदूर प्रदेश में दिगम्वर जैन व्रतियों का विहार हो रहा है, उनमें भी साधु नहीं साध्वियों का विहार हो रहा है।

आसाम में आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी और उनके संघ का जो अभूतपूर्व स्वागत हुआ, वह वचनातीत है। जैनों के साथ अजैनों ने भी उनके स्वागत में पलक-पांवड़े विछा दिए।

सभी आगे आकर माताजी के दर्शन करना चाहते थे, उत्सुकता और हर्ष से विभोर होकर सभी मानो होड़ लगाकर पहले आना चाहते थे। इस संघ की प्रमुख गणिनी आर्यिका माता १०५ श्री इन्दुमतीजी में वृद्धावस्था के बावजूद स्फूर्ति इतनी है कि विहार में सबसे आगे चलती हैं। दैनिक चर्या में पूर्ण नियमित एवं सावधान हैं। यही कारण है कि समस्त संघ अपने आपमें पूर्ण अनुशासित है, हितमित भाषी एवं अत्यन्त शान्त है। आपके दर्शनमात्र से ही बिना उपदेश के ही शान्ति और वैराग्य का उपदेश मिल जाता है।

आपकी प्रमुख शिष्या महान् विदुषी आ० १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी हैं। इन्हें उपाध्याय माताजी भी कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। आपको वक्तृत्व शैली और अध्ययन आदि सभी कुछ वरदान स्वरूप प्राप्त हुए हैं। जो कुछ कहती हैं स्पष्ट और सयुक्तिक कहती हैं। भाषा में कहीं स्खलन नहीं, प्रमाणों में कहीं त्रुटि नहीं, तर्क में कहीं निर्बलता नहीं, आपके प्रवचन शास्त्रीय मर्यादा से कभी बाहर नहीं होते। जितना कुछ बोलती हैं वह तर्क पूर्ण, बोधगम्य तथा रुचिकर होता है जिसे श्रोताओं की अपार भीड़ भी एकाग्रमन से सुनती है। संस्कृत, प्राकृत आदि का अच्छा ज्ञान है। निरन्तर स्वाध्याय, प्रवचन, सामायिक, ध्यान के अतिरिक्त समय में अध्ययन और अध्यापन का कार्य बराबर चालू रहता है।

आजकल तत्त्व की जो एकांगी चर्चा की जाती है और धर्म की जो अन्यथा व्याख्या की जाती है, उसके विरुद्ध आपके समन्वयात्मक भाषणों से समाज को सही दिशा मिली है। अन्धकार की प्रगाढ़ता तभी तक रहती है जब तक सूर्य की प्रभा उदित नहीं होती। माता श्री सुपार्श्वमतीजी को यदि ज्ञान सूर्य की प्रभा कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं है।

इसी संघ में दो आर्यिकाएँ और हैं—श्री १०५ आ० विद्यामतीजी और श्री १०५ आ० सुप्रभामतीजी। दोनों ही अत्यन्त शान्त और साधु चर्या में, पठन-पाठन में रत हैं, उन दोनों की प्रशम मूर्ति को एकत्र देख कर लगता है मानों कोई लोकोत्तर "श्री" और "सरस्वती" बैठी हैं अथवा कभी कभी कल्पना उठती है कि—उक्त दोनों माताएँ पू० इन्दुमतीजी एवं सुपार्श्वमतीजी की छाया ही हैं

❖

"नारी गुणवती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्"

आर्यिका इन्दुमतीजी और उनका संघ

☆ स्व० पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, सोलापुर

हमारे दिगम्बर जैन समाज में भी अनेक साध्वी-संयमिनी-विदुषी हैं । वे चाहे जिस प्रमेय को स्याद्वाद की सिद्धि से सिद्ध करने के लिए सज्ज हैं । उनकी प्रतिभा, विद्वत्ता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगिता, करुणा, स्त्रीजाति के विषय में अनुकम्पा आदि गुण श्लाघनीय ही नहीं अनुकरणीय भी हैं । आर्यिका ज्ञानमतीजी, आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विशुद्धमतीजी, आर्यिका इन्दुमतीजी आदि आर्यिकागण लोक के सामने स्त्रियों के आदर्श रूप को उपस्थित कर रही हैं ।

आर्यिका इन्दुमतीजी ने मरुभूमि के शुष्क वातावरण में जन्म लेने पर भी संयमरूपी अमृत से अपने आपको पवित्र किया एवं इतर अनेक आत्माओं का उद्धार किया । असमय में प्राप्त वैधव्य में भी आध्यात्मिक ज्योतिकिरण को जागृत कर संयमाराधना की ओर आकृष्ट करने का महान् कार्य आर्यिका इन्दुमतीजी ने किया है; यह सामान्य बात नहीं है ।

भारतीय नारी आज वैसे ही चमक-दमक की ओर आकृष्ट है । आज के भौतिक वातावरण, चलचित्र, स्नो पाउडर के जगमगाते युग में संयम की ओर निष्ठा कहाँ ? तपश्चर्या कर शरीर को सुखाने का कार्य आज की नारी क्यों करने लगी !

दूसरी ओर अकाल में भी प्राप्त वैधव्य से नारी-जीवन संत्रस्त हो उठता है । भले ही वह एकाकी जीवन हो परन्तु उन विधवाओं का मुख-दर्शन भी अमंगलकर है । विवाहादि शुभकार्यों में सामने आने की एवं सामने आकर बैठने की उन्हें अनुमति नहीं है । यह विरोधाभास व विडम्बना कैसी ? जो आर्यिका के व्रत धारण कर सकती है, उपचार से महाव्रती बन सकती है, उन स्त्रियों के

मंगलरूप का दर्शन अमंगलकर कैसे ? स्त्रियों को पति की मृत्यु के बाद वैधव्य दीक्षा लेने के लिए संहिताशास्त्रों में कथन है। यदि वे घर में रहें तो वैधव्य दीक्षा लेकर रहें। गृहविरत हो जांय तो स्त्रियोचित प्रतिमात्मक चारित्र को वे धारण करें, इस प्रकार उनके मार्ग में कल्याण है।

अनेक लोग स्त्रियों को शिक्षण देने के सम्बन्ध में आनाकानी करते हैं; कितने ही लोग स्त्रियों को जो शिक्षण दिया जाता है, उसके अनौचित्य पर आक्षेप करते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में हमारा स्पष्ट मत है कि स्त्रियों को शिक्षण देने में कोई आपत्ति नहीं है; उन्हें सुशिक्षित व सुसंस्कृत करने की परम आवश्यकता है; यह हमारी प्राचीन संस्कृति के सर्वथा अनुकूल है। भगवान आदिनाथ ने अपनी दोनों पुत्रियों से कहा कि बेटियों ! तुम दोनों युवती होने पर भी शील व विनय से वृद्ध स्त्रियों के समान हो; तुम्हारे शरीर वय सौन्दर्य और शील विद्या से विभूषित हो जांय तो यह जन्म सफल होगा। इस जगत् में विद्यावन्त पुरुष विद्वानों से सम्मान प्राप्त करता है व विद्यावती स्त्री स्त्री-सृष्टि के श्रेष्ठ पद को प्राप्त करती है। मानव के लिए विद्या श्रेयस्करी व यशस्करी है। अच्छी तरह आराधित विद्यादेवता इष्टार्थ को पूर्ण करती है; विद्या मंगलदायिनी है, विद्या अपने साथ ही जाने वाला द्रव्य है, समस्त प्रयोजनों को विद्या उत्पन्न करती है इसलिये पुत्रियों ! तुम्हें अभी विद्या का अर्जन करना चाहिये।

यह उपदेश देकर धर्म, न्याय, व्याकरण, छन्द अलंकार आदि शास्त्रों में अपनी दोनों पुत्रियों को भगवान ने विदुषी बनाया, फलतः संसार के भोगों से विरक्त होकर दोनों ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। ऐसी विद्या को प्रदान करने का निषेध कौन कर सकता है। विद्या ऐसी हो जो हित-प्राप्ति और अहित के परिहार में समर्थ हो, कल्याण के मार्ग को बताने वाली हो, अकल्याण से बचाने वाली हो, लोकद्वय में हितप्राप्ति कराने में समर्थ हो। ऐसी विद्या ही आचार्य शान्तिसागरजी के पट्ट में सुशोभित, अधिकृत आचार्य वीरसागरजी के द्वारा दीक्षित आर्यिका इन्दुमतीजी, सुपार्श्वमतीजी आदि ने ग्रहण की है। यह कहते हुए हमें आनन्द होता है; वे और उनकी शिष्याएं सभी परम विदुषी हैं, जैनधर्म की महती प्रभावना करती हुई भारत में सर्वत्र विहार कर रही हैं। दक्षिणोत्तर भारत में सर्वत्र उनका चातुर्मास हुआ है। सर्व प्रमुख स्थानों में उनके अस्खलित व विद्वत्तापूर्ण प्रवचन हुए हैं; तपः पूत अतिशय निर्मल ज्ञान होने के कारण उनकी धारावाहिक कथनपद्धति अपूर्व है; बड़े-बड़े विद्वान् भी उनका अनुकरण नहीं कर सकते हैं; ऐसा भी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं हो सकती है। ग्रन्थों के प्रमाण, ग्रन्थों के स्थल, किस अनुयोग के ग्रन्थ में कहाँ क्या है ? आदि उन्हें कण्ठोक्त है। उनका क्षयोपशम अनुपम है, तपश्चर्या अगाध है। बड़े-बड़े विद्वान् संयमी आप विदुषियों की विद्वत्ता का लोहा मानते हैं। आपने श्रवणबेलगोला, मूडबद्री, अकलूज, कुम्भोज बाहुबली, कलकत्ता, किशनगंज आदि प्रमुख स्थानों में और राजस्थान के प्रमुख नगरों में चातुर्मास किये हैं। सर्वत्र जैनधर्म की जय-भेरी बजाई है। आर्यिका सुपार्श्वमतीजी की विद्वत्ता सर्वविश्रुत है।

वैधव्य दीक्षा या जिनदीक्षा :

स्त्रियों को पति का वियोग होना दुर्भाग्य की बात है तथापि अशक्य अनुष्ठान है; आयु के पूर्ण होने पर कोई किसी को बचा नहीं सकता है। ऐसी स्थिति में स्त्रियों को वैधव्य प्राप्त होता है। वैधव्य प्राप्त होने पर उनका कर्त्तव्य है कि संसार का त्याग कर जिनदीक्षा लेवे परन्तु जिसको जिनदीक्षा लेने की सामर्थ्य न होवे, वह घर में ही रह कर आत्मकल्याण करे एवं अपना जीवन आदर्शमय व्यतीत करे।

आर्यिकाजी का मार्ग अलग :

आर्यिका इन्दुमतीजी ने संसार की स्थिति का अच्छी तरह निर्णय किया था। उन्होंने दूसरें उत्तम मार्ग का अनुसरण किया। जैनी दीक्षा लेकर अपने को तपः पूत संयम से नियंत्रित करने का निश्चय किया क्योंकि सांसारिक जीवन में स्वैराचार की ओर प्रवृत्ति हो सकती है परन्तु जैनी तपस्या स्वैराचार की विरोधिनी है—'चित्रं जैनी तपस्या हि स्वैराचार विरोधिनी' महर्षि वादीभसिंह के वचन को आपने सत्य सिद्ध करने का दृढ़ संकल्प लिया, अपने ही समान त्यागी, संयमी, विदुषी साध्वियों का निर्माण करने का उन्होंने सतत प्रयत्न किया। आपने सुपार्श्वमती माता जैसी विदुषी को जन्म दिया, उनसे जो समाज का उपकार हो रहा है वह अनुपम है। पूज्य सुपार्श्वमती माताजी की विद्वता इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि बड़े-बड़े विद्वान् बीसों वर्ष विद्यालय में क्रमवद्ध अध्ययन कर भी वह विद्वत्ता प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आप प्रमाण के विना बात नहीं करती हैं, प्रमाण भी उधार नहीं, नगद देती हैं। ग्रन्थों का स्थल, श्लोक, आचार्य, प्रकरण आदि का उल्लेख उनके प्रवचनों में सुनिए; वे बोलती-चलती विश्वकोश हैं। समाज के सुधार के लिए एवं स्त्री-समाज के सुधार के लिए ऐसी ही विदुषी साध्वियों की आवश्यकता है। समाज के सद्भाग्य से ऐसी साध्वियों को दीर्घ जीवन प्राप्त हो परन्तु माताजी वहुत बीमार रहती हैं; राजयक्ष्मा सदृश बीमारी उनको हो गई है तथापि वे निर्भय व निर्द्वन्द्व है। उन्हें मालुम है कि एक दिन शरीर को छोड़ना है, हेय है। ऐसे हेय काय पर मोह क्यों किया जाय; यह उनकी तपश्चर्या की विशेपता है।

"चित्रं जैनी तपस्या हि यस्यां कायेऽपि हेयता" वादीभसिंह के इस वचनानुसार वे शरीर को सर्वथा हेय समझकर अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण जागृत हैं। संसार-भोगों के लिए अनेक शरीर समर्पित किए परन्तु योग के लिए एक भी शरीर का त्याग नहीं किया, इस पवित्र विचार से वे सदा अपने ध्यानाध्ययन में मग्न रहती हैं। उनके द्वारा अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है; अनेक सूक्ष्म व गम्भीर विपयों की गुत्थियों को अपने ग्रन्थों में उन्होंने प्रमाण व युक्तिपूर्वक सुलझाया है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों को पढ़ कर विद्वान् भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में उनके विहार व चातुर्मासों से जनता पर अपूर्व प्रभाव पड़ा है; अनेकान्तात्मक सिद्धान्त की महती प्रभावना

संघ के द्वारा हुई है और हो रही है। आसाम प्रान्त में सुदूरवर्ती होने के कारण एवं पहाड़ी मार्ग से कठिनतापूर्वक विहार होता है अतः साधुगण बहुत कम जाते हैं परन्तु आर्यिका इन्दुमतीजी के संघ का विहार भारत के इस पूर्वाञ्चल में हो रहा है। पश्चिम बंगाल, आसाम, डीमापुर, बिहार आदि प्रान्तों के स्त्रीपुरुषों का यह सौभाग्य ही माना जा रहा है। उनके द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित अनेक स्त्री पुरुष हैं। उनके साथ ही विदुषी श्री सुप्रभामती माताजी हैं, सो दक्षिण भारत की हैं।

इस प्रकार इस भौतिक युग में आर्यिका इन्दुमती माताजी के संघ ने भारत में जो प्रभावना की है और कर रही हैं, वह अभूतपूर्व है। आज गाँव-गाँव में, घर-घर में घूम घूम कर श्रावकों की हितकामना करने वाले साधु-साध्वियों का विहार भारत में सर्वत्र हो तो धर्म का अपूर्व उद्योत हो सकता है। यह कार्य इन्दुमतीजी के संघ से सिद्ध हो रहा है, इसमें कोई शंका नहीं है।

❖

नारी महान्

श्री जिनेन्द्रकुमार जैन, एडवोकेट, सिविल लाइन्स, बरेली

हमारे देश में प्राचीनकाल से ही नारी का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। मध्यकाल में मुस्लिम शासन होने पर उसकी स्वतंत्रता छीन कर उसे पर्दे में बन्द कर दिया गया था किन्तु आज फिर वह अपनी स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा का पूर्ण उपभोग करने में सक्षम है। आज वह पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कर्मशील हुई है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में नारी अब कर्मठ होकर अपनी क्षमता व योग्यता का परिचय दे रही है।

जैन समाज में जो चतुर्विध संघ की स्थापना की गई है उसमें गृहस्थ दशा में श्राविका और संन्यास दशा में आर्यिका को वही स्थान प्राप्त है जो श्रावक एवं मुनि को है। आर्यिका मुनिवत् ही पूज्य एवं वन्दनीय है। साधुवर्ग का जो कार्य समाज को अपने चरित्र एवं उपदेश द्वारा आदर्श रूप देना है, वही कार्य नारी भी आर्यिका रूप में कर रही है। हमारे समाज में अनेक प्रबुद्ध महिलाएं ब्रह्मचारिणी के रूप में तथा आर्यिका के रूप में सदाचार का प्रचार कर समाज का उत्थान करने में प्रयत्नशील हैं।

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी ऐसे ही नारी रत्नों में से एक हैं जिन्होंने समाज को उन्नत करने और सदाचार का प्रचार करने का बीड़ा उठाया है। उन्होंने भारत के उन क्षेत्रों में जहाँ दिगम्बर साधु नहीं पहुँचते, संघ सहित विहार कर जैनाजैन समाज को सम्बोधित और सावधान किया है। स्वच्छ जीवन व्यतीत करने हेतु मार्गदर्शन किया है। यह हमारे समाज एवं देश का सौभाग्य ही है कि आज के इस अन्धकार युग में हमें ज्ञान का प्रकाश देने के लिए माताजी जैसे नारी रत्नों का आश्रय प्राप्त है।

पूज्य माताजी के चरणों में शतशः नमन।

❖

साध्वी शिरोमणि

लेखक : स्व० तेजपाल काला, नांदगांव (नासिक)

परम पूज्य १०५ आर्यिका रत्न शिरोमणि इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन स्वरूप ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना अत्यन्त स्तुत्य है । "न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति" इस उक्ति के अनुसार सज्जन पुरुष अपने ऊपर उपकार करने वाले उपकार कर्त्ता के गुणों का कभी विस्मरण नहीं करते ।

पूज्य १०५ साध्वी शिरोमणि इन्दुमती माताजी ने अपने रत्नत्रय युक्त दीर्घकालीन साधु जीवन में समस्त जैन समाज पर अनगिनत उपकार किये हैं । भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट, आगम के अनुसार साधुजीवन का कठोरता से पालन करते हुए पूज्य माताजी ने अपने दीर्घ जीवन में आगममार्ग का यथाविधि संरक्षण और संवर्धन किया है । असंख्य लोगों को धर्ममार्ग में लगाया है । त्याग और संयम का दीप प्रज्ज्वलित रखा है । यदि इतना उपकार करने वाली आगम मार्ग संरक्षिका साध्वी का सम्मान, संस्मरण और कृतज्ञता ज्ञापन द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित कर न किया जाता तो वह कृतघ्नता ही होती ।

बहुत छोटी ही अवस्था में वैधव्य प्राप्त होने पर भी अपने वैधव्य का उपयोग आत्मोत्थान में लगाकर आदर्श जीवन का जो श्रेष्ठ उपमान आपने देश में स्थापित किया, वह निःसन्देह बहुत ही प्रशंसनीय और अनुकरणीय है ।

आपके इस आदर्श उपमान के पीछे वर्तमान युग के एक महान् विद्वान, साधु एवं अत्यन्त श्रेष्ठ, निष्कलंक, लोकेषणा-रहित, आडम्बरहीन, आगम चक्षु, कठोर तपस्वी, परम-पूज्य स्व० १०८ मुनिराज श्री चन्द्रसागर जी महाराज की प्रेरणा और

आशीर्वाद रहा है । आप ही से पूज्य माताजी ने क्षुल्लिका दीक्षा लेकर रत्न-त्रय युक्त साधु जीवन में प्रवेश किया । पूज्य गुरुवर्य की तरह ही आपने भी अपने साधुजीवन के दीर्घकाल में जिस कठोर आत्मसाधना, रत्नत्रय की विशुद्धता एवं आत्म निष्ठता का परिचय दिया और दे रही हैं, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है । अपने गुरुवर्य की तरह से ही आपने भी किसी भी प्रकार के लोकानुरंजन, लोकेषणा, परिस्थिति की विपरीतता या किसी के रोषतोष की परवाह नहीं की । आप धर्म, श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, तप में अडोल निर्भीक और निर्मल हैं ।

आज से लगभग ३९ वर्ष पूर्व पूज्य माताजी स्व० परम पूज्य १०८ साधु श्रेष्ठ मुनिराज श्री चन्द्रसागर जी महाराज के साथ संघ सहित नाँदगांव (नासिक) में क्षुल्लिका अवस्था में आई थीं। उस समय पहली बार, परमशान्त, निष्कषाय-मूर्ति पूज्य माताजी के पावन दर्शन मैंने किये थे। उस समय आप निरन्तर अध्ययनशील रहती थी । उसके बाद पूज्य माताजी के मुझे कई बार दर्शन हुए तथा उनको आहार दान करने का भी सौभाग्य प्राप्त किया । आज भी मैं देखता हूँ कि पूज्य माताजी अपने साथ अन्य तीन आर्यिका-शिष्यों को लेकर उनकी आश्रयता का और संघ संचालन का नेतृत्व अत्यन्त कुशलता के साथ कर रही हैं । उनका समुचित मार्गदर्शन कर उन्हें रत्नत्रय, तप और आगम मार्ग में दृढ़ रखती हैं । पूज्य माताजी किसी भी बहाने से आगम मार्ग में किसी भी प्रकार का शैथिल्य या समझौता स्वीकार करने के सर्वथा विरुद्ध हैं ।

आपके संघ की तीनों पूज्य आर्यिकाएँ भी आप ही की तरह अत्यन्त आगम निष्ठ, विदुषी और तपः पूत साध्वी रत्न हैं जिसमें पूज्य १०५ आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी तो केवल आपके संघ की ही नहीं सारे भारत की एक मुकुटमणि सदृश जिनवाणी भूपण महा विदुपी साध्वी रत्न हैं । आपके जैसी प्रकाण्ड विद्वत्ता, आगम जताने की कोई अन्य मिसाल समाजमें मिलना मुश्किल है। आप जब प्रवचन देती हैं तो जैसे—ज्ञान गंगा का निर्मल प्रवाह वहता दिखाई देता है । सौभाग्य से ही ऐसी महाविदुषी-आगममार्ग-संरक्षिका तपः पूत निष्कपाय साध्वियाँ देखने को मिलती हैं । निश्चय ही, यह जैन समाज का गरिमामय सौभाग्य है, ऐसे आदर्श साध्वी रत्न को तैयार करने का श्रेय पूज्य १०५ श्री इन्दुमती माताजी को ही है । इसके लिए पूज्य माताजी का जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा ।

इस आदर्श आर्यिका संघ ने भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में पद-विहार कर अपने तपः पूत जीवन, आदर्शचारित्र साधना और विमल ज्ञान गंगा के प्रवाह से भारत भूमि को पावन किया है निश्चय ही, वयोवृद्धा, ज्ञानवृद्धा, तपोवृद्धा, पूज्य आर्यिका रत्न शिरोमणि श्री इन्दुमती माताजी इस संसार में अपने नाम के अनुरूप शशि सम तेजस्विता के साथ चमकती हैं । उनका शान्त, निष्कषाय, निष्कलंक जीवन भारत के लिए ललामभूत है ।

पूज्य माताजी का मुझ पर सदैव आशीर्वाद और अनुग्रह रहा है। ऐसी तपः पूत साध्वी के मंगलमय दर्शन कर जीवन में धन्यता प्राप्त कर सकें, मन में सदैव यही तीव्र उत्कण्ठा रहती है। वस्तुतः ऐसे परम आदर्शमय तपस्वी जीवन के दर्शन से ही जीवन के कल्मष दूर कर जीवन में आदर्श रूप बनने की और आत्म विकास करने की अन्तःप्रेरणा जागृत होती है।

ग्रन्थ समर्पण करने के इस पावन अवसर पर मैं आर्यिका रत्न शिरोमणि श्री इन्दुमती माताजी के पुनीत चरणों में नम्र अभिवादन कर उनको भाव-भीनी विनयाञ्जलि अर्पण करते हुए श्री १००८ वीर प्रभु से उनके स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन की मंगल कामना करता हूँ।

सौहार्दशील माताजी

पण्डित तनसुखलाल काला, बम्बई

पूज्य श्री १०५ इन्दुमति माताजी मेरे मामाजी स्व० चन्दनमलजी पाटनी, डेह की सुपुत्री होने से गृहस्थ अवस्था में मेरी वहन रही। अपने जन्मस्थान डेह में जब मैं अपनी धर्मपत्नी (अब स्व०) आदि को लेकर गया तब उनके दर्शन मुझे वहाँ प्राप्त हुए। अतिशान्त प्रकृति की वह मेरी वहन, स्व० प० पू० श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज के संघ का चातुर्मास जब नांदगाँव में हुआ, तब उनके संघ में थी। वे उसको पढाते थे। उनसे ही आपने क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण की। उनके चारित्र का प्रभाव इतना जबरदस्त पड़ा कि वे उनकी पूर्ण अनुगामिनी हो गई। उनके स्वर्गवास के बाद प० पू० स्व० श्री १०८ वीरसागरजी महाराज से उन्होंने आर्यिका दीक्षा ली। सम्यक्चारित्र में दक्षता तथा ख्यातिलाभ आदि से रहित वृत्ति ने सारे समाज को मोहित कर लिया। सुयोग से परम विदुषी पूज्य श्री १०५ सुपार्श्वमति माताजी उनके साथ मिल गयी। महाराष्ट्र में सर्वत्र उनका विहार हुआ। कोपर गाँव में स्व० परम पूज्य महाराज चन्द्रसागरजी तथा माताजी इन्दुमतीजी की प्रेरणा से मैंने तथा मेरी स्व० धर्मपत्नी एवं माताजी—सबने एक साथ दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। इस प्रकार, एक बार नहीं कितनी बार माताजी का मिलना जुलना होता रहा। करीब नौ वर्ष पहले (स्व०) बड़े पुत्र जयकुमार आदि को साथ लेकर अतिशय क्षेत्र भातकुली, रामटेक, सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरी होते हुए मैं जब महान् सिद्धक्षेत्र श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रार्थ पहुँचा तब सन्मार्गदिवाकर प० पू० श्री १०८ आचार्यरत्न श्री विमलसागरजी महाराज के संघ के दर्शन का

लाभ एवं उनको आहारदानादि देने का सौभाग्य मिला। क्षेत्र की वन्दना कर हम सब पूज्य माताजी के संघ के दर्शनार्थ कलकत्ता आये। दैव की बलवत्ता कि उसी दिन शाम को कलकत्ता में मेरे पुत्र जयकुमार का—पूज्य माताजी का संघ जहाँ ठहरा था उसी चैत्यालय में संघ के सान्निध्य में ही एकाएक स्वर्गवास हो गया। अतः चम्पापुर, पावापुर आदि क्षेत्रों की यात्रा करने के जो भाव हमारे थे उससे हमें वंचित होकर शीघ्र बम्बई आना पड़ा। उस समय पूज्य श्री १०५ इन्दुमति माताजी, पूज्य श्री १०५ सुपार्श्वमति माताजी आदि संघ का सान्निध्य सिर्फ एक दिवस मात्र ही रहा। संसार की इस अनित्यता एवं क्षणभंगुरता के दृश्य ने सबको आश्चर्य चकित कर दिया।

कलकत्ता में संघ के द्वारा भारी प्रभावना होती रही। यह जानकर सबको अकथनीय आनन्द हुआ। पूज्य श्री १०५ इन्दुमति माताजी का संघ के साथ अपूर्व वात्सल्य तथा प्रेमभाव देखने में आया। पूज्य माताजी का संघ कलकत्ता से आसाम की ओर विहार कर गया—जहाँ आज तक किसी दिगम्बर त्यागी, व्रती का विहार नहीं हुआ। उस प्रान्त में विहार कर माताजी ने जो धर्मप्रचार किया है वह उल्लेखनीय है। वास्तव में, माताजी ही सच्ची माताजी हैं। उनमें अलौकिक साहस तथा रत्नत्रय की सम्पन्नता है। पूज्य श्री १०५ सुपार्श्वमति माताजी की शारीरिक प्रकृति प्रायः अस्वस्थ रहती थी। उनकी संभाल आदि उन्होंने अपनी पुत्री के समान की। जिस प्रकार स्व० पूज्य श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज दृढ़ तथा निरपेक्ष वृत्ति वाले रहे उसी प्रकार की चर्या माताजी की है। इससे सारे भारत में उन्हें उच्चता प्राप्त होती रही है। अकलूज, कुम्भोज बाहुबली में भी संघ का चातुर्मास हुआ। संघ सदा आगमोक्त चर्या में अविचलरूप से स्थित रहा। पूज्य माताजी किसी के दबाव में नहीं आयी बल्कि अपना प्रभाव सबके ऊपर डालते हुए उन्होंने आगम की पूर्ण रक्षा की। लाडनूँ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर संघ विद्यमान था। उस समय प्रायः बड़े-बड़े विद्वान् पूज्य श्री सुपार्श्वमति माताजी की विद्वत्ता एवं पूज्य इन्दुमती माताजी की धर्म निष्ठा तथा विशुद्ध प्रेमभाव देखकर चकित हो गये थे।

पूज्य माताजी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का जो विचार किया गया है वह अत्यन्त स्तुत्य है। मैं उनके दीर्घायुष्य और आरोग्यता एवं सुन्दर स्वास्थ्य की कामना करते हुए उनके चरणों में अपनी हार्दिक भावाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

अद्वितीय आर्यिका

डा० सुशीलचंद दिवाकर M.A. B.Com., LL. B. Ph. D. जबलपुर

आदि तीर्थंकर के काल से ही आर्यिकाओं के अस्तित्व का पता चलता है। श्री ऋषभदेव की सुपुत्रियों–ब्राह्मी एवं सुंदरी ने अपने पिता से दीक्षा ली थी और धर्मचक्रप्रवर्तन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के धर्मचक्रप्रवर्तन में चंदना माता का इसी प्रकार अप्रतिम योगदान रहा है। आचार्य विनोबा भावे का मत है कि यह जैनधर्म की अपनी विशेषता रही है कि उसमें पुरुष की भांति नारी को भी धर्मसंघ में निःसंकोच रूप से प्रवेश प्रदान किया गया है। जबकि गौतम बुद्ध ने बड़ी हिचकिचाहट के बाद अपने प्रिय शिष्य आनंद की सिफारिस पर एक नारी को संघ में प्रवेश प्रदान करते हुए काफी आशंकाएं अभिव्यक्त की थीं।

वर्धमान के निर्वाणोपरांत भी जैनधर्म की यशस्वी पताका को लहराने का कार्य जैन साध्वियों ने किया। असंख्य साध्वियों ने सांसारिक सुख वैभव के प्रति पीठ कर स्व-पर कल्याण हेतु तपस्या धारण की और धर्म तथा संस्कृति के स्वरूप को निखारने में योगदान किया।

इसी दैदीप्यमान परिपाटी में प्रातः स्मरणीय इन्दुमति माताजी का संघ आता है। मैं जानबूझ कर इंदुमति माताजी एवं उनकी शिष्याओं के सांसारिक जीवन में नहीं उतरता। साधुत्व अंगीकार करने के बाद के संस्मरण ही इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत करूंगा, यद्यपि उनका पूर्व जीवन किसी प्रकार कम आकर्षक और कम उज्ज्वल नहीं रहा है।

१९७० में आर्यिका-रत्न इंदुमतिजी का संघ सिवनी पधारा था। मुझे ज्येष्ठ भ्राता धर्मदिवाकर विद्वत्‌रत्न पं० सुमेरचन्द्रजी दिवाकर ने पत्र द्वारा सूचित किया कि एक दिव्य साध्वी संघ वहां विराजा हुआ है, जिसमें प्रमुख इंदुमति माताजी हैं, जो अत्यन्त भव्य और शांत प्रकृति की हैं, साथ ही सुपार्श्वमति माता भी अद्‌भुत विदुषी, वक्ता, विरक्त साध्वी हैं। स्वभावतः संघ के दर्शन की भावना बलवती हो उठी थी। कुछ ही दिनों में फाल्गुन मास में जबलपुर के समीप बरगी ग्राम में सम्पन्न हो रहे पंचकल्याणक के अवसर पर सिवनी से संघ बरगी आया। आर्यिकाओं को सम्मेदशिखर की वंदना हेतु आगे बढ़ना था। उस दिन तपकल्याणक था। योग था कि तपस्विनियों का शुभागमन हुआ। अपनी आदरणीय गुरुणी इंदुमतिजी से आज्ञा प्राप्त कर सुपार्श्वमतिजी ने वैराग्य और तपस्या पर उद्‌गार प्रकट किये। अपार जनसमूह हर्ष विभोर हो उठा। विरक्ति का वातावरण व्याप्त हो गया। संघ शीघ्र ही जबलपुर आया और लगभग एक सप्ताह यहां रुका।

जबलपुर में धर्म-वर्षा :

प्रतिदिन सुपार्श्वमति माता द्वारा धर्मामृत की वर्षा हुई। उन्होंने निश्चय और व्यवहार को आगम के दो अनिवार्य चक्षु निरूपित करते हुए आगमोक्त पद्धति से तत्त्वज्ञान प्रदान किया; जिसने सुना, प्रभावित हुआ। जब वे भाषण देती थीं तो लगता था जैसे स्वयं शारदा धर्मोपदेश दे रही हो। उनकी भाषा संबंधी प्रांजलता, भावों की पवित्रता, अभिव्यक्ति की नैसर्गिकता एक निर्मल झरने की भांति अनवरत रूप से बहती रहती है। वे कभी भी कोरी कल्पना का उपयोग नहीं करती। बिना शास्त्रीय आधार के तो वे एक बात भी नहीं कहतीं। एक दिन मैं अपने एक स्नातकोत्तरीय ब्राह्मण छात्र शिवप्रसाद पाठक को शांतिसागर प्रवचन भवन, जहां माताजी के भाषण होते थे, ले गया। वह बुद्धिमान छात्र चकित हो गया और आज तक उनका स्मरण बड़ी भक्ति से करता है। आखिर, गौतम भी तो वीर प्रभु से ऐसे ही प्रभावित हुए होंगे। सुपार्श्वमति माता अपना भाषण प्रारंभ करने के पूर्व अपनी गुरुणी इंदुमति माताजी से आज्ञा लेती और बड़े माताजी बड़ी शांति, प्रसन्नता और भक्तिभाव से, जिसमें मां की ममता का मिश्रण रहता, धर्मोपदेश सुनती थीं। समाज में कुछ निश्चयवादी धर्माभासी भी रहते हैं किन्तु सभी के मन में माताजी के प्रति अपार आदर भाव पैदा हो गया। उनके उपदेश मार्मिक, तर्क पर आधारित और आगम के अनुकूल होते थे। वे कोरी तत्त्वचर्चा ही नहीं करती थीं अपितु समाज के नर-नारियों, बालक-बालिकाओं के चरित्र निर्माण के प्रति भी उनका विशेष लक्ष्य रहता था। ऐसी विचित्र भाषणकला अन्यत्र दुर्लभ है। धर्म सदृश विषय को वे इतनी मोहकता और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करतीं कि सभी मंत्रमुग्ध होकर सुनते रहते। उदाहरणों, श्लोकों और अनुभवों की उनके भाषण में भरमार

रहती है । वे बोलते हुए अनेक शाखाओं और शिखाओं का स्पर्श करते हुए भी कभी मूल विषय को नहीं त्यागती । ऐसा उसी के लिये संभव है जो अत्यन्त दत्तचित्त होकर बोल रहा हो और अपने विशद ज्ञान को सामने बैठे हुए श्रोता के स्तर को समझते हुए प्रस्तुत करने में यत्नशील हो ।

प्रमिला पर प्रभाव :

सभी प्रभावित हुए । किन्तु सबसे अधिक प्रभाव पड़ा प्रमिला नाम की तरुण बालिका पर । उसके जन्म–जन्म के सुसंस्कार जाग उठे और माताजी के दर्शन तथा विचारों का सान्निध्य पाकर वह इंदुमति माताजी के संघ में ही सम्मिलित हो गई । यह प्रमिला जबलपुर में प्रोफेसर्स कालोनी में ही रहती है और रिश्ते में मेरी भानजी है । इसके माता-पिता परम धार्मिक और गुरु भक्त हैं । प्रमिला के निश्चय से सारे घर में पवित्र शोक व्याप्त हो गया । किन्तु अपने माता-पिता, भाई-भाभी, बहन और सभी कुटुम्बी जनों को संबोध कर वह सुपथगामिनी बनी–जब कि माता-पिता उसे गृहस्थी के पथ पर लगाने की तैयारी बड़े चाव और लगन से कर रहे थे । किन्तु काललब्धि और भवितव्य का अपना महत्त्व है । सो, निर्मलभाव धारण कर प्रमिला संघ की एक अंग बन गई । अपने सुकुमार हाथों में वैवाहिक कंगन के बदले में उसने कालांतर में कमंडलु धारण करने का मन ही मन निश्चय कर लिया और अब वह जब भी जबलपुर आती है, अपने ही घर में अतिथि बनकर आती है ।

जबलपुर से प्रस्थान :

जिस दिन पूज्य इंदुमति एवं सुपार्श्वमति माताजी का संघ जबलपुर से प्रस्थित होने लगा, उस दिन प्रत्येक धार्मिक नर-नारी का मन भारी हो गया । जैसे वे अपनी कोई महान् निधि से वंचित होने जा रहे हों । अपार भीड़ ने अश्रुपूरित नेत्रों से, पुण्यास्त्रव करते हुए, संघ को विदाई दी । जाते समय जब मैंने माताओं को प्रणाम निवेदन किया तो उस अपार जनसमुदाय में भी सुपार्श्वमतिजी ने मुझसे कहा कि अपने बड़े पुत्र के स्वास्थ्य का ध्यान रखना और उनके द्वारा बताए हुए मंत्र को सिखाना तथा जाप करना । मैं माताजी की इस ममतापूर्ण कृपा को कभी भी विस्मृत नहीं कर सकता ।

कलकत्ता में पुनः दर्शन :

१९७२ के अक्टूबर मास में भारत की अद्वितीय नगरी कलकत्ता में अद्वितीय आर्यिका-संघ के दर्शन का द्वितीय अवसर प्राप्त हुआ । कलकत्ता का धर्मप्रेमी समाज संघ की वैयावृत्ति, सेवा और वंदना में मन-वचन-काय से संलग्न दृष्टिगत हुआ । माताजी का वहां चातुर्मास हो रहा था । बड़े बड़े यशस्वी व्यापारी, उद्योगपति, वकील, फोफेसर्स, साहित्यकार और अन्य जैन नागरिक प्रतिदिन संघ के दर्शनार्थ आलू-पोस्ता के विद्यालय में आते और सुपार्श्वमति माताजी

की अमृत वाणी से लाभान्वित होते । मैं अपने ज्येष्ठ बंधु पं० सुमेरुचन्द्रजी के साथ सपत्नीक सम्मेदशिखर जी की वंदनार्थ निकला हुआ था । अद्वितीय संघ के दर्शनों का द्वितीय बार सौभाग्य प्राप्त कर हम सभी कृतार्थ हुए ।

एक दिन पंडित जी ने माताजी से उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा । क्योंकि उन दिनों सुपार्श्वमतिजी का स्वास्थ्य चिंताजनक मोड़ से गुजर रहा था । तुरन्त ही माताजी ने कहा–"साधुओं से कभी उनके शारीरिक स्वास्थ्य के बारे में नहीं पूछना चाहिये । उनसे तो केवल इतना ही पूछिये कि धर्म-साधन कैसा चल रहा है । साधु को अपने शारीरिक स्वास्थ्य की तरफ ध्यान ही नहीं रहता । वह तो धर्मानुसार अपने व्रत पालन में निमग्न रहता है ।" उन दिनों की उनकी अवस्था के कारण भक्तगण चिंतित रहते थे । एक दिन वे एक प्रख्यात कविराज को माताजी की जांच हेतु लाए । कविराज ने फीस भी ली किन्तु घर पहुँचते ही स्वयं बीमार पड़ गए । तो कह उठे–अरे मुझसे बड़ी भूल हो गई, जिसका यह परिणाम मुझे भोगना पड़ा, मुझे मां की जांच की फीस नहीं लेनी चाहिये थी । इस लेख में मैं माताजी के चमत्कारों का वर्णन जानबूझकर नहीं कर रहा हूं ।

इन्दुमतिमाता के प्रति शिष्या की भक्ति :

जब कभी पूज्य सुपार्श्वमति माताजी के भाषण के उपरान्त मुझ जैसा कोई श्रोता प्रशंसात्मक उद्‌गार प्रकट करता तो तुरन्त ही वे अपनी गुरुणी इन्दुमतीजी के प्रति इंगित करते हुए कहतीं–यह सब इनकी परमकृपा और आशीर्वाद का सुफल है । इस पर बड़े शांत भाव से मुस्कराते हुए इन्दुमति माता कहतीं–नहीं, तुम स्वयं विदुषी हो, योग्य हो । इन्दुमति माताजी स्वयं बड़ी तल्लीनतापूर्वक अपनी प्रिय शिष्या का उपदेश सुनतीं । धर्मलाभ का इच्छुक वय, पद आदि की दीवारों में विश्वास नहीं करता । वह तो सभी सुस्रोतों से ज्ञान-लाभ करने को उत्सुक रहता है और फिर विश्व में माता, पिता और गुरु ये तीन ही तो ऐसे जीव हैं जो अपनी संतान और शिष्य की उपलब्धियों और विकास से आंतरिक प्रसन्नता का अनुभव करते हैं ।

तीन चार दिन कलकत्ता में आर्यिकासंघ के चरण सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । वहां धर्मप्रेमी बंधुओं ने जो अपार स्नेह–भाव दर्शाया, उसे विस्मृत करना असंभव है। यद्यपि हम कलकत्ता से रवाना हो गए किन्तु आज भी कानों में सुपार्श्वमति माता के हितकारी मधुर वचन झंकृत होते रहते हैं और इन्दुमति माता की शरद ऋतु के इंदु (चन्द्र) के समान सौम्य मुद्रा अन्तर्नयनों में झलकती रहती है । श्री जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना है कि ब्राह्मी, सुंदरी, राजुल, चंदना द्वारा प्रशस्त यह आर्यिका-पंथ निष्कंटक हो, शाश्वत हो और इनके माध्यम से संसार का परम कल्याण हो ।

❖

विनयाञ्जलि

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य आचार्यकल्प १०८ (स्व०) श्री चन्द्रसागरजी महाराज का संघ वीर निर्वाण संवत् २४६६ के ज्येष्ठ मास में श्री मक्सी पार्श्वनाथजी आया था, तब ब्रह्मचारिणी मथुरा बाई (स्व० आर्यिका विमलमती माताजी) व ब्रह्मचारिणी मोहनी बाई (वर्तमान आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी) आपके संघ में थीं। श्री जिनेन्द्र भगवान का प्रतिदिन पञ्चामृताभिषेक करने का आप दोनों के नियम था । जब तक अभिषेक नहीं कर लेती थीं तब तक भोजन ग्रहण नहीं करती थीं।

मक्सीजी से रवाना होकर महाराज श्री का संघ ज्येष्ठ सुदी में उज्जैन आया । वहाँ पर दोनों ब्रह्मचारिणी बाइयों को पंचामृताभिषेक नहीं करने दिया गया तो दोनों अनशन पर बैठ गईं। कुछ संघर्ष का आभास होने पर श्री राजमलजी बिलाला आदि ने पञ्चामृताभिषेक का प्रबन्ध कर दिया, जिससे अनशन व संघर्ष की स्थिति टल गयी।

उज्जैन से संघ चन्द्रावतीगंज आया । वहाँ पर भी इसी तरह का वातावरण बना। मन्दिर जी में ताला लगवा दिया गया था। अभिषेक का साधन न मिलने से दोनों ब्रह्मचारिणी बाइयों को निराहार रहना पड़ा व अन्य भी उपसर्ग सहन करने पड़े । फिर एक गृहस्थ के गृह चैत्यालय में अभिषेक की व्यवस्था हुई । वहाँ से आहार करके संघ बड़नगर की ओर रवाना हुआ और आषाढ़ शुक्ला तीज को वहाँ पहुँचा । बड़नगर में वर्षायोग सानन्द सम्पन्न हुआ । इन्दौर से श्री मिश्रीलालजी सेठी, श्री कँवरलालजी कासलीवाल, श्री बाबूलालजी जाँझरी, श्री रतनलालजी पाटोदी और मैं बड़नगर गए । वहां पूज्य १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज एवं ब्रह्मचारिणी मोहनी बाई के हृदयग्राही आत्मबोधक प्रवचन सुनने का लाभ मिला ।

बड़नगर में चातुर्मास पूर्ण कर संघ मंगसर बदी १० सं० २४६७ को असावता ग्राम पहुँचा । वहाँ इन्दौर से १०-१२ नवयुवक गये । भोजन की व्यवस्था ब्रह्मचारिणी बाइयों ने की थी । महाराज के दर्शनों से असीम आनन्द हुआ । आशीर्वाद मिला । यहाँ से संघ बनेड़ियाजी अतिशय क्षेत्र पर पहुँचा । दोनों ब्रह्मचारिणी बाइयाँ महाराज को आहार देकर आहारदान का लाभ तो लेती ही थीं, साथ ही आने वाले दर्शनार्थी भक्तों की भी पूरी सार-सँभाल रखती थीं। इन्दौर वालों पर दोनों बाइयों की बड़ी कृपा थी । यहाँ से विहार कर संघ ने मंगसर वदी तीज को इन्दौर नगर में प्रवेश किया ।

संघ को मोदीजी की नसियां में ठहराया गया था । यहाँ भी आरती व पञ्चामृताभिषेक बाबत कोई विसंवाद न हो जावे, इस वास्ते सेठ श्री विनोदीरामजी बालचन्दजी सेठी तुकोगंज वालों के यहां से श्री १००८ चन्द्रप्रभ भगवान की चाँदी की प्रतिमा लाकर (वेदी में दूसरे जिनबिम्बों के साथ विराजमान नहीं करने देने की वजह से) एक भण्डारे में अलग विराजमान की गई थी। यहाँ प्रतिदिन पंचामृताभिषेक व आरती होती थी । संघस्था क्षुल्लिका १०५ श्री बुद्धिमतीजी के अस्वस्थ हो जाने से संघ को इन्दौर में तीन मास तक ठहरना पड़ा था । इसी अवधि में दिनांक २२-१२-४० को कतिपय कट्टरपन्थियों द्वारा आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज के वहिष्कार का नाटक किया गया । महाराजश्री व संघ पर कैसे-कैसे उपसर्ग आए, यह सबको विदित ही है। इतना सब होने पर भी महाराजश्री का प्रवचन प्रतिदिन प्रातः एवं मध्याह्न में नियमित रूप से होता था और सैकड़ों नर-नारी सोत्साह श्रवण करते थे । दोनों ब्रह्मचारिणी बाइयों ने सारी असुविधायें झेलते हुए दृढ़तापूर्वक अपने नियम का पालन कर गम्भीर साहस का परिचय दिया। अस्वस्थ क्षुल्लिका बुद्धिमतीजी की समाधि के बाद फाल्गुन शुक्ला तीज, वीर सं० २४६७ को संघ यहाँ से विहार करके तेरस को बड़वानी सिद्धक्षेत्र पहुँचा ।

एक दिन ब्रह्मचारिणी मोहनी बाई (वर्तमान इन्दुमती माताजी) ने बताया कि मेरे एक हाथ में फोड़ा हो जाने से मैं उस हाथ की चूड़ी उतार रही थी तो महाराज ने कहा कि दूसरे हाथ में फोड़ा नहीं हुआ क्या ? तुम्हें अब चूड़ी नहीं पहनना चाहिए । इसी तरह सिर के बाल कटाने बाबत तथा नमक खाना छोड़ने के बारे में भी कहा लेकिन मैंने नमक नहीं छोड़ा तो महाराज ने मेरे हाथ से आहार लेना बन्द कर दिया; इससे मुझे बहुत दुःख हुआ और मैंने खाना-पीना छोड़ दिया । लोगों ने महाराज से कहा कि ब्रह्मचारिणी मर जावेगी तो महाराज बोले—'मर जावेगी तो श्रावक जला देंगे ।' महाराजश्री ने मुझे बहुत समझाया ।

वीर संवत् २४६९ में संघ कसावखेड़ा पहुँचा । हम लोग भी गए थे; वहीं पर दोनों ब्रह्मचारिणी बाइयों की क्षुल्लिका दीक्षा सम्पन्न हुई । दोनों के नाम क्रमशः मानस्तम्भमतीजी व

इन्दुमतीजी रखे गए । वाद में आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की । मानस्तम्भमतीजी विमलमतीजी हुईं । आपका नाम इन्दुमतीजी ही रहा । तव से आज तक आप अनवरत स्व पर कल्याण में रत हैं । पू० आर्यिका सुपार्श्वमतीजी का साथ हो जाने से तो परस्पर वहुत सहयोग मिला है । गत ४-५ वर्षों से आप भारत के पूर्वाञ्चल प्रदेशों में भ्रमण कर रही हैं जहां पिछले कई वर्षों में किसी दिगम्वर साधु ने विहार नहीं किया है । आपके विहार से धर्म की महती प्रभावना हुई है ।

आपके श्रीचरणों में शत-शत प्रणाम निवेदन करता हूँ । आप चिरायु होकर भव्यजीवों का इसी भाँति कल्याण करती रहें–ऐसी श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है ।

विनीत : चरणसेवक फूलचन्द कासलीवाल, इन्दौर

प्रणामाञ्जलि

लेखक : पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर, न्यायतीर्थ, शास्त्री, बी.ए., एल एल. बी. सिवनी मध्यप्रदेश

इस दुषमा पंचम काल में संयम से विमुख करने की विपुल सामग्री सर्वत्र पायी जाती है । सभी जीव भोगों और विषयों में निमग्न पाये जाते हैं । ऐसी विषम परिस्थितियों में आर्यिका का महनीय चरित्र पालन करने वाली महिला रत्न का दर्शन दुर्लभ है ।

श्री १०८ स्व० आचार्य शिरोमणि चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी महाराज के महान् निमित्त से अनेक मनस्वी आत्माओं ने महाव्रत धारण किये तथा दिगम्वर मुनि जीवन की परम्परा प्रवर्धमान की । उन रत्नों में आचार्यकल्प उग्रतपस्वी गुरुदेव १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज का गौरवपूर्ण स्थान है । उनके द्वारा अगणित भव्यात्माओं का अकथनीय कल्याण हुआ है ।

श्री १०५ पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतिजी उच्चकोटि की साध्वी हैं । आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली थी तथा आर्यिका दीक्षा नागौर में आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी महाराज से ली थी ।

माताजी सन् १९७१ में सिवनी में ससंघ पधारी थीं, उन्होंने केश लोच भी किये थे । संघ में अत्यन्त तेजस्वी विदुषीरत्न माता श्री सुपार्श्वमतिजी का उपदेश सुनकर हजारों जैन–

अजैन बहुत प्रभावित हुए । श्री सुपार्श्वमतिजी को सदा पवित्र मार्गदर्शन इन्दुमति माताजी के द्वारा प्राप्त हुआ करता है ।

मैंने जबलपुर में आ० १०५ श्री सुपार्श्वमति माताजी का "आत्म तत्त्व" पर अत्यन्त प्रभावशाली सार्वजनिक भाषण सुना था । हजारों लोग मंत्र-मुग्ध हो गये थे । ऐसा लगता था कि जिनशासन की देवी ही बोलती हो । उनकी आगम की श्रद्धा बड़ी मजबूत है । शंका समाधान के समय उनकी प्रतिभा तथा गहन अध्ययन का पता चलता है ।

इन्दुमती माताजी बड़ी अनुभवी, ज्ञानवान साध्वी हैं । वे सुपार्श्वमति माताजी को जननी सदृश मार्ग दर्शन करती रहती हैं । इनके संघ के द्वारा सर्वत्र जैनधर्म की सुगन्ध फैलती है। बंगाल, आसाम प्रान्त में सैंकड़ों वर्षों से कभी भी दिगम्बर जैन मुनि या साधु-साध्वी का विहार नहीं हुआ ।

कलकत्ता में परमपूज्य गुरुदेव १०८ आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज ने एक बार चातुर्मास किया था तत्पश्चात् माता १०५ श्री ज्ञानमतीजी ने वर्षायोग किया था । इनके अनन्तर उस प्रान्त में, कलकत्ता महानगरी में आर्यिका १०५ श्री इन्दुमति माताजी ने ससंघ विहार तथा चातुर्मास करके अद्भुत उपकार तथा प्रभावना की है ।

पूज्य माताजी ने कलकत्ता चातुर्मास के बाद धुलियान में (मुर्शिदाबाद) चातुर्मास किया । बाद में किशनगंज (विहार) में चातुर्मास करके धर्म का प्रकाश सम्पूर्ण आसाम में फैलाती हुई आपने गौहाटी नगरी में प्रवेश किया तथा भव्य जीवों को सत्पथ बताकर आत्मकल्याण में लगाया ।

भगवान से हमारी यही प्रार्थना है कि इस महान् संघ द्वारा धर्म की प्रभावना सदा होती रहे । माता इन्दुमति जी वृद्ध हो गई हैं तो भी आपकी आत्मशक्ति अभूतपूर्व है । वे दीर्घजीवी हों ऐसी जिनेन्द्र देव से हमारी प्रार्थना है । माताजी के चरणों में हमारी प्रणामाञ्जलि है ।

शान्तिमूर्ति माताजी

पं० छोटेलाल बरैया धर्मालङ्कार, साहित्य भवन, नयापुरा, उज्जैन

माननीय ब्रह्मचारी श्री सूरजमलजी सा० तथा श्रीमान् सेठ लखमीचन्दजी सा० छावड़ा भूतपूर्व अध्यक्ष, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की वार-वार प्रेरणा के कारण मुझे विजयनगर (आसाम) की दूसरी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं २७ दिन तक विजयनगर में रहा। यहाँ परम पूज्य प्रातः स्मरणीय १०५ श्री इन्दुमती माताजी अपने संघ सहित विराजमान थीं। संघ में परम विदुषी, सिद्धान्तवागीश पूज्य माताजी श्री सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी तथा सुप्रभामतीजी व अनेक ब्रह्मचारिणी वाइयों का समुदाय था। निरन्तर तत्त्वचर्चा आदि का समागम रहता था।

एक दिन प्रसंगवश परम पूज्य इन्दुमती माताजी के चरण सान्निध्य में मध्याह्न में जा पहुँचा। अनेक धार्मिक और सैद्धान्तिक चर्चाएँ हुई तो वे कहने लगीं कि "पण्डितजी! सम्पूर्ण चर्चाओं का सार यह है कि त्याग और तपस्या के विना जीवन सुखकर नहीं वन सकता है। इनका अवलम्बन लिये विना कोरी चर्चाएँ सार्थक नहीं हैं।" उनके ये वाक्य आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। उन्होंने स्वयं के विषय में भी अनेक वातें वताईं जिन्हें भुलाना कठिन है। उन्होंने कहा—"चारित्रवल से बढ़कर और कोई वल है नहीं। उसकी प्राप्ति तभी हो सकती है जब हम सत्य में निष्ठा रखें। त्याग का अस्त्र वनावें तथा जीवन को सादा रंग से रँगते रहें। त्यागधर्म मनुष्य का भूषण है। इसी से सहनशीलता विकसित होगी जो आत्मोन्नति के लिए आवश्यक है।"

उपर्युक्त वाक्य वास्तव में मनुष्य जीवन को स्वर्णिम बनाने में सहायक हैं । जिस मनुष्य में चारित्रबल नहीं है, वह वास्तव में, मनुष्य ही नहीं है । चरित्रबल का विकास जीवन को सहज और सादा बनाए रखने से ही हो सकेगा ।

माताजी सदैव साधना में निरत दिखाई देती हैं । अहं भाव उनको छू तक नहीं गया है । उनके मधुर वचनों का श्रवण करने से शान्ति का लाभ होता है । वे अपने पदस्थ के योग्य सम्पूर्ण क्रियाओं में सावधानी से रहती हैं । ये सब लक्षण एक तपस्विनी के हैं और इसीलिए मैं इन्हें एक तपस्विनी कहता हूँ । तब वे कहने लगती हैं कि पण्डितजी ! मुझमें तपस्विनी बनने की कहाँ शक्ति है ? मैं तो गुरुदेव के द्वारा दिए गए संयम की रखवाली करती रहती हूँ । यही मेरा जीवन है ।

माताजी साक्षात् शान्ति की मूर्ति हैं । ऐसा मुझे उनके प्रत्यक्ष दर्शन से कई बार अनुभव हुआ है । मैं त्याग, तपस्या व शान्ति की इस प्रतिमूर्ति को शत-शत नमोस्तु निवेदन करता हूँ ।

आज पूर्वाञ्चल के ही नहीं अपितु समस्त भारत के दिगम्बर जैन समाज और विशेषरूप से महिला समाज में जो धार्मिक चेतना दृष्टिगत हो रही है, उसका बहुत कुछ श्रेय आर्यिका इन्दुमतीजी को व आपके संघ को है । मैं पूज्य माताजी के पावन चरणों में अपनी विनयाञ्जलि समर्पित करते हुए यही हार्दिक भावना भाता हूँ कि पूज्य माताजी शतायु होकर समाज और धर्म की वल्लरी की अभिवृद्धि करती रहें ।

गोलाघाट में साध्वी संघ

श्री लादूलाल वाकलीवाल, गोलाघाट–आसाम

जीवन में कुछ प्रसंग ऐसे घटित होते हैं जिनकी याद नित नवीन रहती है । अतीत के वे प्रसंग सदैव स्मृति पटल पर ताजा रंगों से अंकित चित्र की भाँति झिलमिलाते रहते हैं । ऐसा ही एक अतिशय सुखद प्रसंग मेरे जीवन में तब उपस्थित हुआ जब पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी अपने संघ सहित, आसाम प्रान्त से विहार कर डीमापुर जाते हुए मेरे तेल डिपो पर विश्राम हेतु ठहरीं, वहाँ से चल कर वोकाखाट, नुमानीगढ़ डिपो को भी पवित्र किया । मेरे परिजनों को और मुझे उस अवसर पर जो आनन्दानुभूति हुई, उसकी अभिव्यक्ति हेतु मेरे पास शब्द नहीं हैं । संयोग से उन्हीं दिनों धर्मचक्र का भी आगमन हुआ था । अतः सबके हृदय में अपार उत्साह एवं उल्लास था ।

गोलाघाट में प्रवेश करते समय जैनाजैन जनता ने महावीर नगर स्थित पण्डाल में साध्वीसंघ का भावभीना स्वागत किया । एस० डी० ओ० मिश्राजी ने संघ की वन्दना करते हुए उनके पदार्पण को जनता का अहोभाग्य माना । आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी ने श्रोता समुदाय की स्थिति को देखकर अहिंसा, सत्य और एकता पर समयोचित प्रवचन किया जिसे विशाल जनसमूह ने धैर्यपूर्वक सुना ।

एक दिन पूज्य आ० इन्दुमतीजी का केशलोच था; केशलोच की इस क्रिया को देखने हेतु अपार भीड़ उमड़ी थी, पण्डाल छोटा पड़ रहा था । जिस किसी ने भी माताजी को निर्भीकता पूर्वक अपने हाथों से अपने केश उखाड़ते देखा, वह हक्का-बक्का रह गया, जनता आश्चर्य विमूढ़ थी । साध्वियों के तप, त्याग और देह से निर्ममता आदि गुणों की चर्चा जन-जन की जिह्वा पर थी । सबके यही भाव थे कि 'साधु हों तो ऐसे ।' इस अवसर पर पूज्य सुपार्श्वमतीजी का केशलोच व त्याग विषय पर प्रवचन हुआ । त्याग की महत्ता श्रवण कर अनेक स्त्री-पुरुषों ने व्रत-नियम भी लिये ।

साध्वी संघ की प्रेरणा से मैंने भी आपके समक्ष गृह-चैत्यालय का शिलान्यास करवाया, अनन्तर निर्माण कार्य पूरा कर ब्र० सूरजमलजी जैन द्वारा प्रतिष्ठा करवाई । माताजी की प्रेरणा के फलस्वरूप आज हम लोगों को भगवान के अभिषेक, पूजन, आरती आदि कार्यों का पुण्य लाभ मिल रहा है, बच्चों में धार्मिक संस्कार जाग्रत हो रहे हैं ।

आपके गौहाटी चातुर्मास में विजयनगर बिम्बप्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर ग्वाल-पाड़ा के पास, 'सूर्य पहाड़' पर बिखरी दिगम्बर जैन मूर्तियां बहुचर्चित थीं । स्वयं आर्यिका सुपार्श्व-मती माताजी ने वहां जाकर उनका अवलोकन कर कहा था कि प्राचीन काल में यह क्षेत्र जैनों का स्थान होना चाहिए, इसकी खोज करना आवश्यक है । 'सूर्य पहाड़' सम्बन्धी खोज का कार्य अब अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की पूर्वाञ्चल शाखा ने अपने हाथ में लिया है; विश्वास है कि आसाम में यह पवित्र क्षेत्र प्रगति करेगा ।

मेरी यही भावना है कि पूज्य इन्दुमती माताजी दीर्घायु हों और इसी तरह निरन्तर स्व-पर कल्याण में रत रहें ।

❖

आर्यिका संघ का गौहाटी प्रवेश

डा० लालबहादुर शास्त्री, दिल्ली

वि० सं० २०३२ आसाढ़ शुक्ला ३ शुक्रवार ता० ११ जुलाई १९७५ को गौहाटी (आसाम) में आर्यिका संघ के प्रवेश का 'निमन्त्रण-पत्र' अचानक प्राप्त हुआ। समय थोड़ा होने से कई तरह की भावनाएँ उठती रही, विचार आया कि साधुओं के दर्शन की तरह आर्यिकाओं के दर्शन भी विशिष्ट पुण्य और निःश्रेयस के कारण होते हैं, अचानक ही यह पुण्यावसर प्राप्त हुआ है इसका उपयोग कर लेना ही श्रेयस्कर है। फिर कल क्या होगा इसका क्या भरोसा है? धर्म के प्रभाव से सब ठीक ही होगा।

गौहाटी में जाकर देखा कि जैन समाज का बच्चा-बच्चा बड़ी उत्सुकता से आर्यिका संघ के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है, आपातकालीन स्थिति के कारण जुलूस, सभा आदि पर सर्वत्र प्रतिबन्ध थे। यहाँ तक कि पाँच व्यक्ति भी एक जगह खड़े होकर बात नहीं कर सकते थे। पर इसे धर्म का प्रसाद कहिए कि प्रतिबन्ध के बावजूद भी जैन समाज को आर्यिका माताओं के स्वागत और सम्मान समारोह में जुलूस निकालने की आज्ञा मिल गई।

अपार जन समुदाय माताजी के संघ के स्वागत के लिए खड़ा था। बैण्डबाजों एवं जय-जयकारों से सर्वत्र कर्ण कुहर मुखरित, गुंजायमान हो उठे। माताओं के पीछे भक्त स्त्री, पुरुषों की अपार भीड़ थी, अनेक ध्वज और वन्दनवारों से मार्ग सुसज्जित किये गये थे। जैन-अजैन प्रायः सभी इस जुलूस में शामिल थे। जुलूस एक सुसज्जित नव निर्मित जैन भवन में पहुँचा जहाँ पर नागरिकों के स्वागत समारोह में वक्ताओं ने कहा कि—भारत के इस सुदूर प्रान्त आसाम में इस युग में कभी दि० जैन साधु या आर्यिकाओं का विहार नहीं हुआ। यह पहला अवसर है जब दि० जैन परम्परानुसार यहाँ साध्वियों का पदार्पण हुआ है जिससे अनेक प्राणियों का आत्मकल्याण होगा। स्वागत समारोह में हमें भी बोलने का अवसर प्राप्त हुआ एवं माताजी के दर्शन का लाभ मिला।

स्व० रायसाहब श्री चाँदमलजी पाण्ड्या एवं गुरुभक्तों की प्रेरणा न होती और श्री मिश्रीलालजी बाकलीवाल के निरन्तर प्रयत्न न होते तो आसाम की जनता को माताजी के दर्शनों का लाभ न होता, दोनों महानुभावों ने तन, मन, धन लगा कर एक चिर स्थायी यश एवं पुण्य संचय किया। मिश्रीलालजी ने तो व्यापार आदि का त्याग कर कई महिनों तक संघ के साथ सपत्नीक रहकर पुण्योपार्जन किया।

प्रशंसनीय साध्वी संघ

श्री इन्द्रचन्द पाटनी, सुजानगढ निवासी, मैनागुड़ी

पूज्य १०५ आर्यिका माताजी श्री इन्दुमतीजी का किशनगंज (पूर्णिया) का ससंघ चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद पूर्वोत्तर भारत की तरफ विहार हुआ था । उस समय मुझे सिलीगुड़ी से माथाभागा तक साथ रहने का सुअवसर मिला था । सिलोगुड़ी से मैनागुड़ी पहुँच कर २ दिन का अवसर यहाँ दिया था जिसमें दर्शनार्थी लोग जलपाइगुड़ी, वीरपाड़ा, माथाभागा, चगड़ावादा आदि जगहों से बराबर आते थे । सुबह एवं दोपहर में प्रवचन पू० १०५ माताजी श्री सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी एवं सुप्रभामतीजी का होता था जिसमें जैन-अजैन एवं बंगाली बहुसंख्यक श्रोतागण आते थे । इनकी वाणी में जो माधुर्य है उसकी प्रशंसा सब समाज ने की है । अजैन माताएँ तो बहुत ही प्रभावित हुई थीं । यहाँ पर विक्रम संवत् २०३१ में २६–१२–७४ को पदार्पण हुआ था । वापस विहार के समय पू० इन्दुमतीजी माताजी ने मुझे कहा कि तुम्हारे यहाँ चैत्यालय नहीं है सो अच्छी बात नहीं । जिनेन्द्र दर्शन के बिना रहना उचित नहीं । सो उन्हीं के आशीर्वाद से, जब पूर्वोत्तर प्रान्त से लौटते समय यहाँ फिर पदार्पण हुआ तब विक्रम संवत् २०३५ में आषाढ़ वदी २ के दिन यहाँ मैनागुड़ी में चैत्यालय की स्थापना हुई । उस समय यहाँ पर कानकी, किशनगंज, फारबिसगंज, दीनहट्टा, माथाभागा से बहुत धर्मप्रेमी बन्धुबान्धव पधारे हुए थे । पू० माताजी के आशीर्वाद के ही कारण आज हम लोगों को यहाँ प्रतिदिन पूजन, स्वाध्याय आदि का सुअवसर मिला है । परम पूज्य आर्यिका संघ में संघस्थ सभी आर्यिका माताजी को शत-शत वन्दना ।

जो प्रभावना व जैन धर्म की जागृति इनके विहार से इस पूर्वोत्तर प्रान्त में हुई है, वह वर्णनातीत है । अनेक अजैन भाइयों ने भी व्रत नियम ग्रहण किये हैं । अजैन भाई जब कभी मिलते हैं तो पू० माताजी के बारे में, उनके स्वास्थ्य एवं तपस्या के बारे में बराबर जिज्ञासा करते रहते हैं । एक बार जो आपके सम्पर्क में आ गया वह जन्म भर आपको भुला नहीं सकता । जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना है कि पू० माताजी हम लोगों के बीच शताधिक वर्ष मौजूद रहें । अपने तप ध्यान में लीन रहते हम संसारी जनों का उपकार होता रहे ।

पू० सुपार्श्वमती माताजी का प्यार व आशीर्वाद ऐसा है कि उसको जीवन में भुलाया नहीं जा सकता । उनकी स्मरण शक्ति की कथा लिखी जाय तो ग्रन्थ के ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं ।

पू० विद्यामती माताजी की भाषण शैली बहुत सुन्दर है । छोटी-छोटी कथाओं से समझाने की शक्ति अद्भुत है ।

पू० सुप्रभामती माताजी की वाणी के माधुर्य की तुलना के लिए कोई पदार्थ नजर नहीं आता । आप जिनवाणी के जीर्णोद्धार में सतत लगी रहती हैं ।

काव्याञ्जलि

वन्देऽहम् इन्दुमातरम्

(आर्यिका सुपार्श्वमती)

मरुवाटसुदेशेऽस्मिन्, डेहग्रामः सुशोभनः ।
तत्र चन्दनमल्लस्य, भार्या नाम्ना जडावती ॥१॥

कन्यारत्नं तयोर्जातं, मोहिनी नाम शोभनम् ।
पितरौ तां प्रपश्यन्तौ, नितरां प्रीतिमापतुः ॥२॥

जिनधर्मसमासक्ता, धर्माचरणतत्परा ।
आरूढा शास्त्रपोतं सा, तरितुं भवसागरम् ॥३॥

चन्द्रसागरमाश्रित्य, कर्णधारमिवोत्तमम् ।
निराशं विषयातीतं, ग्रन्थिहीनं महागुरुम् ॥४॥

विक्रमे द्विसहस्राब्दे, दशम्यामाश्विने सिते ।
ग्रामे कसावखेड़ेऽभूत्, पूता क्षुल्लकदीक्षया ॥५॥

विक्रमाब्दे तया लब्धा, द्विसहस्रे षडुत्तरे ।
आश्विनशुक्लरुद्राङ्के, शुभा दीक्षा जिनेश्वरी ॥६॥

वीरसागरमासाद्य, नागौरे ग्रामसुन्दरे ।
नाशाय भवदुःखानां, तपश्चरितुमुद्यता ॥७॥

क्षमासारां परार्थज्ञां, नारीणां च प्रबोधिनीम् ।
तपः पूतां महाप्राज्ञां, वन्देऽहमिन्दुमातरम् ॥८॥

विहृत्यानेकदेशेषु, निखिलान् जनपादपान् ।
सिञ्चन्तीं ज्ञाननीरेण, वन्देऽहमिन्दुमातरम् ॥९॥

इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन

विश्वमोहिनी नाम मोहनी, जिसका अन्तःकरण पवित्र,
आज लेखनी लिख दे उसका परम प्रभावक पुण्यचरित्र।
इस परिवर्तनशील जगत में कौन बन्धु-बान्धव, अरि-मित्र,
इसी भावना का है जिसके अन्तस्तल में चित्र-विचित्र।
डेह ग्राम में जनम लिया है पिता पाटनी नाम था चन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥१॥

जब बारह की उम्र हुई तो धूम–धाम से किया विवाह,
स्वर्गवास हो गया पती का, छह महिने के भीतर आह।
सेठी चम्पालाल पती ने स्वर्गलोक की पकड़ी राह,
अहो बालविधवा की सारी मिटीं उमङ्गें, इच्छा, चाह।
आयु कर्म आधीन चराचर रोक सके ना करुणाक्रन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥२॥

चारों भाई दुःखित हो गए, रिद्धकरण गिरधारीलाल,
और केसरीमल पूनमचन्द, रोकर हुए हाल-बेहाल।
किन्तु मोहनीवाई ने तो सोचा झूठा जग का जाल,
जिसमें फँसकर दुःखी हो रहे क्या अमीर और क्या कंगाल।
बाल युवा और वृद्ध सभी का होता बन्द श्वास का स्पंदन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥३॥

जड़ावदेवी माताजी ने घर पर ही दिलवाई शिक्षा,
शिक्षा पा कर भाव हो गया मैं लूंगी जैनेश्वरी-दीक्षा।
पूरा यौवन खड़ा सामने लेने आया कठिन परीक्षा,
शूरवीर जब रण में उतरे नहीं माँगते जीवन भिक्षा।

मन में द्वादश अनुप्रेक्षा थी, देव स्वर्ग से बोले धन-धन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥४॥

जब होता है योग तभी संयोग सामने आ जाता है,
बड़ा कठिन वैराग्यभाव भी भावुक मन को भा जाता है।
परम तपस्वी चन्द्रसिन्धु महाराज-संघ जब 'डेह' आता है,
इस वैरागिन की नस-नस में नशा धर्म का छा जाता है।
एक सहस नौ सौ बराणूँ (१९९२) विक्रम संवत् को कर वन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥५॥

जहाँ जहाँ भी संघ गया था वहाँ वहाँ पर पहुँची आप,
मन में थी वैराग्य भावना सप्तम प्रतिमा की थी छाप।
सात वर्ष तक फिरते-फिरते, करते-करते प्रभु का जाप,
दीक्षा लेकर बनी क्षुल्लिका, छोड़ जगत का दुःख सन्ताप।
दो हजार में कसावखेड़ा गुरू चन्द्रसागर दुःखभञ्जन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥६॥

परम पूज्य आचार्य वीर सागरजी का जब चातुर्मास,
हुआ नगर नागौर आप भी संघ साथ थी लेकर आस।
संवत् दो हजार छह ले ली उच्च आर्यिका दीक्षा खास,
नाम 'इन्दुमति' गुरु ने रक्खा केश उखाड़े जैसे घास,
धन्य-धन्य नागौर नगर का बोल उठा था सारा जन-जन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥७॥

सारे भारत भर में जिनकी पद यात्रा की अङ्कित गाथा,
जिनके दिव्य तेज के आगे सभी झुकाते अपना माथा।
किया जैनियों को उद्‌बोधन, अजैन भी जिनके गुण गाता,
कई तरह के नियम और व्रत लेकर भी जो आज निभाता।
जिनके उपकारों से उपकृत भारत का है सारा कण-कण,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥८॥

आप गईं बङ्गाल और आसाम जहां हैं मांसाहारी,
कितने ही ऐसे लोगों को बना दिया फिर शाकाहारी।

बनवाये उपदेश प्रभावित लोगों ने जिनमन्दिर भारी,
जिनचैत्यालय अरु जिनप्रतिमा हुई प्रतिष्ठित अति सुखकारी।
जहाँ जहाँ भी चरण पड़े हैं वहीं हो गया उपवन नन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥९॥

विद्यामती, सुपार्श्वमतीजी और सुप्रभामती 'अनूप',
चारों का है संघ अनोखा परम शान्तिमय सौम्य स्वरूप।
मिथ्यातम के अन्धकार को दूर कर रही जैसे धूप,
जिनका है चारित्र उच्चतम नेमिप्रिया राजुल अनुरूप।
ऐसी परम साध्वी को है 'डूंगरेश' का शत-शत वन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥१०॥

❖

माताजी को प्रणाम है !

(रचयिता : श्री हजारीलाल जैन 'काका' पो० सकरार, झाँसी)

त्याग तपस्या सदुपदेश से जिनका जग में नाम है,
पूज्य आर्यिका इन्दुमति माताजी को प्रणाम है।

कुछ ऐसी ही निधियाँ तो, इस जैन धर्म की शान हैं,
स्वयं साधना करके जो, पर का करती कल्याण हैं,
भूलों को सद्मार्ग दिखाना ही अब जिनका काम है,
पूज्य आर्यिका इन्दुमति माताजी को प्रणाम है।

इस चारित्र-पतन के युग में जिनने सद्उपदेश दिया,
दीक्षित कर भाई बहिनों को आतम हित में लगा दिया,
कई आर्यिका मुनी बनाकर किया धर्म का काम है,
पूज्य आर्यिका इन्दुमति माताजी को मेरा प्रणाम है।

अड़तीस वर्षों से वर्षा की जिनने आत्मोपदेश की,
सतत साधनों से रक्षा की सदा तपस्वी वेष की,
'काका' वन्दनीय यह गुरुजन सदा सुबह अरु शाम है,
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को सौ सौ बार प्रणाम है।

सौ सौ बार नमन है !

(रचयिता : श्री शर्मनलाल 'सरस' सकरार, झाँसी, यू. पी.)

जिनके दर्शन से जन-जन का, होता निर्मल मन है,
ऐसी इन्दुमती माता को, सौ सौ बार नमन है।

(१)

जिसको अब तक डिगा न पाई, वर्षा सर्दी गर्मी,
पिता चनणमल जो-जड़ाव देवी के घर में जन्मी,
जिसका नाम मोहनीबाई, रखके जग हर्षाया,
मगर मोहनीबाई को यह मोह-मोह न पाया,
सम्वत् उन्नीस सौ बासठ का यह प्रिय परम रतन है,
इन्दुमति माता को युग का, सौ सौ बार नमन है।

(२)

आगे की क्या कहें ? वेदना का यह वेद पुराना ?
हुआ अल्प आयु में परिणय-पर दुर्भाग्य न माना,
हो न सके छह माह पूर्ण, विध ने यों आफत डारी,
होकर शादी-सुदा रह गई, जो कुँवारी की कुँवारी,
पति सुरपुर को गये अचानक, मुरझा गया चमन है,
इन्दुमति माता को युग का सौ सौ बार नमन है।

(३)

अल्प आयु में परिणय का, परिणाम बना नादानी,
कैसे काटेगी यह जीवन, थी सबको हैरानी ?
उन्नीस सौ बानवे सम्वत् में जय बोले तारे,
डेह नगर में मुनि चन्द्रसागर महाराज पधारे,
तब से अब तक क्रमशः व्रत ले, बना आर्यिका मन है,
इन्दुमति माता को युग का सौ सौ बार नमन है।

(४)

डेह्-गेह तज चली तभी से, डग-डग पर जग हर्षा,
बाग लगाती हैं विराग के, कर संयम की वर्षा,
क्षण-क्षण जिसको नभ नमता है, कण कण गाता कीरत,
जिसके चरण बनाते जाते, इस धरती को तीरथ,
पाप सिहर जाता जिसको लख, करता पुण्य नमन है,
इन्दुमति माता को युग का सौ सौ बार नमन है।

(५)

आज उन्हीं के मूल्यांकन का यह कैसा दर्पण है ?
चन्द शब्द कोरे कागज पर, करते हम अर्पण हैं,
जिस माता ने लाखों का मन संयम से जोड़ा है,
त्याग-तपस्या का जिसने अध्याय नया जोड़ा है,
जितना भी जस गायें थोड़ा, कहे 'सरस' का मन है,
इन्दुमति माता को युग का सौ-सौ बार नमन है।

पूज्य आर्यिका इंदुमति को शत-शत बार प्रणाम !

(रचयिता : श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि' रामपुर)

भरा तुम्हारे उपदेशों में, आत्मशांति का कोष,
सन्तोषी वन प्राणी मात्र, बरसाया सन्तोष ।
मुक्त मार्ग पर बढ़ता जीवन, परम शान्त निर्दोष,
आश्रयहीन भाग्य पर तुमने, किया न किंचित् रोष ।।

लगने दिया न जीवन को, निष्क्रियता भरा विराम ।
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को शत शत बार प्रणाम ।

सञ्चालिका संघ की बनकर, वहन किया गुरुभार,
आत्मार्थी के लिये खुल गये, आत्मोन्नति के द्वार ।
धर्मशून्य प्रांगण में करके, मंगलमयी विहार,
अकथनीय हुआ आपके, द्वारा जो उपकार ।।

बना लिये सम्पूर्ण प्राण, निष्कामी सेवाग्राम ।
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को शत शत बार प्रणाम ।

ज्ञानार्जन से प्राप्त कर लिया, आत्म विकास महान् ।
रही आप उपसर्गों में भी, निश्चल मेरु समान ।
होती अथिर मनस्थितियों की, संकट में पहिचान,
त्याग, तपस्या, द्वारा जीवन, बनता ज्योतिर्मान ।।

आत्मा में गतिशील रहे, आध्यात्मिक प्राणायाम ।
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को, शत शत बार प्रणाम ।

जिनके मन में रोष नहीं, आकांक्षाओं की चाह,
लक्ष्य प्राप्ति के लिये हो रहा, जीवन का निर्वाह ।
आत्म साधना की निधियों से, जीवन बना अथाह,
तुम अपनी जीवन नैया की, आप बनी मल्लाह ।।

पूर्ण परिग्रहरहित, तपोनिधि, द्वन्द्वरहित निष्काम ।
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को, शत शत बार प्रणाम ।।

शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन !

(रचयिता : श्री लाड़लीप्रसाद जैन पापड़ीवाल, सवाईमाधोपुर)

हे माँ तुम्हारे चरणों में—
शत-शत वन्दन शत-शत वन्दन ।।

श्री चन्द्रसिन्धु गुरुवर से तुम
जब धर्मामृत का पान किया ।
संसार असार लखा तब ही
सारे वैभव का त्याग किया ।।

क्षुल्लिका की दीक्षा कर ग्रहण
संयम से नाता जोड़ लिया ।
संयम साधन करते—करते
फिर वीर सिन्धु का दर्श किया ।।

जिनवाणी श्रवण करी उनसे,
शेष परिग्रह भी छोड़ दिया ।
आर्यिका की दीक्षा लेकर के,
मुक्ति का मारग जोड़ लिया ।।

निज पर हित में लीन सदा,
रत्नत्रय का करती अर्चन ।
हे माँ तुम्हारे चरणों में
शत-शत वन्दन शत-शत वन्दन ।।

इन्दु शुभ नाम है, धर्मध्यान में लीन ।
लाड़ निर्मला का नमन, देवो बुद्धि प्रवीन ।।

माता इन्दुमती को मेरा सौ-सौ बार प्रणाम !

(रचयिता : पण्डित कुञ्जीलालजी शास्त्री, सम्पादक-जैन गजट, गिरिडीह)

(१)

बाल वयस् में ही पा लीने वे उत्तम संस्कार,
नारी जीवन धन्य बन गया, कर संयम स्वीकार,
अति पुनीत नवनीत सुकोमल ऐसा हृदय विशाल,
जिसको पा आधार, भक्त हो जाते सहज निहाल।
शान्तमूर्ति अवलोकन करते, होते शुचि परिणाम,
माता इन्दुमती को मेरा सौ सौ बार प्रणाम ॥

(२)

कितनी पावन छाँह तुम्हारी, शीतल होता मन,
पुलकित रोम-रोम हो जाता, निरखत मुदित वदन।
हो साकार पूत रत्नत्रय, वात्सल्य की मूर्ति,
पावन दर्शन से मिट जाती नयनों की चिरभूख।
उनका है सौभाग्य, पा गये चरणों में विश्राम,
माता इन्दुमती को मेरा सौ सौ बार प्रणाम ॥

(३)

जग का शरण छिन गया जिनका, उनको शरण दिया,
भोगों के कर्दम से तुमने, बाहर खींच लिया।
संयम के सुरभित उपवन में उनको बिठा दिया,
अक्षय मधु निज आत्मसुधा का तुमने पिला दिया।
बना दिया माँ तुमने उनको पावन सुयश निधान,
माता इन्दुमति को मेरा सौ सौ बार प्रणाम।

(४)

माँ सुपार्श्वमति तुमको पाकर चमक गई हीरा सम,
देखो कैसा योग मिल गया, मणि-काञ्चन यह अनुपम।
आज झर रहा जिन-वचनामृत जिससे झर-झर-झर-झर,
पीकर भव्य कर रहे शीतल, अपना सन्तापित उर।

चाह-दाह मिट गई, मिल गई सुखकर तृप्ति महान,
माता इन्दुमती को मेरा सौ सौ बार प्रणाम ।।

(५)

आज तुम्हारा यश लिखकर के अक्षर अमर हुए,
धुलकर कलुषभाव अन्तर के निर्मल सरल हुए ।
आज तुम्हारा अभिवादन कर, अभिनन्दित मन है,
माँ तेरी पद-रज मेरे माथे का चन्दन है ।
पाने को आशीष झुके हैं अगणित भाल ललाम,
माता इन्दुमती को मेरा सौ सौ बार प्रणाम ।।

हे इन्दुमती !

(रचयिता : कुमारी कल्पना जैन, बी० ए०, खुरई, सागर)

हे इन्दुमती ! तुम राजमती बन जाओ ।
निज व्रत संयम की विजय ध्वजा फहराओ ! !

तुम बनो चन्दना आर्य गणी आदर्शी !
तुम बनो स्वानुभव दशा मोक्ष स्पर्शी ! !

नर ही क्या ? सुर भी करें भव्य अभिनन्दन !
तुम बनो आर्ये ! जिनवाणी का चन्दन ! !

स्वीकारो मेरी यह प्रशस्ति हे माता !
निज से जुड़, पर से टूट जाय जग नाता ! !
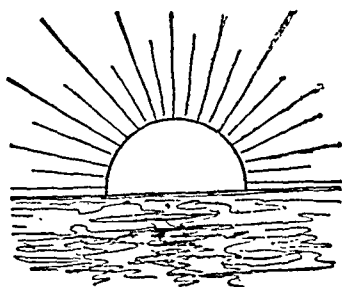
मां इन्दु शत-शत अभिनन्दन !

(रचयिता : संघस्था कुमारी प्रमिला, एम० ए० शास्त्री, शोध छात्रा)

स्वीकारो मां इन्दु अभिनन्दन !
अभिनन्दन शत शत अभिनन्दन !!

तुम सत्य अहिंसा दया धर्म, तप और त्याग की वृहद् पुंज,
वात्सल्य प्रेम निश्छल ममता, संयम साहस की सुरभि कुंज,
तुम आत्म शक्ति की अमिट स्रोत गंगा सा पावन निर्मल मन,

स्वीकारो मां इन्दु अभिनन्दन ।
अभिनन्दन शत शत अभिनन्दन !!

इन्दु सम शान्त सरल रह कर, सुधा सरल बरसाती तुम,
बांटी समता की शान्ति-सुधा, पी गई विषमता का विष तुम,
हे मात ! तुम्हारी कीर्ति गंध, जग में फैली, ज्यों चन्द्र किरण,

स्वीकारो मां इन्दु अभिनन्दन !
अभिनन्दन शत शत अभिनन्दन !!

तुम चरित्र की उज्ज्वल प्रतिमा, ज्ञानप्राप्ति की दिव्य साधना,
सम्यक्त्व-शील की अमित कोष तुम, और व्रत पालन सजग भावना,
तुम पद कमल में विश्वास अडिग, 'प्रमिला' का अर्पण तन-मन-धन,

स्वीकारो मां इन्दु अभिनन्दन !
अभिनन्दन शत शत अभिनन्दन !!

कोटि नमन है माता !

(रचयिता : सौ० पुत्रीदेवी, जबलपुर)

इन्दु किरण सी चमकें जग में, इन्दुमतीजी माता।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता ।।

चन्दनमलजी तात तुम्हारे, जड़ावबाईजी माता ।
उनके घर-आंगन में खेली, सब जन-मन सुख साता ।।

डेह ग्राम में बजी बधाई, जब तुम जन्मी माता।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता ।।

नाम मोहिनी सब जग मोहे, मूरत सुखद सुहानी।
बारह वर्ष की लख बाबुल ने, ब्याह करन की ठानी ।।

डेहनिवासी चंपालालजी सुन्दर सा वर पाया ।
परिजन, पुरजन, सब हर्षित हो मंगल साज सजाया ।।

छह महीना तुम रही सुहागन, बदले भाग्यविधाता ।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता ।।

संतप्त, शोक में डूबी तुम, गुरु 'चन्द्र' ग्राम में आये।
हर्षित होकर नमस्कार कर, चरणन शीश नवाये ।।

विमुख कषायों से होकर, त्यागव्रत तुम धार लिया।
पंच प्रतिमा धारण करके, व्रती-जीवन स्वीकार किया ।।

साधु जगत में अनुपम सुख है, संग चली तुम माता।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता ।।

क्षणभंगुर इस जग को समझा, संयम से अनुराग भया।
छोड़ उदासी, गृह की फांसी, मन वैराग्य समाय गया ।।

'चन्द्र' गुरु से दीक्षा धारी, बनी आर्यिका माता ।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता ।।

ब्रह्मचारिणी थीं जब माता, साहस की एक कथा बड़ी।
जंगल बीच गुफा के माँहि, ध्यान किया गुरु उसी घड़ी॥

बहुत समय हो गया श्रीगुरु, वापस अभी नहीं आए।
चिंतित संघ हुआ तब ही, मन ही मन में सब घबराये॥
सिंह गर्जना करती माता, तुम जंगल की ओर बढ़ी।
साहस साथी कर में लाठी, पीछे पीछे भीड़ चली॥
मंत्रोच्चारण कर गुरुवर ने, संकेत किया तुम्हें माता।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता॥

नर–नारी गद्गद हो जाते, जो भी दर्शन पाते।
अज्ञान नसे मिथ्या अंधियारी, सम्यक् श्रद्धा लाते॥
मातुश्री के सद्वाक्यों को हृदयंगम कर लेते।
मूक केवली, श्रुत केवली, जैसी उपमा देते॥
संघ तुम्हारे अद्भुत ज्योति, सुपार्श्वमतीजी माता।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता॥

कर विहार तुम नगर-नगर में धर्म की वर्षा करती।
जैन-अजैनों के हृदयों में धर्म के अंकुर भरती॥
बजा दिया जिनधर्म का डंका, जन-जन में चहुं दिश में।
बीस जिनेश्वर मोक्ष पधारे, आय गई मधुवन में॥
कुशल पूर्वक संघ संचालन करती हो तुम माता।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता॥

उन्हीं आर्यिका इंदुमतीजी का अभिनंदन है

(रचयिता : श्री पवन पहाड़िया, डेह)

पाकर जिनकी शुभ्र चाँदनी, शीतल होता मन है।
उन्हीं आर्यिका इन्दुमतीजी का अभिनन्दन है।।

यथा नाम तथा गुण वाली कहावत यहाँ सच पाते।
उपदेशामृत का एक बार जो पान यहाँ कर जाते।
कैसा प्रेम, शितलता कैसी इनके समझाने में,
बड़े-बड़े भी अँगुलियों को दाँतों बीच दबाते।

चरण शरण अनेकों आते जान-जान चन्दन है।
उन्हीं आर्यिका इन्दुमतीजी का अभिनन्दन है।।१।।

इतनी वय में भी चर्या में, कभी प्रमाद न फटका,
असम प्रांत तक के विहार में, रहा न कोई खटका।
इससे पहले जैनधर्म का वहां प्रचार नहीं था,
वह भी भक्त बना चरणों का था अब तक जो भटका।

दुखियों का दुख मेट शांत करती उनका क्रन्दन है।
उन्हीं आर्यिका इन्दुमतीजी का अभिनन्दन है।।२।।

जैनधर्म की जड़ें आपको पाकर विकसी फैलीं,
इनको हरी-भरी रखने में बहु विपदाएँ झेलीं।
तन-मन न्योछावर है इस पर ये नित बढ़ती जाएँ,
ताकी इसकी उजली चादर कभी न होवे मैली।

आत्म-उद्धार, धर्म प्रचारा हरषे देख पवन है।
उन्हीं आर्यिका इन्दुमतीजी का अभिनन्दन है।।३।।

श्री १०५ इन्दुमती माताजी के प्रति

(रचयिता : श्री जयचन्दलाल पांड्या, मेनसर वाला)

मारवाड़ नागौर जिला में "डेह" नगर है भारी ।
है ऐतिहासिक जगह अठैरी शोभा है न्यारी ।।
"चम्पावती" नगरी नाम पुराणो सुणने में आवे ।
कुवा बावड़ी भरचा नीर सूं सवरे मन भावे ।।
वीच शहर के बण्यां दो मन्दिर इक नसियां भारी ।
मूरति पारसनाथ प्रभु री लागे घणी प्यारी ।।
इसी गांव में बंश "पाटनी" "चन्दनमलजी" तात ।
वांके घर में जन्म लियो थे, "जड़ाव" देवी मात ।।
जन्म नाम थारो बाई "मोहनी" जाणे सगला लोग ।
कर्म रेख पर मेख न लागै, होग्यो पति वियोग ।।
घर-गृहस्थी में मन नहिं लाग्यो, छोड़ दियो घर-बार ।
कुटुम्ब कबीला सब स्वारथ रा ओ संसार असार ।।
"चन्द्रसिन्धु" मुनिवर से क्षुल्लिका-दीक्षा लीनी धार ।
गाँव गाँव और नगर नगर में करता रह्या विहार ।।
"वीर सिंधु" आचारज को संघ नागौर नगर में आयो ।
सुदि आसोज दशम के दिन, व्रत अरजका धारचो ।।
"इन्दुमतिजी" नाम आपको गुरुवर ने बतलायो ।
पंच महाव्रत धार आपने, आछो नाम कमायो ।।
गाँव गाँव में कर विहार, थे जैन धरम चमकायो ।
भूल्या भटक्या राही ने थे सांचो मार्ग बतायो ।।
आवागमन नहीं मुनियांरो, वंग विहार के मांही ।
कर विहार इस भूमि पर थे सिंह वृत्ति दिखलाई ।।
कर विहार वंगाल प्रान्त में करचो अनोखो काम ।
चौमासो "धुलियान" नगर कर, करचो अमर थे नाम ।।

फेर बठै से बारसोई और गांव कानकी आया ।
चौमासो "किसनागंज" कर थे सबके मन भाया ।।

सुपार्श्वमति और विद्यामतिजी श्री सुप्रभामति मात ।
संघ संचालिका थे, थांरी अे रेवै हरदम साथ ।।

करे विनती हाथ जोड़ कर "जय" हो माता थारी ।
करदयो बेड़ो पार म्हांरो थे अरज सुणो हो म्हांरी ।।

❖

(रचयिता : श्री शांतिलाल बड़जात्या, अजमेर)

अहो भाग्य इस भरतक्षेत्र का, जन्मी इन्दुमती माता ।
रत्नत्रय की जीवित मूरत, प्रबल प्रभावक विख्याता ।।

स्वकीय वंश को कर पावन, वैधव्य का जिसने लाभ लिया ।
चन्द्रसिन्धु से प्रेरित होकर, संयमपथ को साध लिया ।।

बड़भागिन ने निज जीवन में, निज-पर के उपकार किये।
पढ़ो अंश कुछ उसके भविजन, इसी ग्रन्थ में, मुदित हिये ।।

अजयमेरु पावन माटी भी, इन चरणों से हुई पवित्र ।
'सुपार्श्वमती' 'विद्यामती' आर्या, मूरत ज्ञान और चारित्र ।।

'सुप्रभा' फिर जुड़ीं आपसे, पुण्योदय था हम सबका ।
सकलराष्ट्र में कर विहार, तब ध्वज लहराया जिनवर का ।।

पूर्वाञ्चल में वीर प्रभु के, बाद गये ये गणिनीजी ।
हुई प्रभावना अति ही भारी, बना काल वह स्वर्णिमजी ।।

यह पुनीत अभिनन्दन करने, सकल जैन जन नमते हैं ।
दीर्घायु हो बने यशस्वी, विनय प्रभू से करते हैं ।।

शत-शत अभिनन्दन पद वन्दन !

(रचयिता : श्री मांगीलाल सेठी 'सरोज' सुजानगढ़)

इन्दुमती माताजी का शत-शत अभिनन्दन पद वन्दन !

दुहिता मात 'जड़ावदेवि' की डेहनिवासी पितु 'चन्दन' ।।

ममतामयी 'मोहनी' कन्या, बारह वर्ष वयस दी ब्याह ।

तीव्र पाप के उदय रूप हो, पतिवियोग का दुःख अथाह ।।

मात्र मास छह रही सुहागिन, भोग-राग सब दिये बिसार ।

तात मात भाई परिजन के, दुःख का रहा न कोई पार ।।

जीवन में संयम अपनाया, श्री जिनभक्ति अपार हिये ।

काललब्धि वश आ सुजानगढ़, 'चन्द्रसिन्धु' गुरु दरश किये ।।

शत वन्दन कर गुरु चरणों में, दूजी प्रतिमा के व्रत लेय ।

तव फिर सप्तम प्रतिमा क्रमशः, बनी क्षुल्लिका 'इन्दुमतेय' ।

शरीरान्त जब 'चन्द्रसिन्धु' का हुआ शरण गुरु 'वीर' गहेय ।

तप-जप में निशदिन तत्पर रह, संयम साधन कठिन करेय ।।

अश्विन सित दशमी संवत् द्वय सहस रु छह 'नागौर' मँझार ।

भिन्दन कर्मशत्रुगण गुरु ढिग, वनी आर्यिका शिव सुखकार ।।

नंदिनि 'हरकचन्द' की 'भँवरी', पतिवियोग से व्यथित महान ।

दग्ध हृदय, पति गुम होने से 'शान्ति' सुता 'नेमीचन्द' जान ।।

नव जीवन हित वनीं आर्यिका, प्रेरक इन्दुमती गुणखान ।

पहली दीक्षित 'वीरसिन्धु' से माँ 'सुपार्श्वमति' अति विद्वान ।।

दलन कर्म अरि 'शिवसागर' से 'शान्ति' बनी 'विद्यामति' माय ।

वंदन कर माँ इन्दुमती को 'सुप्रभमति' संघ साथ रहाय ।।

दत्त चित्त रत्नत्रय पाले, संघ विशिष्ट आर्यिका चार ।

नव हितमित उपदेश सु-रवि से, वृष-'सरोज' विकसे हितकार ।।

काव्याञ्जलि

(रचयिता : श्री निर्मल आजाद, प्रधान सम्पादक, विद्यासागर पत्रिका; जबलपुर)

पश्चिमाञ्चल में उदय हुआ
मध्य में हुआ सबेरा;
पूर्वाञ्चल में कीर्ति फैली
देश बना सब चेरा ।

जिनवाणी प्रचार हो घर-घर
यही लक्ष्य था मन में;
तन कोमल भावना दृढ़ थी
श्री इन्दुमती के मन में ।

नारी ! जिसे कहते अबला सब
बनी गुणों की आर्यिका, माता;
स्याद्वाद का बिगुल बजाया
सारा जग जिसके गुण गाता ।

फूल सी कोमल काया से ही
जन-जन का उपकार किया;
भटकों को भी राह दिखाकर
संयम मार्ग प्रशस्त किया ।

इसीलिये हम नमन कर रहे
इन्दुमती हे गुणों की खान;
जिसने जैनधर्म का डंका
बजाया, भारत देश महान ।

अभिनन्दन !

(रचयिता : श्री पवन पहाड़िया, डेह)

आर्यिका इन्दुमतीजी,
कहता जिन्हें समाज ।
उनके अभिनन्दन के लिए,
बना ग्रन्थ यह आज ।।१।।

मधुरभाषिणी धैर्यशालिनी,
संघ संचालिनी आप ।
दिशाबोधिनी हो जन-जन की,
धरम पंथ पर आप ।।२।।

सद् उपदेश सभी भटकों-
को देकर राह दिखाती ।
धर्म ज्योति प्रज्वलित करने,
जलती बनकर बाती ।।३।।

बच्चे बूढ़े हों युवा,
सबकी बनी सहायक ।
जन-जन का उपकार किया,
इसमें है न जरा भी शक ।।४।।

प्यारी इनको एकता,
सकल विश्व हो एक ।
जगती में हो शांति फिर,
बने सभी जन नेक ।।५।।

बस आलस से दुश्मनी,
क्षण भी जाए न व्यर्थ ।
आतमहित तत्पर रहे,
तब जीवन का अर्थ ।।६।।

सादा जीवन संयमी,
त्यागी सा हो भेष ।
धर्मध्यान की अधिकता,
है इनका उपदेश ।।७।।

त्याग तपों में आपके,
जाते दिन औ रात ।
क्षण भी सुमिरण के बिना,
निकल जाय क्या बात ।।८।।

सबसे पहले आप ही,
पहुँची थी आसाम ।
जैन धर्म प्रचार का,
वहाँ यह पहला काम ।।९।।

सकल जगत है जानता,
आज आपका नाम ।
श्रद्धा से तव चरण में,
करते सभी प्रणाम ।।१०।।

"पवन" अभिनन्दन करे,
लेकर सबको साथ ।
चढ़ती बढ़ती ही रहे,
मातेश्वरि दिन रात ।।११।।

हे अम्ब ! तुम्हारा है शत-शत वन्दन !

(रचयिता : पं० फूलचन्द जैन शास्त्री, जोरहाट—आसाम)

हे इन्दु तुम्हारा है, शत-शत वन्दन !
पग तर नत हो हम करते हैं अभिनन्दन !

यौवन वय में तुमने संयम को अपनाया ।
विषय भोग वैभव सुख को तुमने ठुकराया ।।
असिधारा की तेज धार पर, अपना कदम बढ़ाया ।
पुनीत किया मानव-जीवन चन्द्र-सूर्य चकराया ।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण का करती हैं चिन्तन ।
हे इन्दु तुम्हारा है शत-शत वन्दन ।।१।।

असम देश की धरा आज पुलकाती ।
निर्ग्रन्थ भेष लखि अति मन हरषाती ।।
आबाल वृद्ध सब जनमानस पग तर आये ।
श्रद्धा के दो सुमन समर्पित करने लाये ।।

निज-पर हित में तुमने सर्वस्व किया अर्पण ।
हे अम्ब ! तुम्हारा है शत-शत वन्दन ।।२।।

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण दु:ख देते ।
देवों तक भी तो देखो खुद वे रोते ।।
पिता पुत्र भगिनी पत्नी सुत पोते ।
क्या कभी ये सब आतम-सुख देते ।।

आतम-सुख पाने को तुमने किया तत्त्व मन्थन ।
पग तर नत हो हम करते हैं अभिनन्दन ।।३।।

पद-विहार कर जनमानस को सम्यग्बोध कराती ।
सत्य-अहिंसा-भ्रातृ-प्रेम अरु सदाचार सिखलाती ।।
सदियों से असमदेश की जनता थी अति प्यासी ।
इसीलिए तो घूम रही हो अमृतपान कराती ।।

हे अम्ब ! जिओ सदियों तक, हम करते हैं अभिवादन !
हे इन्दु ! तुम्हारा है शत-शत वन्दन ।।४।।

अभिनन्दन

(रचयिता : श्री दुलीचन्द पाटनी, डेह)

माताजी श्री इन्दुमतीजी को अभिनन्दन बारम्बार ।
अल्प वयस मैं ही थे जाण्यो कांई है जीवन को सार ।।

बचपन सूं ही थामैं माता धर्म-कर्म को गाढ़ो नेह ।
चन्द्रसागरजी का उपदेसां कौ बरस्यो (जद) मरुधर में मेह ।।
दुनियां सब मतलब की है अर नाता झूठा हुयो विचार ।
दीक्षा लेकर तप मैं तपग्या, छोड़ दिया सारा घर-बार ।।

म्हारे मनमें विचार हुयो, माताजी क्यूं छोड्यो परिवार ?
ए कांई चावै है जो करड़ो व्रत लियो मन मैं धार ।

माताजी का कथन—

"मोटर ना बंगला चावूं, झुमका न हार चावूं ।
बस तप मैं लीन होकर, आतम रो ज्ञान चावूं ।।
कर्मां नै काट कर मैं शिवपुर मुकाम चावूं ।
जनम-मरण होवे नहीं, सबको कल्याण चावूं ।।

साँची पूंजी धरम की है और सब कुछ बेकार ।
वीर का पथ पर चाल, र करो स्व-पर उपकार ।।"

धन्य ! धन्य ! हो माताजी थे, धन्य है तपस्या थारी ।
मेटो सबकी दुःख की घड़ियां, करमां रो बोझ भारी ।।
वन्दना है आपनै माताजी ! अभिनन्दन करै नर-नारी ।
आगम को दीप जलतो रेवै, जिनभक्ति है गुणकारी ।।

इ० सु० वि० सु० को संघ गांव-गांव मैं करै धर्मप्रचार ।
ज्ञान-गंगा बहती रेवै, 'दुलेश' को करो बेड़ो पार ।।

वैधव्य हो गया धन्य-धन्य, जब धरा आर्यिका का स्वरूप ।

(आर्यिका सुपार्श्वमती)

शशि सम शीतल मां इन्दुमती, है नाम तुम्हारा अतिसुखकर ।
सन्तापित जन पा लेता है शीतलता उर में निज हितकर ॥१॥

गुणगान करूं किस मुखसे मैं तुम गङ्ग-सलिल की धारा हो ।
हिय का हरने सन्ताप सभी, पीयूषोपम सुखकारा हो ॥२॥

तुम हो करुणा की शुभ मूरत, हो मूर्तिमान शुचि रत्नत्रय ।
नवनीत पुनीत हृदय कोमल, मिट जाते जिससे सारे भय ॥३॥

तेरे विहार से हे जननी, यह पूत हो गई वसुन्धरा ।
जिसने तेरा दर्शन पाया, उसका कल्मष सब गया हरा ॥४॥

पा 'चन्द्रसिन्धु' गुरु की आशिष, तुम निर्मल चन्द्र समान हुई ।
धोकर सारे कालुष उर के, तुम रत्नत्रय स्नात हुई ॥५॥

है धन्य आपका निर्मल तप, अति भव्य तुम्हारा वर्तन है ।
युग-युग तक याद करेंगे भवि, ऐसा पवित्रतम जीवन है ॥६॥

तेरी करुणा का पा कटाक्ष, मेरी पर्याय हुई पावन ।
वन गई पथिक शिवपथ की मैं, सव काट दिए ममता वन्धन ॥७॥

जो जीवन का अभिशाप रहा, वन गया वही वरदान रूप ।
वैधव्य हो गया धन्य-धन्य जव धरा आर्यिका का स्वरूप ॥८॥

दुर्भाग्य, तुम्हारी करुणा से, सौभाग्य वन गया मां मेरा ।
इसलिये तुम्हारे चरणों में, है वार-वार वन्दन मेरा ॥९॥

मेरे माथे पर मां तेरा शुभ वरद हस्त चिरकाल रहे ।
तेरे आशिष की पूत सुधा, वर्षा करती शत साल रहे ॥१०॥

✡

शीलधर्म समलंकृत नारी जीवन पूजा जाए ।

(रचयिता : श्री वीरेन्द्रप्रसादजी जैन, सम्पादक : 'अहिंसा–वाणी' अलीगंज (एटा) उ० प्र०

सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी ।
स्नेह-सुधा की जीवन-धारा-उद्गम-स्रोत सु-नारी ।।

शोभा का शृंगार, प्रकृति ने जिसका रूप रचाया ।
तथा नीति ने शीलाभूषण जिसको है पहनाया ।।
धर्म-काम पुरुषार्थ प्रसाधक, मानव-शक्ति प्रदात्री ।
एकाकी नर के जीवन की बन जाती सह-यात्री ।।

सत्श्रद्धा कल्याण मानवी-सुन्दरता-फुलवारी ।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी ।।

रूप-राशि, मानवी-प्रेरणा, ललित कल्पना-कविता ।
नाना रूप दिखाते जिसके, पत्नि-भग्नि[1]-मां-ममता ।।
सूर्योदयकर प्राची-दिशि-सी, महाजनों की जननी ।
रत्न-खानि रत्नारी रत्ना, महिमा की क्या कथनी ?

गरिमा की यह गौरव गाथा, महतादर्श-विहारी ।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी ।।

चारित-हीन भले अबला हो, वह संसार बढ़ाये ।
पर चरित्र-दृढ़ महिलाओं का सबला रूप दिखाये ।।
ब्राह्मि-सुन्दरी और अंजना, सीता-चन्दनबाला ।
सुदृढ़ अनन्तमती मैना भी, रूप-चरित-गुणमाला ।।

सत्सतीत्व नारीत्व पूज्य है, स्वर्ग-भूमि-अवतारी ।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी ।।

---

१. भगिनी ।

कोमलांगि ने शौर्य-वीर्य का सत्स्वरूप दर्शाया ।
साहस-हीन कायरों को भी अति साहसी बनाया ।।
संघर्षों-उपसर्गों को जय कर उत्सर्ग दिखाया ।
त्याग-तपस्या प्रखर बनाकर, निज आदर्श जमाया ।।

श्रमकी सफल साधिका नारी, परम धर्म-धी-धारी ।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी ।।

है अतीत जिसका यश गाता, गाए नहीं अघाये ।
शीलधर्म समलंकृत नारी जीवन पूजा जाये ।।
गृहीधर्म-धात्री गृह-लक्ष्मी, गृह को स्वर्ग बनाये ।
दान-धर्म की धुरी, मनुजता का विकास पनपाये ।।

धन्य श्राविका-आर्या-व्रत-रत, पावनता बलिहारी ।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी ।।
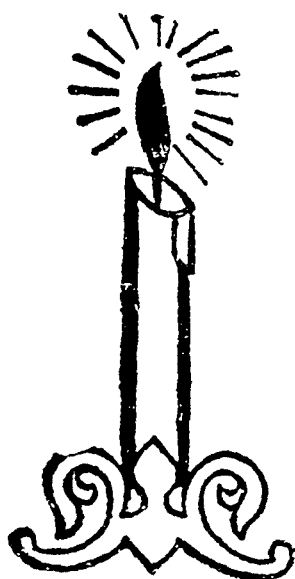
स्वागत !

✵ श्री फूलचन्द सेठी, मंत्री श्री दिगम्बर जैन समाज, डीमापुर❀

अपरिग्रह और अनासक्ति की अद्वितीय उपासिका, त्याग और तपस्या की सजीव मूर्ति, मुक्तिपथ की अनुगामिनी परम पूज्य आर्यिका रत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी के संघ सहित डीमापुर प्रवेश से जैन समाज के इतिहास में एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ है। यह हम सब नगरवासियों का परम सौभाग्य है जो हमें पूरे चार माह तक जिनवाणी का अविरल रस पान करने को मिलेगा।

विहार करते हुए आपने मार्ग में अगणित भव्य जीवों का उपकार किया है। आपकी सौम्य मुखमुद्रा भौतिकता से सन्तप्त संसारी प्राणियों का सही मार्गदर्शन करती है।

डीमापुर एवं आस-पास के निवासियों का यह परम सौभाग्य है कि पूज्य आर्यिकाओं के पावन उपदेशों से उन्हें भी समीचीन मार्ग की ओर अग्रसर होने का अवसर प्राप्त होगा।

मैं देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि आर्यिका संघ का डीमापुर चातुर्मास एवं प्रवास सबके लिये मंगलकारी हो एवं विश्वशान्ति के लिए सर्मपित हो।

पूज्य आर्यिका श्री के चरणों में नमोस्तु।

❀ दिनांक २ अक्टूबर १९७६ को सभास्थल पर पूज्य माताजी का उपदेश सुनते-सुनते श्री फूलचन्दजी सेठी ने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया।

✵

अभिवन्दन !

✵ दशम प्रतिमाधारी ब्र० लाडमल जैन

पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती जी से मेरा परिचय काफी पुराना है। संवत् ९४ में जब आ० क० चन्द्रसागरजी महाराज का आगमन जयपुर में हुआ था तब मैंने शुद्ध जल के नियम लिये थे। ब्र० मोहनी बाई (वर्तमान आर्यिका इन्दुमतीजी) चौका लगाया करती थीं। मुझ पर उनका बड़ा वात्सल्य भाव था। उन्हीं की प्रेरणा से मैं संयम के पथ पर अग्रसर हुआ हूँ। ब्र० मोहनी बाई ने बड़ी जल्दी-जल्दी संयम मार्ग पर कदम बढ़ाए और आज वे जैन समाज की आदर्श आर्यिका रत्न हैं।

उनके द्वारा भारत के सुदूर पूर्व में जिनधर्म की महत्ती प्रभावना हुई है। सम्पर्क में आने वाला कोई भी स्त्री पुरुष उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। प्रारम्भ से ही वे कठोर संयमी रही हैं शिथिलाचार उन्हें स्वीकार नहीं। आज वृद्धावस्था में भी वे अपनी चर्या में सजग हैं।

ऐसी आदर्श आर्या के दीर्घजीवन की कामना करता हूँ और वन्दामि निवेदन करता हूँ।

प्रतिष्ठा और प्रभावना

(श्री वीरकुमार जैन, क्षेत्रीय मंत्री, श्री दिगम्बर जैन बीसपंथी कोठी मधुवन, शिखरजी)

बहुत दिनों से मेरा विचार मधुवन बीसपन्थी कोठी में एक जिनबिम्ब स्थापित करने का था। मैं उसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी मधुवन में ही करना चाहता था। मेरे भाव हुए कि यह पुनीत कार्य यदि परम पूज्य इन्दुमती माताजी के संघ के सान्निध्य में हो तो अति उत्तम रहे। मैं इसी भावना को लेकर पूज्य माताजी के पास भागलपुर आया। मैंने पू० आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी के समक्ष अपना मनोगत निवेदन किया; उन्होंने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की और तुरन्त ही पूज्य इंदुमती जी के सामने मेरा विचार प्रकट किया। पूज्य माताजी ने भी मुझे आश्वस्त किया तो मैं लौट कर पत्रिका आदि छपाने व अन्य आवश्यक कार्यों में जुट गया।

इस बीच गयाजी व कोडरमा के श्रावक बन्धुओं ने माताजी व संघ को अपने यहां ले चलने के प्रस्ताव किये परन्तु माताजी का एक ही उत्तर होता था कि साधु सत्यमहाव्रतधारी होते हैं अतः उन्हें अपने वचनों का पालन अवश्य करना चाहिये। वे अन्य सभी आग्रहों को टाल कर प्रतिष्ठा की तिथि १९ जनवरी, १९८० के ५ दिन पूर्व ही संघ सहित मधुवन पधार गईं। अपार हर्षोल्लासपूर्वक बड़ी धूमधाम के साथ संघ को लाकर बीसपंथी कोठी में ठहराया।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बनने के लिये आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करना अनिवार्य होता है। अतः प्रतिष्ठा समारोह से पूर्व ही हम दोनों (पति-पत्नी) ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में सहर्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। अगाध विद्वत्ता के साथ साथ सरलता, सौम्यता और वात्सल्य–माताजी के इन गुणों का परिचय मुझे उस अवसर पर विशेष रूप से हुआ।

विधि-विधान का सम्पूर्ण कार्य आर्यिका संघ के सान्निध्य में प्रतिष्ठाचार्य पण्डित मुन्नालाल जी सिवनी वालों ने विशेष धर्मप्रभावना पूर्वक सम्पन्न करवाया। प्रतिष्ठाकार्य में गया, कोडरमा और हजारीबाग की जैनसमाज का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ था।

पूज्य माताजी अपने संघ सहित महोत्सव पर पधारीं; यही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात रही और इसी से यह प्रतिष्ठा विशेष प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुई। सम्पूर्ण संघ से मुझे अपार वात्सल्य मिला जिसके लिए मैं सबका चिरकृतज्ञ हूँ।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से मैंने दूसरी प्रतिमा के व्रत भी ग्रहण किये हैं और उनके आशीर्वाद से संयम के इस पुनीत मार्ग पर आगे बढ़ने की भावना भी है।

पूज्य माताजी अपनी तपस्या के साथ बढ़ती हुई ज्ञान ज्योति से जन जीवन को दीर्घकाल तक प्रकाशित करती रहें, यही कामना करता हूँ। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

वात्सल्यमूर्ति माताजी

—पण्डित रतनचन्द जैन शास्त्री, ईसरी बाजार

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी ने कलकत्ता चातुर्मास के अनन्तर, आसाम प्रान्त के कुछ बन्धुओं के अनुरोध पर वहां के दुर्गस्थलों में संघ सहित विहार करने की स्वीकृति प्रदान कर अदम्य उत्साह का परिचय दिया था। क्योंकि इस प्रदेश की नाना विषमताओं को ज्ञात कर कोई भी त्यागी-तपस्वी इस प्रान्त में विहार करने का साहस नहीं करता था। माताजी ने जनकल्याण की भावना से प्रेरित हो इस प्रदेश में विहार करने का साहसिक निर्णय लिया और लगातार छह वर्षों तक इस क्षेत्र में परिभ्रमण किया।

इन छह वर्षों में आपने संघ सहित भारत के पूर्वी सीमान्त में बसे हुए डिब्रूगढ़, तिनसुकिया, जोरहाट, शिवसागर, गौहाटी, विजयनगर, धुबड़ी आदि शहरों में एवं सम्पूर्ण ग्रामांचल में पदयात्रा करके महती धर्मप्रभावना की। यहाँ सदियों से बसे हुए जैन व जैनेतर समाज को अपने नगर में सन्मार्गदर्शक आर्यिका संघ के पदार्पण से असीम आनन्द एवं उल्लास हुआ। आर्यिकाओं के प्रवचनों में हजारों की संख्या में उपस्थित होकर सबने धर्मश्रवण का लाभ लिया और अपने जीवन को धर्ममय बनाया।

पूज्य इन्दुमती माताजी को जिनेन्द्रभाषित चारों अनुयोगों का साधिकार विशद ज्ञान है। संघ में सतत स्वाध्याय चलता रहता है। पूज्य माताजी अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण अब अधिक देर तक बोल नहीं पाती हैं। अतः आपके आदेशानुसार आपकी प्रमुख शिष्या १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी अपने सरल, हृदयग्राही और दृष्टान्तों से परिपूर्ण आगमोक्त कल्याणकारी प्रवचनों द्वारा जनता को सम्बोधित करती हैं। अन्य शिष्याएँ श्री १०५ विद्यामती माताजी और श्री १०५ सुप्रभामती माताजी भी समय-समय पर प्रवचनों द्वारा जनमानस को चिन्तन की सही दिशा का परिज्ञान कराती हैं।

इस प्रान्त में आपके प्रभाव से जनता में अपूर्व धर्मप्रभावना प्रकट हुई है। फलस्वरूप, नवीन मन्दिर निर्माण, चैत्यालयस्थापन, वेदी प्रतिष्ठा और पंच कल्याणक जैसे महान् कार्य भी सम्पन्न हुए हैं। सभी जगह प्रवासी जैन समाज ने तथा स्थानीय समाज ने संघ के स्वागत में अपूर्व उत्साह दिखलाया है। मुझे आसाम प्रान्त में होने वाले प्रत्येक वर्षायोग में माताजी की चरणसेवा में रहने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है।

मुझे आर्यिका संघ की खण्डगिरि-उदयगिरि की यात्रा के समय चार माह तक साथ रहने का भी अवसर प्राप्त हुआ था। संघ मधुवन शिखरजी से रवाना होकर एक माह में खण्डगिरि पहुंचा

था। खण्डगिरि में एक माह तथा कटक में एक माह रुक कर वापिस एक माह में मधुवन पहुंचा था। वापसी में बोकारो चास में आपके सान्निध्य में नवीन जिन मन्दिर का शिल्यान्यास भी हुआ था।

इस यात्रा में मैंने देखा कि वृद्धा इन्दुमती माताजी रुग्ण होने पर भी तीर्थ भक्ति की भावना से प्रेरित होकर सबसे आगे चलती थीं। प्रतिदिन १८–२० किलोमीटर चलने पर भी आपके उत्साह में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता था। खण्डगिरि के समीप पहुंच कर तो आपने २२ किलोमीटर की यात्रा पूर्ण करके जिनेन्द्र भगवान के दर्शनोपरान्त ही विश्राम ग्रहण किया था।

इसी यात्रा में मुझे माताजी के स्वभाव का भी निकट परिचय प्राप्त हुआ। माताजी का स्वभाव बालकवत् अत्यन्त सरल है। उत्तम क्षमा की आप साक्षात् मूर्ति हैं। आपके चेहरे पर कभी उद्वेग नहीं दिखाई देता। आपका मुखमण्डल सदैव प्रसन्न ही दिखाई देता है। आपकी सरलता और सौम्यता आपके अन्तर्मन की स्वच्छता का दर्पण है। आपकी ज्ञान वैराग्यमयी मूर्ति को देख कर सहज ही ज्ञान वैराग्य की भावना प्रादुर्भूत होती है, मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। परम निश्छल वात्सल्य देख कर मन 'माता' कहने को स्वयं उत्कण्ठित होता है।

मैं पूज्य माताजी के त्यागतपस्यामय दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ। उनकी समाधि पूर्ण रूपेण निर्विघ्न, उत्तम और शान्तिमय हो। ऐसी भावना करता हुआ मैं पूज्य माताजी के चरणों में अपनी विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

जहां श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है!

इस वर्ष (१९८२) पुनः पूज्य १०५ आर्यिका रत्न इन्दुमती माताजी का ससंघ चातुर्मास श्री सम्मेदशिखर दिगम्बर जैन बीस पंथी कोठी मधुवन–शिखरजी में हो रहा है। पूज्य इन्दुमती माताजी, पूज्य सुपार्श्वमती माताजी, पूज्य विद्यामती माताजी और पूज्य सुप्रभामती माताजी चारों ही निराडम्बर, शान्त, गम्भीर एवं सरलमना हैं। उनके दर्शनों हेतु श्रद्धालु भक्तों का ताँता लगा ही रहता है। उनके चरणों में परमानन्द प्राप्त होता है। संघ के विराजने से क्षेत्र की रौनक में चार चांद लग गये हैं। ऐसी विभूतियां दीर्घकाल तक हम संसारी प्राणियों का मार्गदर्शन करती रहें—यही कामना है। मैंने जबसे दर्शन किये हैं तबसे आपके सान्निध्य लाभ की ही भावना बनी रहती है।

आर्यिकाओं के चरणों में शत–शत वन्दन!

गुरुचरण सेवक : **सुरेशकुमार जैन, मैनेजर**
श्री दिगम्बर जैन बीस पन्थी कोठी, शिखरजी

डीमापुर में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना

आज से लगभग छह वर्ष पूर्व परम पूज्य १०५ इन्दुमती माताजी का संघ सहित यहां चातुर्मास हुआ था। आपके यहां आगमन से पूर्व डीमापुर में १५० जैन परिवारों के होते हुए भी केवल दो–तीन घरों में ही शुद्ध भोजन की व्यवस्था थी। बाहर से किसी व्रती के आ जाने पर बड़ी असुविधा होती थी। माताजी के उपदेशामृत का पान कर करीब १५० स्त्री पुरुषों ने शुद्ध खान–पान की प्रतिज्ञा की व अनेक व्रत नियम भी ग्रहण किये। तब से प्राय: सभी घरों में शुद्ध भोजन बनाने की परिपाटी प्रारम्भ हो गई है। यह अद्भुत धर्म प्रभावना माताजी की ही देन है।

पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का आत्मबल भी अद्भुत है। वे यहां अस्वस्थ हो गई थीं, विहार करने की शक्ति शरीर में बिल्कुल नहीं थी। विहार की वेला निकट आने पर कुछ धर्मप्रेमी श्रावकों ने बिना पूछे ही भक्तिवश डोली की व्यवस्था कर ली, किन्तु डोली को देखते ही पूज्य इन्दुमतीजी ने कड़क कर कहा—यह किसके लिये लाये हो ? उपस्थित श्रावकों ने हाथ जोड़ कर सविनय प्रार्थना की कि 'मातेश्वरी ! आपके शरीर में चलने की शक्ति नहीं है, मार्ग में विहार में असुविधा न हो इसके लिये यह व्यवस्था की गई है।' माताजी ने सिंह गर्जना करते हुए फटकार लगाई कि "इसे तुरन्त मेरे सामने से हटा दो; मैं इस पर कभी नहीं बैठूंगी, पैदल ही विहार करूंगी" और इतना कह कर न जाने उनमें कौन सी शक्ति प्रकट हुई कि वे तुरन्त चल पड़ीं। और देखते-देखते सारे संघ के आगे निकल गयीं।

मैं त्याग, तपस्या और आत्मबल की उस निर्भीक ज्योति के दीर्घ जीवन की कामना करता हुआ उनके चरणों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

—जयचन्दलाल पाण्डया 'मन मौजी', डीमापुर

अद्भुत प्रभाव

पूज्य आर्यिका १०५ इन्दुमतीजी एवं संघ का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि आपके सम्पर्क से मेरा जीवन ही बदल गया। पूज्य आर्यिका माताओं की सद्शिक्षा से सच्चे देवशास्त्र–गुरुओं पर मेरी श्रद्धा दृढ़ हो गई। मुनि संघों व आर्यिका संघों के दर्शन वन्दन करने से पापों का नाश होता है। साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधव:।

तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में पूज्य माताजी के सान्निध्य में दो वर्ष पूर्व फाल्गुन की अष्टाह्निका में आयोजित इन्द्रध्वज विधान में सपरिवार सम्मिलित होने का मुझे अवसर मिला था, अपूर्व आनन्द की अनुभूति स्मृति रूप में आज भी विद्यमान है।

फाल्गुन की अष्टाह्निका में जहां पूज्य माताजी का संघ विराजमान रहता है वहां पहुंच कर मेरी भण्डारा करने की भावना रहती है। साधर्मी भाइयों के साथ मिल बैठ कर भोजन करने से धार्मिक वात्सल्य का विकास होता है। पूज्य आर्यिका माताओं का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि श्रद्धालु भक्तजन निरन्तर उनके सान्निध्य लाभ की कामना करते हैं।

मैं परम तपस्विनी आर्यिका शिरोमणि पूज्य इन्दुमतीजी व अन्य माताओं के चरणों में नमोस्तु निवेदन करता हूं और यही कामना करता हूं कि आप नीरोग दीर्घ जीवन प्राप्त करें।

—गुरुचरणसेवक : पन्नालाल सेठी, डीमापुर

शुभ कामना !

पूर्वाञ्चल भारत में दिगम्बर जैन साधुओं का शताधिक वर्षों से आगमन नहीं हुआ था अतः भावना थी कि समीप आए हुए आर्यिका संघ को गौहाटी (आसाम) लाने का प्रयत्न किया जाए। सम्पूर्ण समाज की ओर से निर्णय लेने के बाद हम लोग किसनगंज पहुचे जहां माताजी संघ सहित विराज रही थीं। पूज्य माताजी ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली, विहार की व्यवस्था हुई जिसका सम्पूर्ण श्रेय रायसाहब चांदमलजी पाण्डया एवं मिश्रीलालजी बाकलीवाल को है। विहार का समस्त व्यय भार आपने वहन किया। आपकी उदारता स्तुत्य है।

मार्ग में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई। स्थान-स्थान पर मण्डल विधान आयोजित हुए। गृह-चैत्यालयों की स्थापना हुई। अनेक नर-नारियों ने शक्त्यनुसार व्रत-नियम ग्रहण किए। विहार की समस्त रिपोर्ट श्री डूंगरमलजी सवलावत को भेजते रहते थे।

गौहाटी वर्षायोग के अवसर पर भगवान महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव विशेष धर्मप्रभावनापूर्वक मनाया गया। विजयनगर में संघ के सान्निध्य में दो बार बिम्बप्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुए। 'सूर्य पहाड़' भी प्रकाश में आया, स्वयं आर्यिका संघ ने वहां पधार कर अतीत के उस बिखरे वैभव का अवलोकन किया। आर्यिका संघ के आगमन से आसाम के जन-जीवन में बहुत परिवर्तन आया। वे दिन अविस्मरणीय बन कर रह गए हैं।

पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने की योजना बनी है; मैं इस योजना की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, यही भावना है।

—लक्ष्मीचन्द छाबड़ा, भू० पू० अध्यक्ष, महासभा

नारी समाज की गौरव : आर्यिका इंदुमतीजी

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी ने संघ सहित पुण्याभिलाषिणी नागाभूमि के डीमापुर नगर में वर्षायोग स्थापित कर अहिंसा प्रधान श्रमण संस्कृति का जो प्रचार-प्रसार किया, उसके लिए हम सभी डीमापुर निवासी आपके चिर कृतज्ञ हैं। आर्यिका संघ के सान्निध्य से डीमापुर में मानो अध्यात्म सूर्य का ही उदय हुआ हो। डीमापुर के इस वर्षायोग में मुझे आर्यिका संघ के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। संघ के आदर्श को मैं किन शब्दों में अभिव्यक्त करूँ? मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि जिस तरह इस काल में पुरुष वर्ग में आचार्य शान्तिसागरजी महाराज जैसे अद्वितीय तपस्वी हुए हैं उसी तरह स्त्री समाज में आर्यिका इन्दुमतीजी जैसी अद्वितीया नारी रत्न हुई हैं जिन्होंने भारत के सुदूर पूर्वांचल में—आसाम, नागालैण्ड आदि क्षेत्रों में-जैनधर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की है। मैं पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनयाञ्जलि अर्पित करता हूं और कामना करता हूं कि माताजी दीर्घायु होकर सदैव हमारा मार्गदर्शन करती रहें।

—चैनरूप बाकलीवाल, डीमापुर
अध्यक्ष, अ० भा० दि० जैन महासभा—पूर्वांचल शाखा

✲

धन्य जीवन

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी ने संघ सहित भारत के पूर्वांचल में पैदल विहार कर जैन शासन की अभूतपूर्व प्रभावना की है। आपके उपदेशों से प्रेरणा पाकर अनेक स्त्रीपुरुषों ने आजीवन—पंच पापों का त्याग, मद्य मांस मधु का त्याग आदि नियम लिए हैं। प्रतिदिन देवदर्शन की प्रतिज्ञा की है। घर में चैत्यालय होते हुए भी पहले मुझे अभिषेक-पूजन करने की रुचि नहीं थी। परन्तु माताजी के प्रभाव से नित्य अभिषेक पूजन करना अब मेरा स्वभाव वन गया है। मैं नौगांव, गोलाघाट, जीमलीगढ़ आदि स्थानों तक आर्यिका संघ के साथ रहा। इन पुण्यात्माओं के संसर्ग से मुझे अभूतपूर्व आनन्द का लाभ हुआ। गोलाघाट में संघ के सार्वजनिक स्थलों पर प्रवचन, केशलोचन आदि को सुन कर व देख कर अजैन जनता इतनी प्रभावित हुई कि मुक्तकण्ठ से इनकी प्रशंसा करने लगी और कहने लगी कि वास्तव में तप और त्याग की सच्ची मूर्तियाँ ये ही हैं। मैं पूज्य आर्यिकाओं के निरापद दीर्घजीवन की कामना करता हूं। चरणों में शत शत वन्दन!

—पूसराज वाकलीवाल, गोलाघाट (आसाम)

विनयाञ्जलि

[बाल० ब्र० कु० माधुरी शास्त्री, हस्तिनापुर]

सुनते हैं चन्दा की शीतल किरणों से अमृत झरता है ।
चांदनी स्वयं विकसित करके जग को आलोकित करता है ।।
कुछ मन्द-मन्द मुस्कान लिए निशि में प्रकाश दिखलाता है ।
जग को शीतलता देने का वह पाठ हमें सिखलाता है ।।१।।

थे चन्द्रवदन सम चन्द्रसिन्धु गुरु शुभ्र ज्योत्स्ना से संयुत ।
निज ज्ञान किरण से सुधाविन्दु के शीतल सहज समीरण युत ।।
उस चन्दा की शीतल छाया माँ इन्दुमती को प्राप्त हुई ।
गुरु के गुण की सौरभता भी उनके मानस में व्याप्त हुई ।।२।।

लोहा यदि पारस को छू ले तो सोना वह बन जाता है ।
शशि के प्रभाव से सूरज भी खुद ही शीतल हो जाता है ।।
इसके प्रतिफल में मोहिनि ने जब वरदहस्त गुरु का पाया ।
नारी जीवन की सार्थकता को इन्दुमती बन दरशाया ।।३।।

निज प्रखर कान्ति से शिष्यों को शीतल छाया देने वाली ।
आर्यिका संघ युत कर विहार मिथ्यातम हर लेने वाली ।।
मैं केवल शब्दों के द्वारा अभिनन्दन क्या कर सकती हूं ।
युग-युग तक मिले प्रकाश "माधुरी" अभिवन्दन मैं करती हूं ।।४।।

आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ

द्वितीय खण्ड
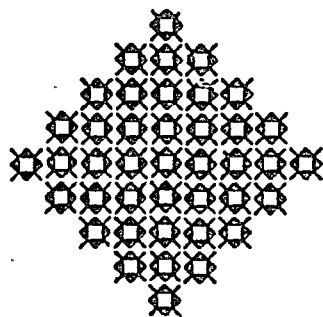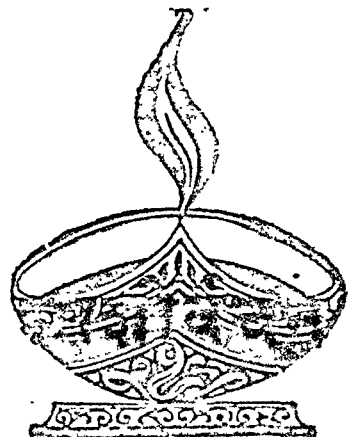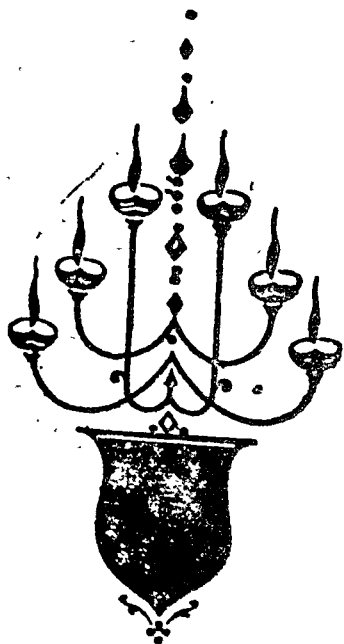
आर्यिका संघ

卐 परम पूज्य आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी, आर्यिकाश्री सुपार्श्वमती माताजी,
आर्यिकाश्री विद्यामतीजी और आर्यिकाश्री सुप्रभामती माताजी 卐

आर्यिका संघ

तीर्थंराज सम्मेदशिखरजी ४० वाँ चातुर्मास] ❀ [तत्वचर्चा करते हुए

❖ शिखरजी वर्षायोग में आर्यिका संघ—
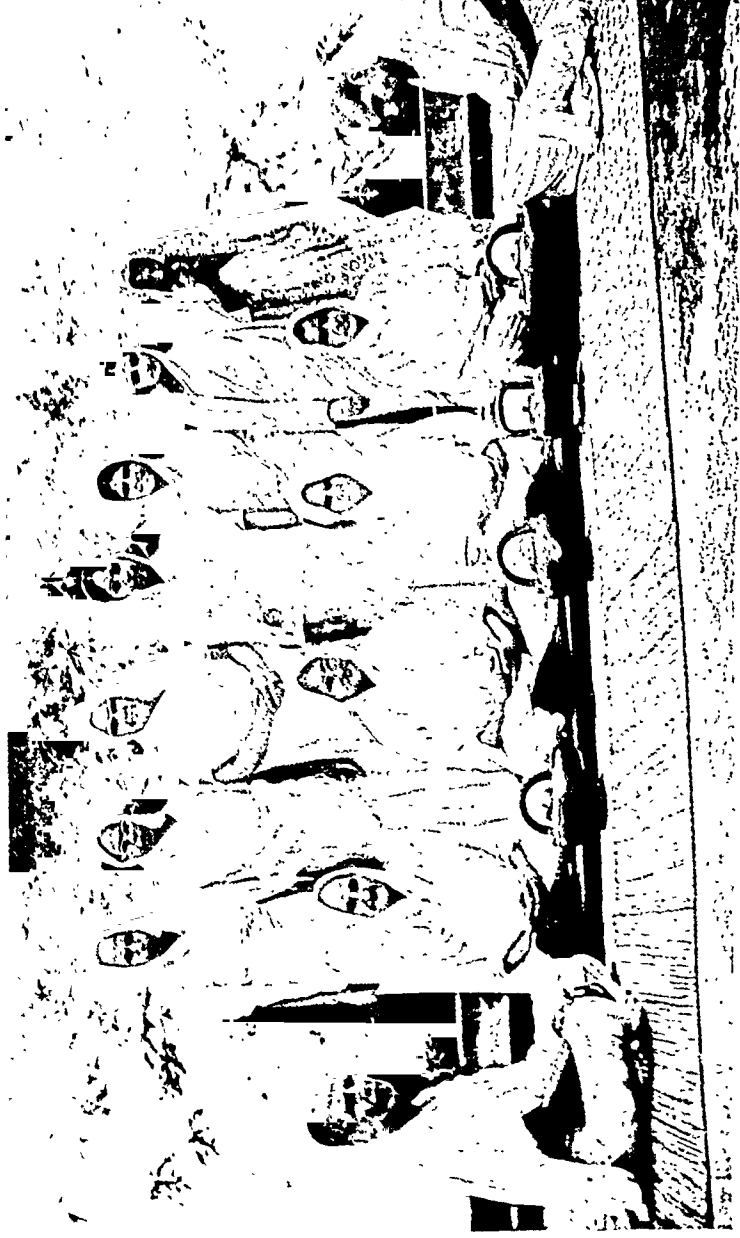
卐 परम पूज्य आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी, आ० सुपार्श्वमतीजी, आ० विद्यामतीजी, आर्यिका सुप्रभामतीजी; ब्र० कैलाशचन्द्र

卐卐 ब्र० हरकी वाई, ब्र० देवकी वाई, ब्र० मद्दी वाई, ब्र० प्रमिला, ब्र० जै श्री, ब्र० नयना, ब्र० रतनी वाई

आर्यिका शिरोमणि, प्रमुख गणिनी

卐 श्री १०५ पूज्य माता इन्दुमतीजी 卐
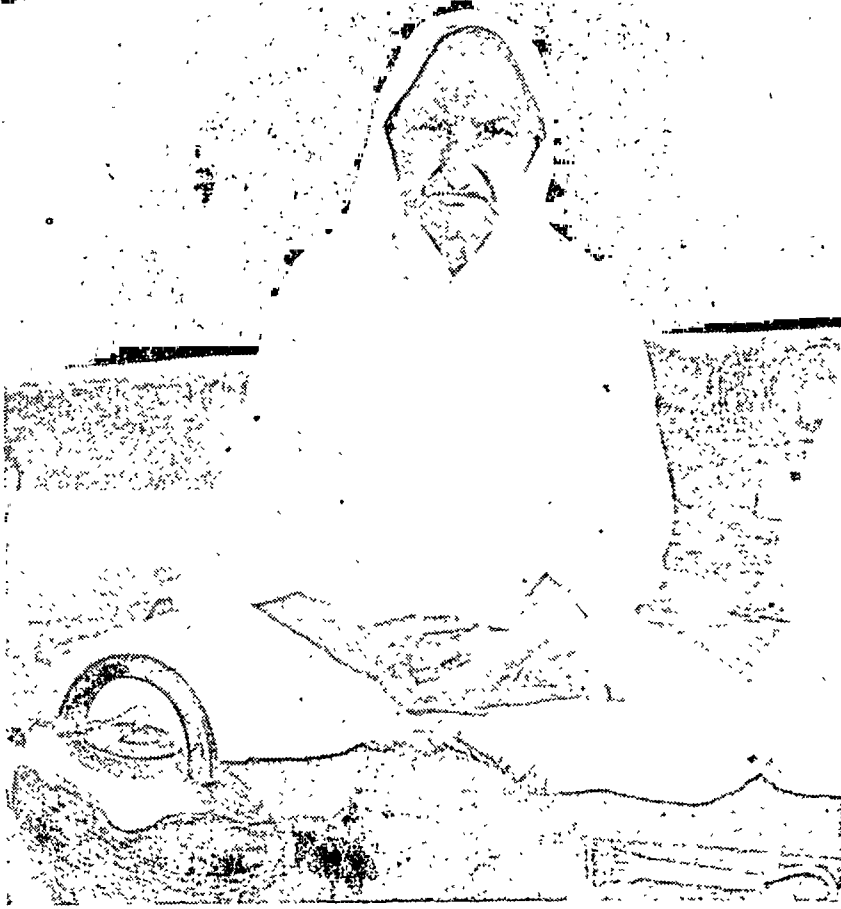
यस्यारस्त्यमितप्रबोधगरिमा सा किं स्वयं भारती,
सम्भूताथ विरागतामुपगता किं वा नु लक्ष्मीरियम्।
चारित्रप्रतिमूर्तिरस्ति किमियं सञ्चिन्त्यमाना जनै-
रित्थं श्री गणिनीन्दुमत्यनुदिनं कुर्याज्जगन्मङ्गलम् ।।

अर्थ—जिसके ज्ञान की गरिमा अपार है ऐसी क्या यह स्वयं सरस्वती ही उत्पन्न हुई है ? अथवा लक्ष्मी ही वैराग्य को प्राप्त हो गई है ? अथवा कहीं यह चारित्र की प्रतिमूर्ति ही तो नहीं है ? इस तरह लोग जिसके बारे में अनेक विकल्प रखते हैं, वह पूज्य प्रमुख गणिनी इन्दुमती माता जगत का सदा कल्याण करे।

डा० लालबहादुर शास्त्री एम. ए., पी एच. डी. साहित्याचार्य
न्याय-काव्य तीर्थ
सम्पादक, जैन दर्शन साप्ताहिक

ब्र० मोहनीबाई

क्षुल्लिका इन्दुमतीजी

क्षुल्लिका इन्दुमतीजी

क्षु० इन्दुमतीजी को आर्यिका दीक्षा
प्रदान करते हुए आ. वीरसागरजी म०

आर्यिका इन्दुमतीजी आर्यिका विमलमतीजी के साथ
(डेह वि० सं० २००६)

आहार से लौट कर विचार लीन
आर्यिका श्री

सामायिक रत आर्यिका श्री
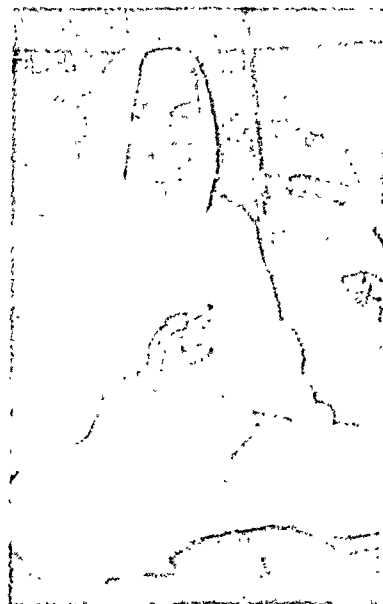
प्रवचन करती हुई आर्यिका श्री
(गिरीडीह वि० सं० २०३८)

आशीर्वाद मुद्रा में आर्यिका श्री
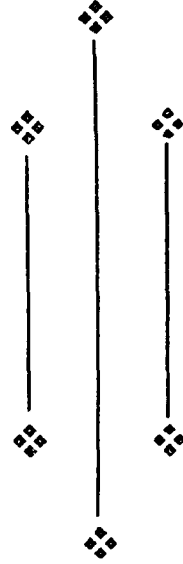
आर्यिका श्री चिन्तन मग्न
(बड़पेटा वि० सं० २०३२)

स्वाध्याय लीन आर्यिका श्री

आर्यिका इन्दुमतीजी और आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

आ र्यि का

सं घ
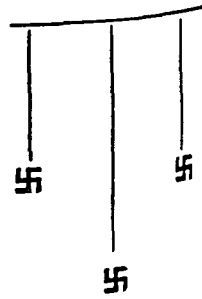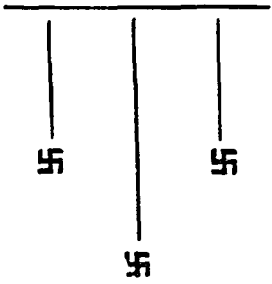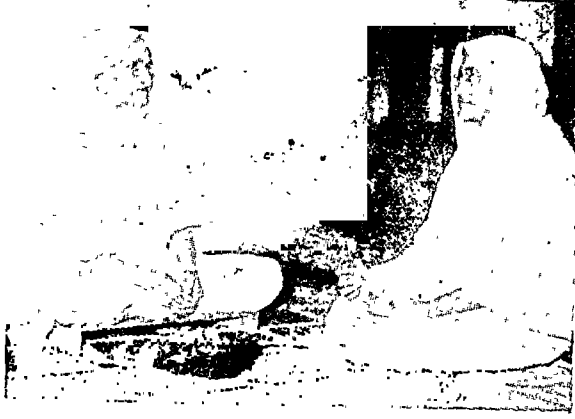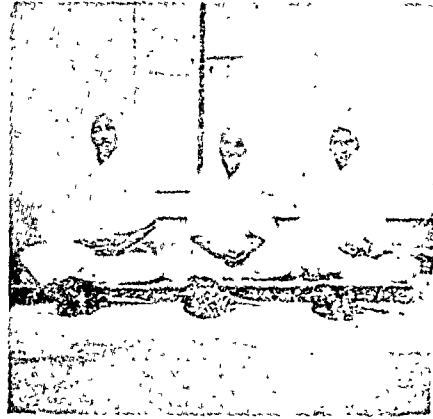
आ. सुपार्श्वमतीजी आ. इन्दुमतीजी
आ. विद्यामतीजी

आ र्यि का सं घ
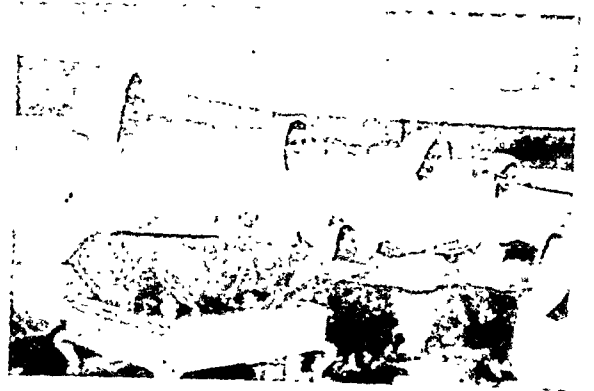
आर्यिकावृन्द
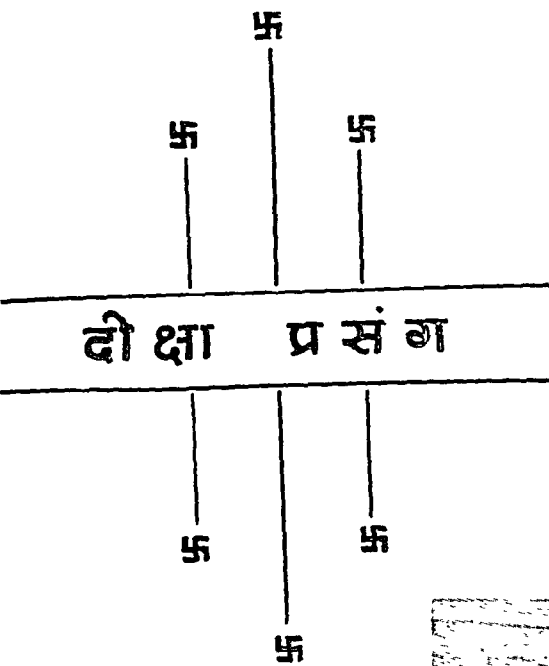
आ० विद्यामतीजी को दीक्षा देते हुए
आचार्य श्री शिवसागरजी म०

आ० इन्दुमतीजी केशलौंच करते हुए
(गोलाघाट–आसाम)

आ० सुपार्श्वमतीजी केशलौंच करते हुए

卐 सुप्रभामतीजी की दीक्षा 卐

केशलौंच करते हुए आर्यिकात्रय

दीक्षा प्रदान करते हुए आचार्य श्री समन्तभद्र महाराज
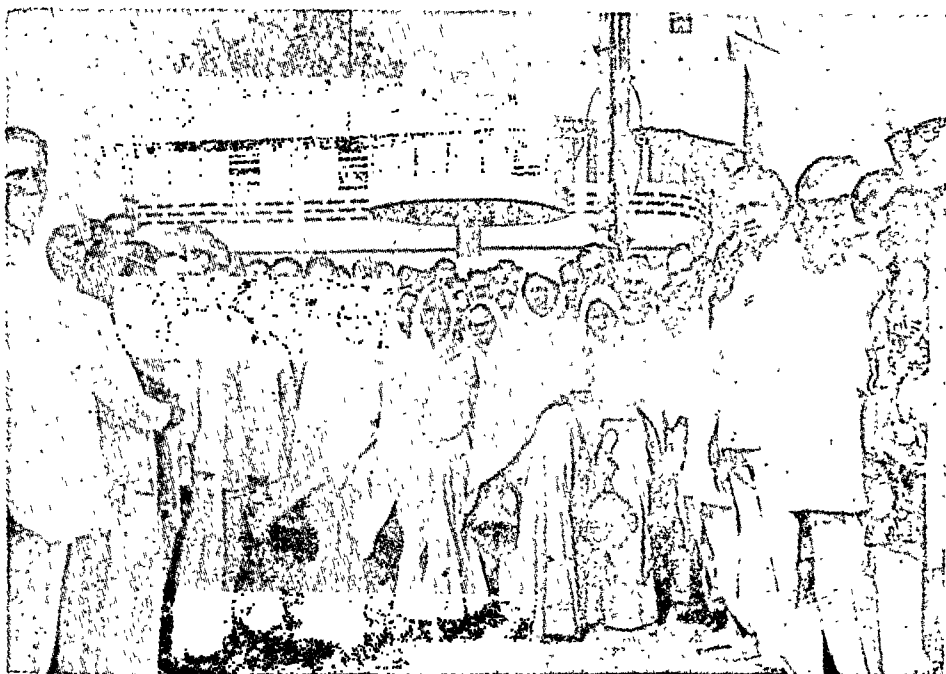
प्रवेश के समय शोभायात्रा के अवसर पर

केशलौंच समारोह

卐 गौहाटी में आर्यिका संघ 卐

जैन संस्कृति की प्राचीनता के द्योतक अवशेष :—

गोहाटी के निकट सूर्य पहाड़ के अवलोकनार्थ जाते हुए
विकट सघन वन में आर्यिका संघ
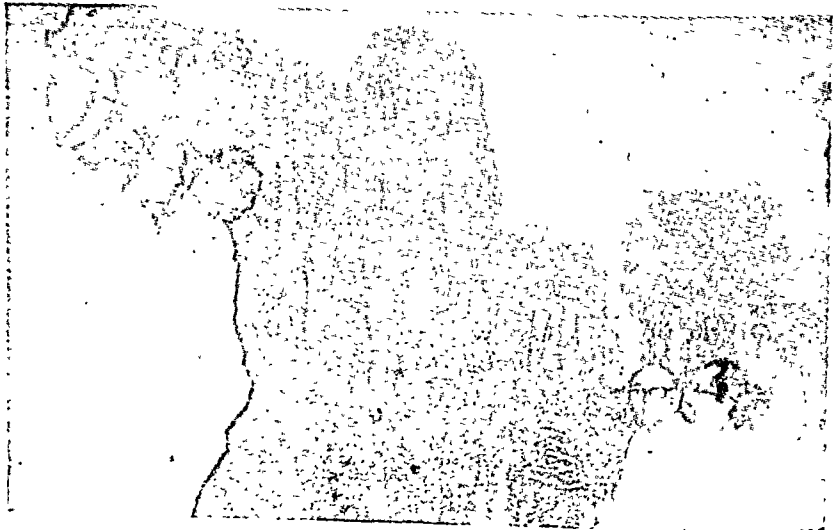
सूर्य पहाड़ पर बिखरी मूर्तियाँ
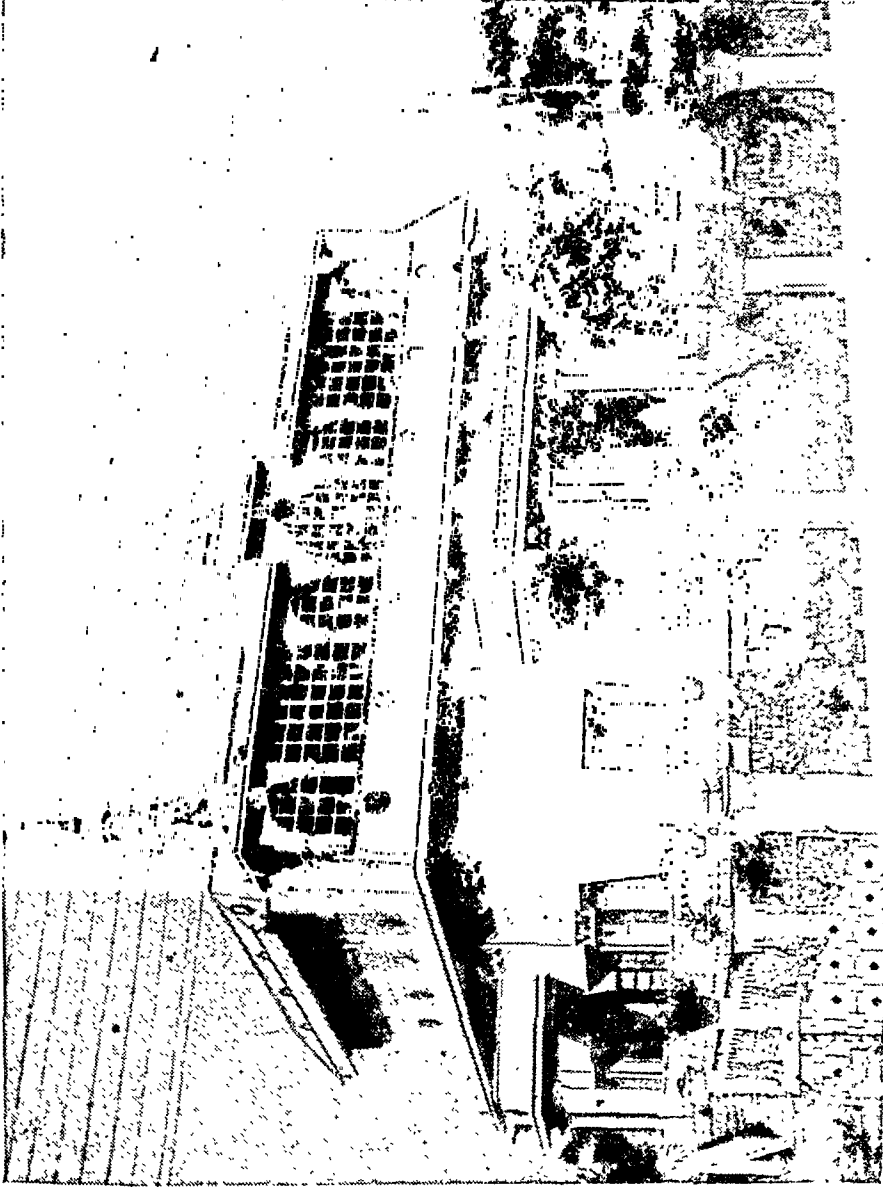
आसाम में अभूतपूर्व एवं अद्वितीय प्रथम पंचकल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव
श्री दिगम्बर जैन मंदिर विजयनगर (आसाम)

जोरहाट में आर्यिका संघ

दिनांक ७ मार्च ७६ को प्रवेश के समय स्वागत तत्पर जन समुदाय

नगरपालिकाध्यक्ष संघ का आरती उतार कर स्वागत करते हुए

आर्यिका संघ का प्रवचन

जोरहाट से विहार

卐 जोरहाट में आर्यिका संघ 卐

डीमापुर में आर्यिका संघ

卐

जिज्ञासुओं की शंका का समाधान करते हुए आर्यिका संघ
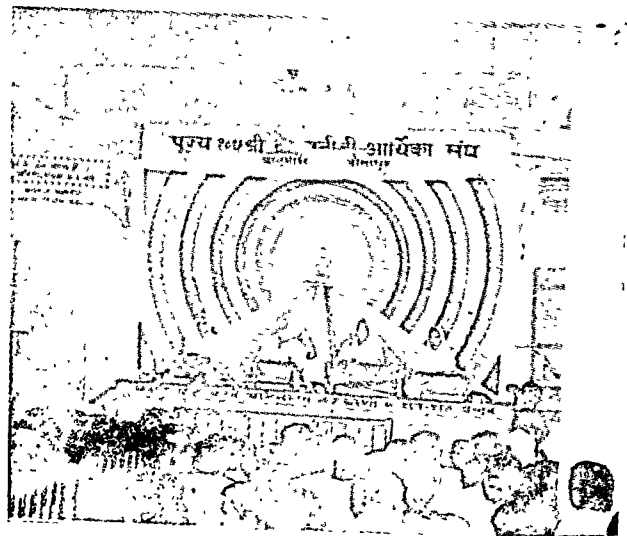
सभागार में आर्यिका संघ का प्रवचन

卐 गोलाघाट में आर्यिका संघ 卐

नगर प्रवेश
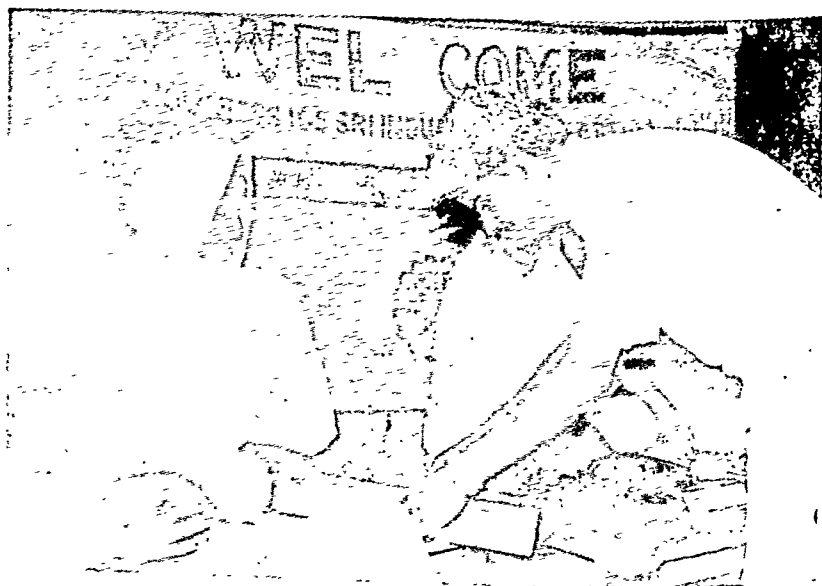
स्वागत करते हुए एस. डी. ओ. श्री मिश्रा
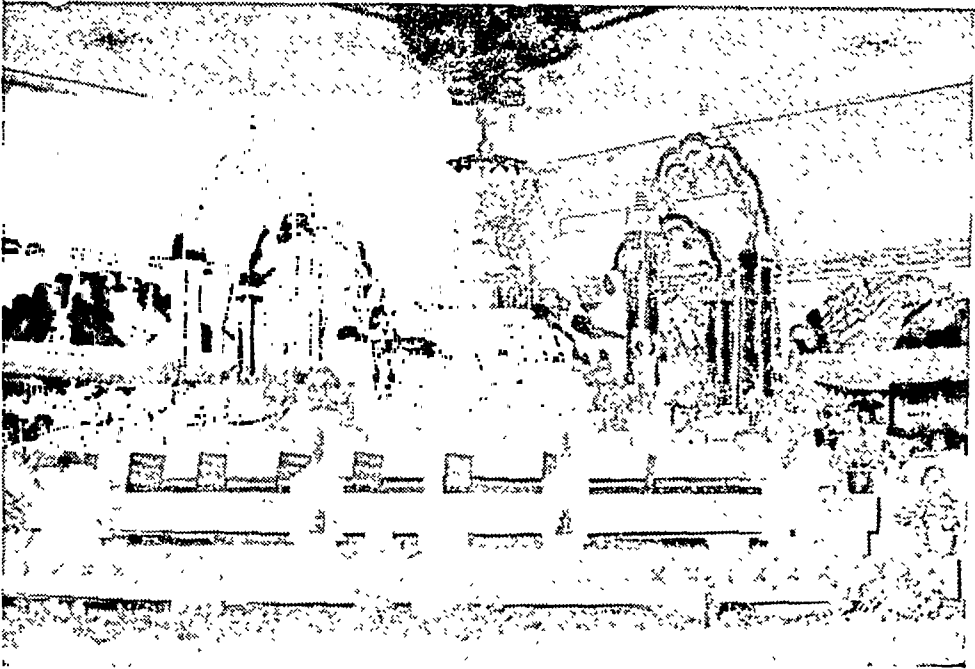
समवशरण रचना का प्रभावक दृश्य
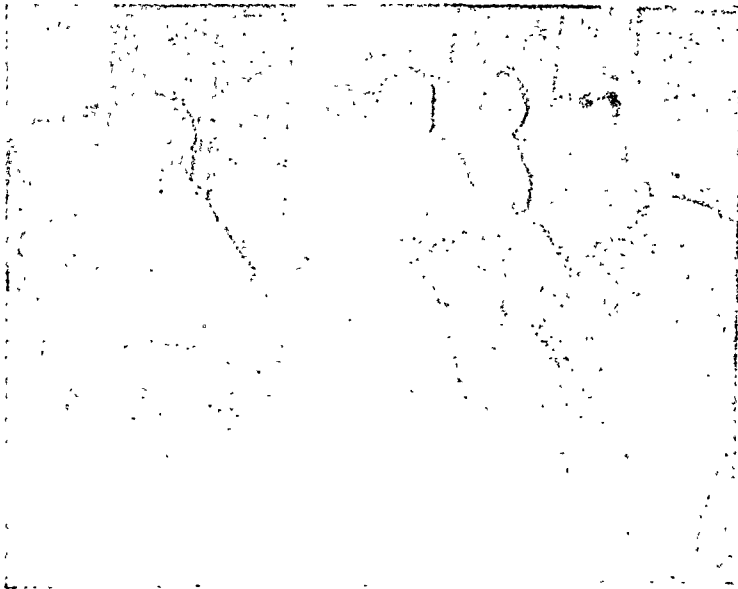
महिला समाज से चर्चा करते हुए आर्यिका संघ

मंडल रचना

मंडल विधान के आयोजक
श्री निर्मलकुमार सेठी, श्री पारसमल बड़जात्या एवं श्री पन्नालाल सेठी
सपत्नीक

डेह में विशाल मुनि संघ (वि० सं० २००६) :
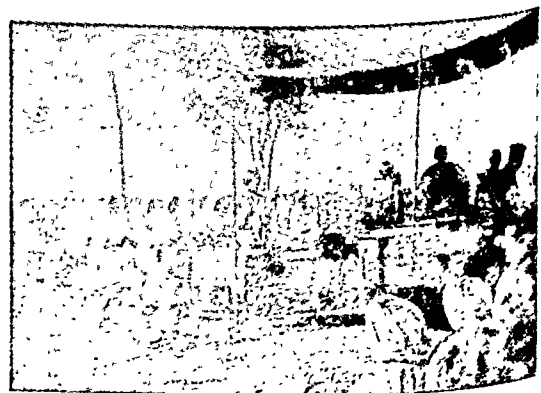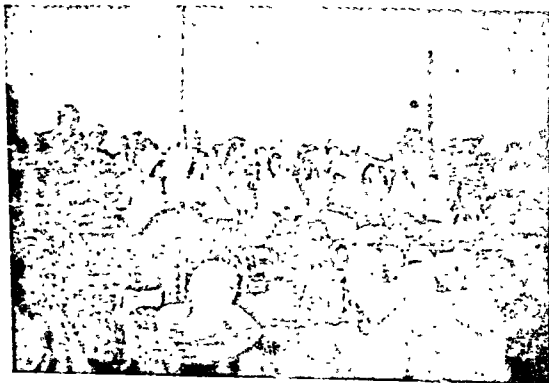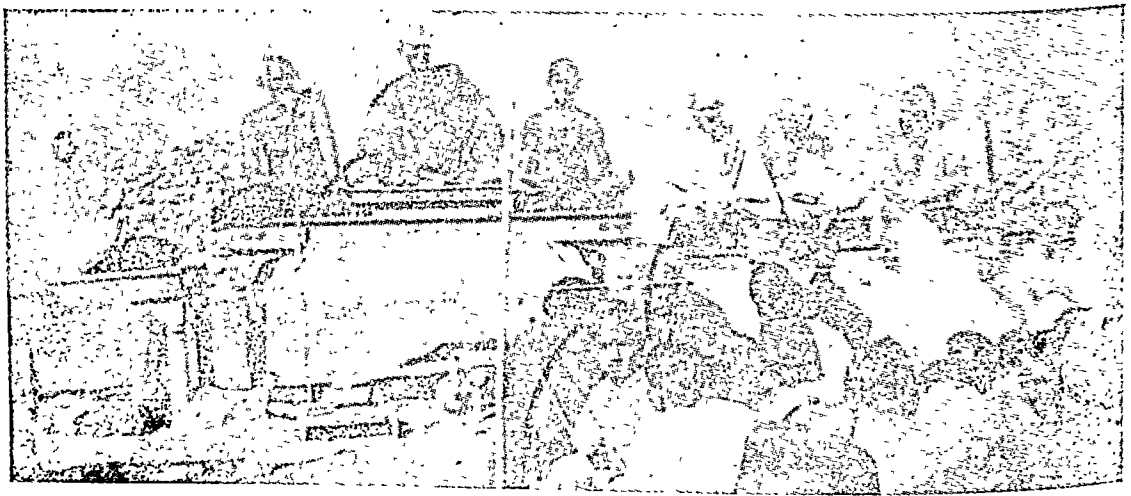
श्री दि० जैन चन्द्रप्रभ मंदिर (प्राचीन मंदिर) डेह :
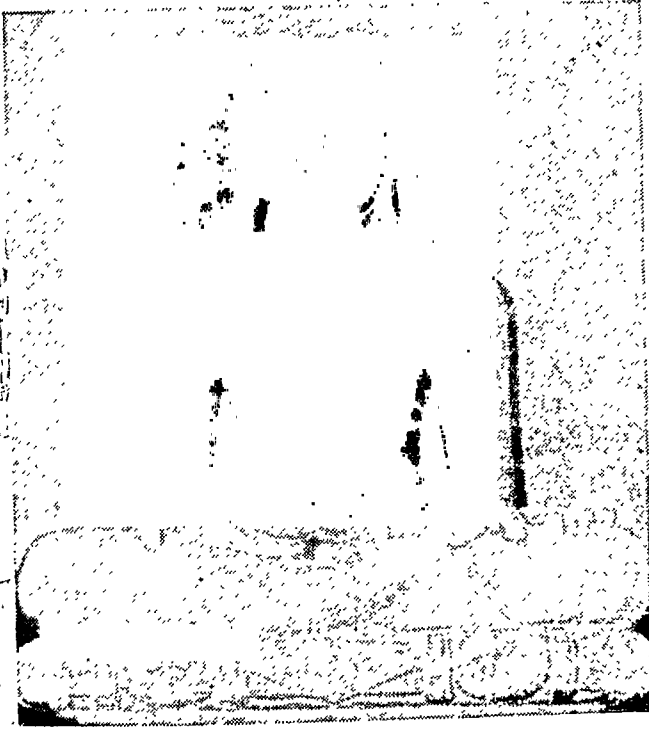
मूलनायक श्री चन्द्रप्रभ भगवान का मनोज्ञ विम्व
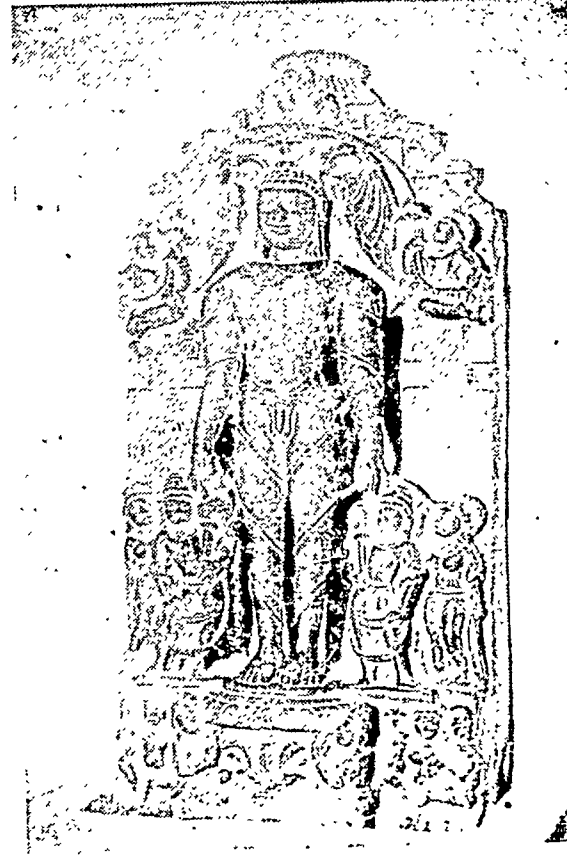
भगवान वाहुवली (९ वीं शताव्दी)

मुख्य वेदी

डेह के अन्य जिनायतन :

मुख्य वेदी, नसियांजी

श्री महावीर जिनालय

दादाबाड़ी कोटा
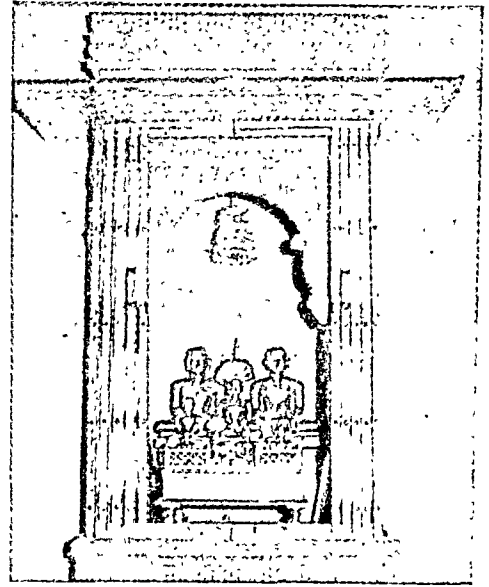
श्री पद्मप्रभ चैत्यालय
ब्र० मोहनीबाई (आ० इन्दुमती) द्वारा निर्मित

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ नसियां

श्री पद्मावती बिम्ब
श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ नसियां
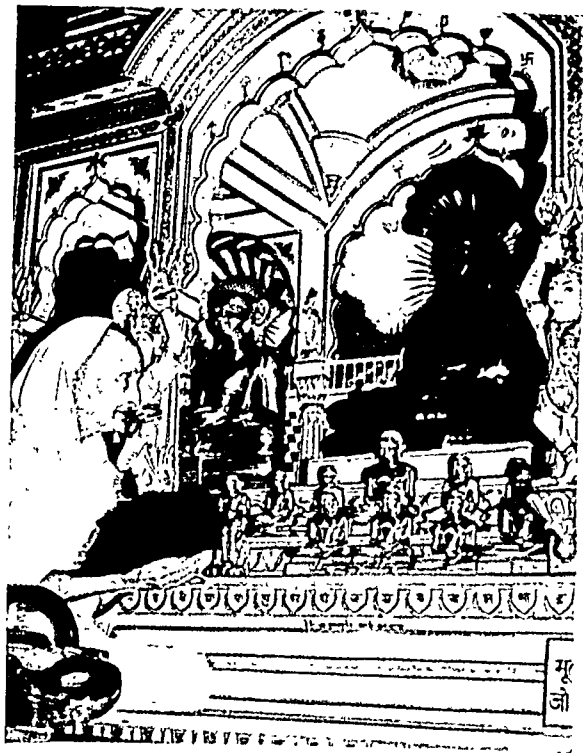
तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में
बीस पंथी मन्दिर
की
मूल वेदी में
विराजमान
जिन बिम्बों के दर्शन
करती हुई
आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी

आहार को जाते हुए आर्यिका संघ

आहार ग्रहण करती हुई आर्यिका श्री इन्दुमतीजी

स्वाध्यायरत आर्यिकाश्री

पिच्छिका वनाती हुई आर्यिकाश्री
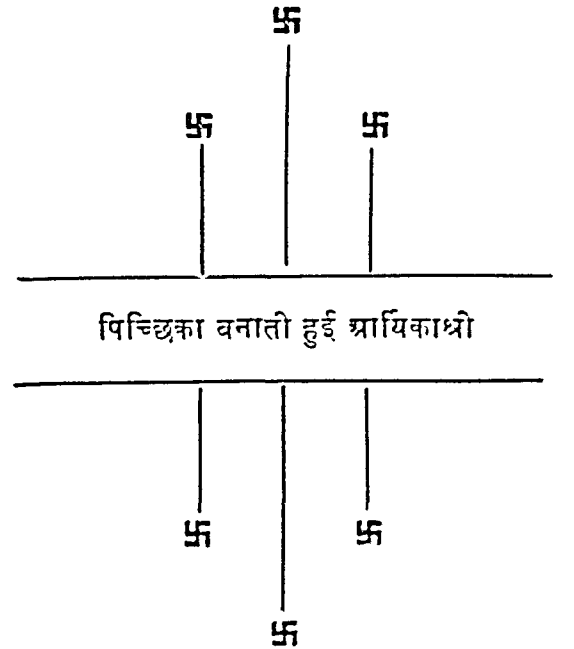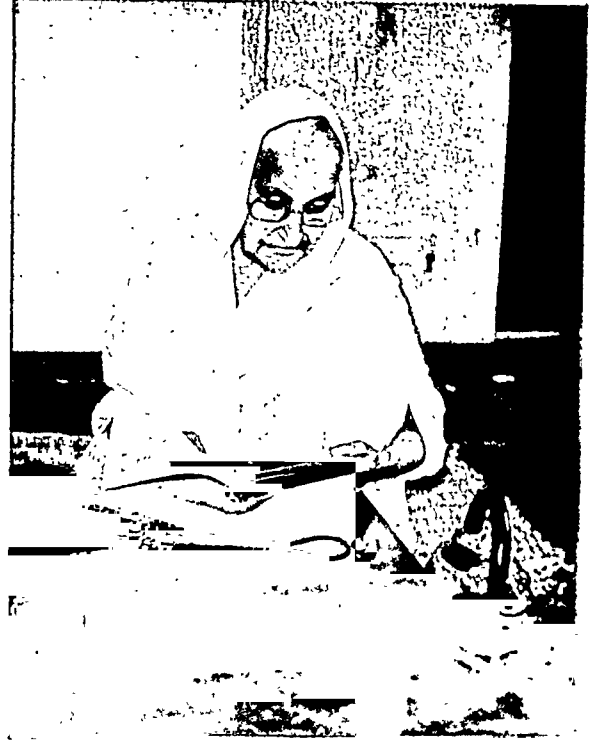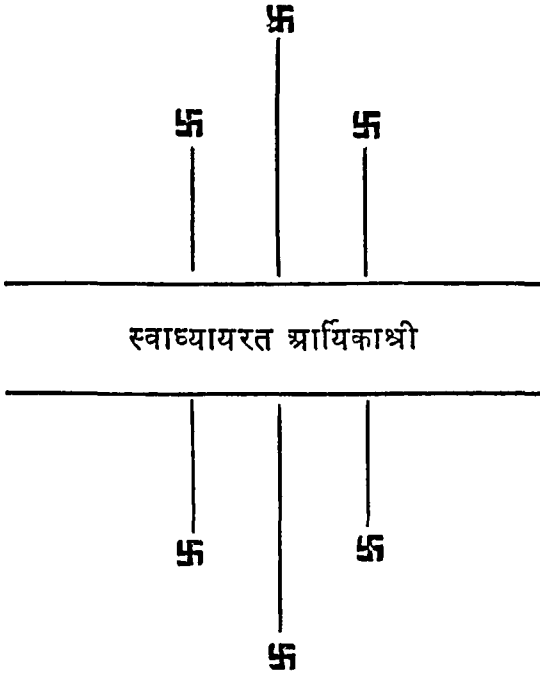
तृतीय खण्ड

☼

जीवनवृत्त

☼
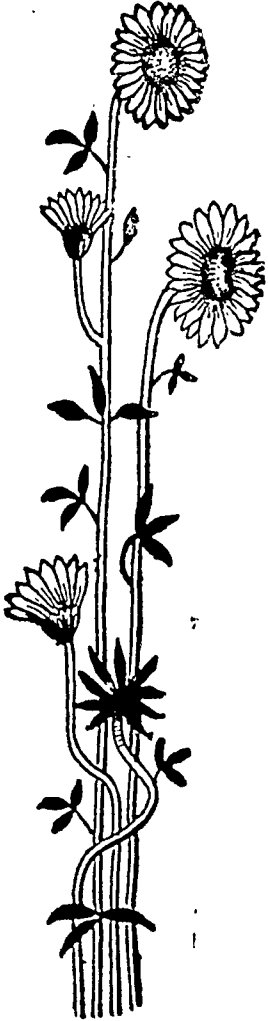
लेखिका :
आ० सुपार्श्वमती माताजी

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा नमः ।।
ॐ ह्रीं महावीराय नमः ।।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं सरस्वति ! मम जिह्वाग्रे आगच्छ ! आगच्छ ! !
ॐ ह्रीं शान्ति-वीर-चन्द्र-महावीरकीर्ति गुरुभ्यो नमो नमः ! !

१

स्त्री : सृष्टि का गौरव

स्त्री और पुरुष सृष्टि के दो गौरवशाली स्तम्भ हैं। इन्हीं पर सारे जगत का भार है। इनमें भी स्त्री प्रथम है, पुरुष बाद में। संसार में स्त्री की महत्ता सर्वोपरि है क्योंकि स्त्री जाति जगत की जननी है, संसार के महान् पुरुषों की जन्मदात्री है।

स्त्रीतः सर्वज्ञनाथः सुरनतचरणो जायतेऽबाधबोधः,
तस्मात्तीर्थं श्रुताख्यं जनहितकथकं मोक्षमार्गावबोधः ।
तस्मात्तस्माद्विनाशो भवदुरिततते: सौख्यमस्माद्विबाधं,
बुध्वैवं स्त्रीं पवित्रां शिवसुखकरणीं सज्जनः स्वीकरोति ।।

"जिनके चरणों में देव नमस्कार करते हैं, जो अनुपम अबाध ज्ञान के धारी हैं, जिनसे श्रुत नाम के तीर्थ की उत्पत्ति होती है, जो मनुष्यों के हित का कथन करने वाले हैं, मोक्षमार्ग के उपदेशक हैं; जिनकी दिव्य वाणी के प्रभाव से जीवों की भवदुरित की सन्तति नष्ट हो कर बाधा-रहित सुख की प्राप्ति होती है; ऐसे वीतराग, सर्वज्ञ एवं हितोपदेशी तीर्थङ्करों का जन्म स्त्री से होता है; ऐसा जानकर सज्जन पुरुष शिवसुख-प्रदान करने वाली पवित्र स्त्री को स्वीकार करते हैं।"

नारी-नारी मत कहो, नारी रत्न-सुखान ।
नारी से पैदा हुए, चौबीसों भगवान ।।

महिला जाति जगज्जननी है। तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र और कामदेव आदि महापुरुषों की जन्मदात्री नारी ही है। जननी ही अपनी उदरस्थ सन्तान को अपने पुनीतभावों से सद्गुणों की शिक्षा देती है। माता के परिणाम जिस प्रकार के होते हैं, उदरस्थ बालक के संस्कार भी वैसे ही हो जाते हैं अतः सन्तान की प्रथम शिक्षिका उसकी जननी ही है।

स्त्री : पुत्री, भगिनी

प्रथम अवस्था में स्त्री, पुत्री और भगिनी के रूप में अपने पिता और भाई के प्रति जो निर्मल, अगाध प्रेम अपने हृदय में रखती है, उसकी उपमा संसार में कहीं नहीं मिलती।

"पुनाति पूयते, पितरं त्रायते इति पुत्रः।"

पुन्नाम्नोनरकात् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

नरकादि से वा दुःखों से माता-पिता की रक्षा करे, उनको पवित्र करे, उसे पुत्र कहते हैं। 'पुत्र' शब्द में इन् प्रत्यय जुड़ने से 'पुत्री' शब्द बनता है अर्थात् कुल को पवित्र करने वाली पुत्री कहलाती है। 'कन्या' कनति, कन् दीप्तौ अर्थात् जो कुल को देदीप्यमान करे उसे कन्या कहते हैं।

कन्या, भाई की भगिनी कहलाती है। भगं कल्याणं इच्छति भ्रातुः असौ भगिनी। जो भाई का कल्याण चाहती है उसे भगिनी कहते हैं।

स्त्री : पत्नी

पत्नी रूप में पति की सहधर्मिणी, अर्धांगिनी बनकर स्त्री जो सेवा करती है, उसकी तुलना जगत में किसी से नहीं की जा सकती है। जिस प्रकार छाया हमेशा साथ रहती है, सम्पत्ति में विपत्ति में किसी भी अवस्था में साथ नहीं छोड़ती है उसी प्रकार पत्नी भी अपने पति के सुख-दुःख में उसका साथ देती है और अपने स्वामी को प्रसन्न और तुष्ट रखने के लिए अपना सर्वस्व तक देने में नहीं हिचकती। वह पति की सेवा दासी की भाँति करती है। उसको प्रत्येक कार्य में सम्मति देने के लिए मंत्रीवत् व्यवहार करती है। माता के समान अपने हृदय की शुभ भावना से पति को भोजन कराती है और पति को प्रसन्न रखने के लिए अपना शरीर भी पति को सौंप देती है; इस प्रकार अनेकानेक महती सेवाएँ वह अपने पति के लिए जीवनपर्यन्त निष्पादित किया करती है।

स्त्री : जननी

जननी बन कर नारी जिस भाव से सन्तान का पालन-पोषण करती है वह अवर्णनीय और अनिर्वचनीय है। "फूलात फूल जाइ ये प्रेमात प्रेम आई चा।" फूलों में सर्वोत्कृष्ट फूल जाई

का है और प्रेम में सर्वोत्कृष्ट प्रेम माता का है। मातृ-हृदय का वात्सल्य अन्यत्र नहीं पाया जाता। माता स्वयं भूखी-प्यासी रह कर भी अपनी सन्तान का पालन करती है। अपनी सन्तान के लिए सर्दी-गर्मी आदि के अनेक कष्ट सहन करती है। कितनी बाधाओं के बीच रहकर भी सन्तान की मंगल-कामना करती है; माता के अनुभवों का अनुमान माता बनकर ही लगाया जा सकता है अन्यथा नहीं।

पूज्य समन्तभद्राचार्य ने सम्यग्दर्शन को स्त्री के विविध रूपों से उपमित किया है—

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीतात्,
जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः॥

जिस प्रकार शीलवती नारी अपने पति को सुख देती है, उसी प्रकार सप्त शीलों से युक्त सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी मुझे सुख देवे। जैसे सुतवत्सला माता अपने पुत्र का लालन-पालन करती है वैसे ही हे सम्यग्दर्शनरूपी माता ! तू मेरी रक्षा कर। जिस प्रकार गुणवती कन्या अपने पिता के वंश को समुज्ज्वल बनाती है—उसी प्रकार अष्टमूलगुण सहित सम्यग्दर्शन रूपी कन्या तू मुझे पवित्र कर।

इस प्रकार विविध अवस्थाओं में स्त्री जाति की सेवा समस्त जगत में असाधारण महत्त्व की है। और क्या कहें, जब मनुष्य पर सङ्कट आता है तब वह पिता का स्मरण न करके 'माँ' को ही पुकारता है। अतः गौरवशालिनी स्त्री जाति सम्माननीय है, उपेक्षणीय नहीं। मनु ने कहा है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।"

जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता रमण करते हैं। जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़ कर कहा गया है—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" जननी और जन्मभूमि में भी जननी का स्थान प्रथम है। जननी, माता, माँ की समानता खोजने पर भी नहीं मिल सकती। धन्य है मातृस्वरूप !

गौरवशाली अतीत :

अतीत में अनेक स्त्रियों ने अपने व्यक्तित्व और सत्कार्यों से जो अमर ख्याति अर्जित की है, वह आज भी हमारा मार्ग-दर्शन कर रही है। जिन महासतियों के सच्चरित्र के प्रभाव से यह भूतल सुशोभित हुआ है, उनका पवित्र नाम कौन नहीं जानता !

सती सीता, अञ्जना, द्रौपदी, अनन्तमती, प्रभावती, मैनासुन्दरी, मनोरमा, चेलना आदि अनेक महाशील शिरोमणि महिलाओं ने अपने शील तथा व्रतों के प्रभाव से असम्भव कार्यों को भी सम्भव कर दिखाया है। इनके चरित्र के प्रभाव से अग्नि का जल, जल का स्थल और स्थल का रमणीक भवन बनने जैसे विलक्षण कृत्य सम्पन्न हुए; इनकी महिमा का वर्णन करना समुद्र को भुजाओं से तैरने के समान है।

यद्यपि स्त्री-पर्याय से अव्यावाध सुख का स्थान मोक्षपद प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि स्त्री की पर्याय पराधीन है; आचार्यों ने मुक्ति का वर्णन करते हुए स्त्रीपर्याय को निन्द्य कहा है तथापि स्त्री के शील का माहात्म्य बताते समय उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी की है।

नारी केवल भोगेषणा की पूर्ति का साधन नहीं—उसे भी स्वतन्त्र रूप से विकसित होने के पूरे सुअवसर हैं। वह स्वयं अपने भाग्य की विधायिका है। वह जीवन में पुरुष की अनुगामिनी वनती है दासी नहीं; उसका भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। चेलनादि महासतियों ने आपत्तिकाल आने पर भी अपना धर्म नहीं छोड़ा। ब्राह्मी, सुन्दरी और राजुल जैसी नारियों ने आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर समाज का और अपना उद्धार किया था। मुस्लिम काल में रत्नावती आदि अनेक नारियों ने अपने प्राण देकर भी शीलधर्म की रक्षा की। उनके कल्याण या आत्मोत्थान में कोई बाधक नहीं वन सका था। स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति अनेक प्रकार के कला-कौशल में भी निष्णात होती थीं। कैकेयी युद्धभूमि में अपने पति की सहायक वनी थी।

स्त्रियाँ विद्याएँ सीखने में भी प्रवीणता प्राप्त करती थीं। 'आदिपुराण' में आद्य तीर्थङ्कर ऋषभदेव अपनी पुत्रियों को शिक्षित होने की प्रेरणा करते हुए कहते हैं—

विद्यावान् पुरुषो लोके, सम्भानं याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते, स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्॥

जैसे लोक में विद्यावान व्यक्ति पण्डितों के द्वारा सम्मान को प्राप्त होता है, वैसे ही विद्यावती स्त्रियाँ भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करती हैं।

'आदि पुराण' में नारी के जननी रूप को वड़ा आदर प्रदान किया गया है। इन्द्राणी ने जननी रूप में मरुदेवी की स्तुति इस प्रकार की है—

"हे माता! तू तीन लोकों की कल्याणकारिणी माता है, तू मंगल करने वाली है। तू ही महादेवी है। तू ही पुण्यवती है और तू ही यशस्विनी है। जो माता तीर्थङ्कर और चक्रवर्तियों को जन्म देती है उस माता के महत्त्व का मूल्याङ्कन कौन कर सकता है! गृहस्थावस्था में तीर्थङ्कर ने जिस जननी की कोख पवित्र की है, उसकी पवित्रता वचनातीत है।"

इस प्रकार नारी जाति का अतीत अनेकानेक नारीरत्नों—सीता, अञ्जना, चेलना, राजुल, अनन्तमती, प्रभावती—के महिमामय पतिव्रतधर्म, अखण्ड ब्रह्मचर्य, अदम्य उत्साह, अडिग धैर्य और प्रशंसनीय वैदुष्य के कारण गौरवान्वित रहा है; स्त्रीसमाज का नाम उन्नत एवं उज्ज्वल करने वाली वे आदर्श महिलाएँ धन्य हैं।

अनुकरणीय वर्त्तमान :

जिस प्रकार भूतकाल में भारत की महिमामयी महिलाओं ने अपने उदात्त जीवन से जगत को सन्मार्ग दिखलाया है, उसी प्रकार वर्त्तमान भोगप्रधान इस कलियुग में भी उत्तम आर्यिका-व्रत धारण कर गौरवशालिनी, आदर्श एवं विश्ववन्द्य महिलाओं ने अध्यात्म का उत्तम पथ प्रशस्त किया है। उनके आत्मतेज और कठोर तपस्या से महिला-समाज का मस्तक उन्नत है। वे स्व-पर कल्याण करने में निशि-दिन तत्पर हैं। मैं ऐसी ही कतिपय आर्याओं का यहाँ नामोल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही हूँ।

प्रातःस्मरणीय, परम पूज्य चारित्रचक्रवर्ती, ३६ दिन का अनशन कर शास्त्रोक्त विधि से सल्लेखना मरण करने वाले, निस्पृही, वर्तमान काल की पापप्रवर्तिनी एवं धर्म-विमुख जनता को धर्ममार्ग में लगाने वाले सूर्यतुल्य दिगम्वर सन्त आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज का नाम कौन नहीं जानता! आपने दक्षिणायन और उत्तरायण सूर्य के समान दक्षिण और उत्तर प्रान्त के कोने-कोने में धर्म का प्रकाश विकीर्ण किया था। वर्तमान सदी में दिगम्वर साधुओं के निर्वाध विहार-मार्ग के पुरस्कर्ता, समस्त भारत की हजारों मीलों की पद-यात्रा कर संख्यात जीवों को त्याग एवं चरित्र के विमल पथ पर अग्रसर होने के लिए अपने समुज्ज्वल चरित्र के पावन प्रभाव से प्रेरित कर जैनत्व की आभा को विकसित करने वाले परमोपकारी, अन्तरंग-वहिरंग परिग्रह के त्यागी, चारित्रचक्रवर्ती १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज के अनेक शिष्य हुए। परम पूज्य १०८ मुनिराज श्री वीरसागरजी, मुनिश्री चन्द्रसागरजी, मुनिश्री नेमीसागरजी, मुनिश्री कुन्थुसागरजी, मुनिश्री सुधर्मसागरजी, मुनिश्री धर्मसागरजी आदि अनेक तपस्वी दिगम्वर सन्तों ने सहर्ष आपका शिष्यत्व स्वीकार कर मुनिमार्ग को गति प्रदान की है।

धन्य हैं, परम तपस्वी, शान्तस्वभावी, परम पूज्य १०८ पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज! जिन्होंने ब्रह्मत्व की उपलब्धि के लिए राग-द्वेष आदि अन्तरंग तथा वस्त्रादि वहिरंग परिग्रह का त्याग कर विशुद्ध दिगम्वरत्व को स्वीकार किया; जो भोगाकांक्षा, यशोलिप्सा आदि प्रवृत्तियों से विरत हो आत्मशोधन की मङ्गल साधना में संलग्न रहते थे; जो संसार-परिभ्रमण से मुक्ति पाने के लिए विवेकपूर्वक धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ में तत्पर थे और जिन्होंने अतीतकालीन आचार्यों श्री कुन्दकुन्द, अकलङ्क, समन्तभद्र सदृश रत्नत्रय-ज्योति के पद-चिह्नों पर

सती सीता, अञ्जना, द्रौपदी, अनन्तमती, प्रभावती, मैनासुन्दरी, मनोरमा, चेलना आदि अनेक महाशील शिरोमणि महिलाओं ने अपने शील तथा व्रतों के प्रभाव से असम्भव कार्यों को भी सम्भव कर दिखाया है। इनके चरित्र के प्रभाव से अग्नि का जल, जल का स्थल और स्थल का रमणीक भवन बनने जैसे विलक्षण कृत्य सम्पन्न हुए; इनकी महिमा का वर्णन करना समुद्र को भुजाओं से तैरने के समान है।

यद्यपि स्त्री-पर्याय से अव्याबाध सुख का स्थान मोक्षपद प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि स्त्री की पर्याय पराधीन है; आचार्यों ने मुक्ति का वर्णन करते हुए स्त्रीपर्याय को निन्द्य कहा है तथापि स्त्री के शील का माहात्म्य बताते समय उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी की है।

नारी केवल भोगेषणा की पूर्ति का साधन नहीं—उसे भी स्वतन्त्र रूप से विकसित होने के पूरे सुअवसर हैं। वह स्वयं अपने भाग्य की विधायिका है। वह जीवन में पुरुष की अनुगामिनी बनती है दासी नहीं; उसका भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। चेलनादि महासतियों ने आपत्तिकाल आने पर भी अपना धर्म नहीं छोड़ा। ब्राह्मी, सुन्दरी और राजुल जैसी नारियों ने आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर समाज का और अपना उद्धार किया था। मुस्लिम काल में रत्नावती आदि अनेक नारियों ने अपने प्राण देकर भी शीलधर्म की रक्षा की। उनके कल्याण या आत्मोत्थान में कोई बाधक नहीं बन सका था। स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति अनेक प्रकार के कला-कौशल में भी निष्णात होती थीं। कैकेयी युद्धभूमि में अपने पति की सहायक बनी थी।

स्त्रियाँ विद्याएँ सीखने में भी प्रवीणता प्राप्त करती थीं। 'आदिपुराण' में आद्य तीर्थङ्कर ऋषभदेव अपनी पुत्रियों को शिक्षित होने की प्रेरणा करते हुए कहते हैं—

विद्यावान् पुरुषो लोके, सम्मानं याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते, स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्॥

जैसे लोक में विद्यावान व्यक्ति पण्डितों के द्वारा सम्मान को प्राप्त होता है, वैसे ही विद्यावती स्त्रियाँ भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करती हैं।

'आदि पुराण' में नारी के जननी रूप को बड़ा आदर प्रदान किया गया है। इन्द्राणी ने जननी रूप में मरुदेवी की स्तुति इस प्रकार की है—

"हे माता ! तू तीन लोकों की कल्याणकारिणी माता है, तू मंगल करने वाली है। तू ही महादेवी है। तू ही पुण्यवती है और तू ही यशस्विनी है। जो माता तीर्थङ्कर और चक्रवर्तियों को जन्म देती है उस माता के महत्त्व का मूल्याङ्कन कौन कर सकता है ! गृहस्थावस्था में तीर्थङ्कर ने जिस जननी की कोख पवित्र की है, उसकी पवित्रता वचनातीत है।"

इस प्रकार नारी जाति का अतीत अनेकानेक नारीरत्नों—सीता, अञ्जना, चेलना, राजुल, अनन्तमती, प्रभावती—के महिमामय पतिव्रतधर्म, अखण्ड ब्रह्मचर्य, अदम्य उत्साह, अडिग धैर्य और प्रशंसनीय वैदुष्य के कारण गौरवान्वित रहा है; स्त्रीसमाज का नाम उन्नत एवं उज्ज्वल करने वाली वे आदर्श महिलाएँ धन्य हैं।

अनुकरणीय वर्त्तमान :

जिस प्रकार भूतकाल में भारत की महिमामयी महिलाओं ने अपने उदात्त जीवन से जगत को सन्मार्ग दिखलाया है, उसी प्रकार वर्त्तमान भोगप्रधान इस कलियुग में भी उत्तम आर्यिका-व्रत धारण कर गौरवशालिनी, आदर्श एवं विश्ववन्द्य महिलाओं ने अध्यात्म का उत्तम पथ प्रशस्त किया है। उनके आत्मतेज और कठोर तपस्या से महिला-समाज का मस्तक उन्नत है। वे स्व-पर कल्याण करने में निशि-दिन तत्पर हैं। मैं ऐसी ही कतिपय आर्याओं का यहाँ नामोल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही हूँ।

प्रातःस्मरणीय, परम पूज्य चारित्रचक्रवर्ती, ३६ दिन का अनशन कर शास्त्रोक्त विधि से सल्लेखना मरण करने वाले, निस्पृही, वर्तमान काल की पापप्रवर्तिनी एवं धर्म-विमुख जनता को धर्ममार्ग में लगाने वाले सूर्यतुल्य दिगम्बर सन्त आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज का नाम कौन नहीं जानता! आपने दक्षिणायन और उत्तरायण सूर्य के समान दक्षिण और उत्तर प्रान्त के कोने-कोने में धर्म का प्रकाश विकीर्ण किया था। वर्तमान सदी में दिगम्बर साधुओं के निर्बाध विहार-मार्ग के पुरस्कर्ता, समस्त भारत की हजारों मीलों की पद-यात्रा कर संख्यात जीवों को त्याग एवं चरित्र के विमल पथ पर अग्रसर होने के लिए अपने समुज्ज्वल चरित्र के पावन प्रभाव से प्रेरित कर जैनत्व की आभा को विकसित करने वाले परमोपकारी, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह के त्यागी, चारित्रचक्रवर्ती १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज के अनेक शिष्य हुए। परम पूज्य १०८ मुनिराज श्री वीरसागरजी, मुनिश्री चन्द्रसागरजी, मुनिश्री नेमीसागरजी, मुनिश्री कुन्थुसागरजी, मुनिश्री सुधर्मसागरजी, मुनिश्री धर्मसागरजी आदि अनेक तपस्वी दिगम्बर सन्तों ने सहर्ष आपका शिष्यत्व स्वीकार कर मुनिमार्ग को गति प्रदान की है।

धन्य हैं, परम तपस्वी, शान्तस्वभावी, परम पूज्य १०८ पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज! जिन्होंने ब्रह्मत्व की उपलब्धि के लिए राग-द्वेष आदि अन्तरंग तथा वस्त्रादि बहिरंग परिग्रह का त्याग कर विशुद्ध दिगम्बरत्व को स्वीकार किया; जो भोगाकांक्षा, यशोलिप्सा आदि प्रवृत्तियों से विरत हो आत्मशोधन की मङ्गल साधना में संलग्न रहते थे; जो संसार-परिभ्रमण से मुक्ति पाने के लिए विवेकपूर्वक धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ में तत्पर थे और जिन्होंने अतीतकालीन आचार्यों श्री कुन्दकुन्द, अकलङ्क, समन्तभद्र सदृश रत्नत्रय-ज्योति के पद-चिह्नों पर

चलकर वर्तमान शताब्दी में अपने ज्योतिर्मय जीवन से दिगम्बरत्व की दिव्य आभा देदीप्यमान की थी। आप संवत् २०१४ की आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन जयपुर नगर में खानियांजी नामक स्थान पर विशाल चतुर्विध संघ के सान्निध्य में सल्लेखनापूर्वक भौतिक शरीर का परित्याग कर स्वर्गवासी हुए। परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शिवसागरजी, मुनिश्री आदिसागरजी, आचार्यश्री धर्मसागरजी, मुनिश्री श्रुतसागरजी, मुनिश्री जयसागरजी, मुनिश्री सन्मतिसागरजी, मुनिश्री सुमतिसागरजी आदि अनेक निर्ग्रन्थ साधुओं को आपका शिष्य होने का गौरव प्राप्त है। आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज ने जिस प्रकार पुरुष वर्ग को दिगम्बरी दीक्षा देकर उसे कल्याण-मार्ग में प्रवृत्त किया था उसी प्रकार उन्होंने स्त्री वर्ग को भी क्षुल्लिका-आर्यिका के व्रत प्रदान कर उसे कल्याण-पथ में अग्रसर किया। आपकी प्रथम शिष्या होने का गौरव आर्यिका १०५ श्री वीरमती माताजी को है। आपने अल्पवय में ही आर्यिका-दीक्षा ग्रहण कर बहुत समय से अवरुद्ध आर्यिका-मार्ग को आत्मकल्याणार्थी महिलाओं के लिए उन्मुक्त कर स्त्रीवर्ग का महदुपकार किया। आप परम तपस्विनी, शान्तस्वभावी एवं वात्सल्य-मूर्ति हैं।

आर्यिका १०५ श्री सुमतिमती माताजी ने निर्दोषरीत्या आर्यिका के व्रतों का पालन करते हुए लाड़नू नगर में चतुर्विध संघ के सान्निध्य में समाधिमरणपूर्वक णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हुए देहोत्सर्ग किया।

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री विमलमती माताजी ने आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के द्वितीय शिष्य, परम तपस्वी, दृढ़ श्रद्धानी, निर्भीक वक्ता, जिनधर्म के रहस्य के प्रकाशक पूज्य १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के सदुपदेशों से प्रेरित होकर कसावखेड़ा नामक ग्राम में उनसे क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण किए थे। अशुभ कर्मोदय से उन्हें अल्पकाल में ही गुरुवियोग के असह्य दुःख का सामना करना पड़ा। आपने गुरुवियोग के सन्ताप को ज्ञान-जल द्वारा शान्त कर झालरापाटण नामक नगर में पूज्य आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज से आर्यिका के व्रत ग्रहण किए। माताजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन मरुप्रदेश की महिलाओं को सुशिक्षित करने में व्यतीत किया। आपका यह उपकार चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा। ज्ञान-दान के समान कोई दान नहीं है। माता के उदर से पशुतुल्य ज्ञानशून्य शिशु जन्म लेता है। गुरुजन ज्ञान प्रदान कर उसे सच्चे अर्थों में मानव बनाते हैं।

पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज से अनेक नारीरत्नों—आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी, श्री सिद्धमतीजी, श्री शान्तिमतीजी, श्री अनन्तमतीजी, श्री वासमतीजी, श्री ज्ञानमतीजी, क्षुल्लिका जिनमतीजी, चन्द्रमतीजी, पद्मावतीजी—ने क्षुल्लिका आर्यिका के व्रत ग्रहण कर आत्मकल्याण करते हुए भव्यजनों को धर्ममार्ग में लगाया है। इन्हीं में से एक नारीरत्न पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का जीवन-चरित आज इस लेखनी का विषय है।

❖

२

मोहनी से इन्दुमती

जन्मभूमि : डेह (नागौर)

भारतवर्ष के मरुदेश मध्य राजस्थान, जोधपुर मण्डल के अन्तर्गत नागौर में अमरसिंह राठौर जैसे पराक्रमी राजा हो चुके हैं। नागौर से १२ मील पूर्व दिशा की ओर डेह नामका गाँव है। यह ग्राम धन-धान्य से परिपूर्ण है तथा अनेक कूप-वापिकाओं से सुशोभित है। वहाँ कई मील दूर तक बालू का विशाल टीला बना हुआ है। किसी समय में इस टीले में गाँव बसा हुआ था, जिसके चिह्न आज भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। गाँव में सभी तरह के साधन उपलब्ध हैं। गाँव की आवश्यकताओं के अनुरूप राजकीय सेकेण्डरी स्कूल, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, राजकीय प्राथमिक बालिका विद्यालय, राजकीय पशु चिकित्सालय, प्राइमरी हेल्थ सेण्टर, श्री अनाथ गोरक्षा समिति, (जिसके अन्तर्गत असहाय व अपङ्ग गायों, बछड़ों आदि की देखभाल व पोषण आदि की व्यवस्था है।) कबूतरखाना, श्री वीर युवक मण्डल, जैन पाठशाला आदि कई संस्थायें हैं। एक सुन्दर तालाब है जिसके चारों ओर सघन वृक्ष-पंक्तियाँ हैं। राजा, जागीरदारों एवं जैन भट्टारकों के स्मृति-स्थान हैं। अनेक देवस्थान हैं तथा श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ की अतिशययुक्त एक दर्शनीय नसियांजी भी हैं।

धर्मप्रिय, अहिंसाप्रेमी जागीरदार के कोट (गढ़)के सामने एक विशाल चौक है जिसके चारों ओर दुकानें बनी हैं। एक समय था जब यहाँ गुड़, नमक आदि की विशाल मण्डी थी और प्रतिदिन सैंकड़ों ऊँटगाड़ियाँ आया करती थीं। किसी कारणवश व्यापार कम हो गया अतः यहाँ के धनीमानी वणिक् आजीविका एवं व्यापार हेतु अन्यत्र चले गए।

वर्तमान में यहाँ दिगम्बर जैन धर्मानुयायी खण्डेलवाल श्रावकों के करीवन १०० घर हैं। समस्त श्रावक-श्राविकाएँ सदाचार-रत एवं सच्चे देवशास्त्रगुरु के परम निष्ठावान भक्त हैं। यहाँ धर्माराधना के लिए कलापूर्ण, मनोज्ञ मूर्तियों से युक्त उन्नत शिखरों वाले विशाल जिनमन्दिर एवं एक चैत्यालय है। इनमें से एक मन्दिर तथा एक नसियांजी अत्यन्त प्राचीन है। मन्दिरों में चित्ताकर्षक अत्यन्त प्राचीन जिनविम्व हैं तथा अकृत्रिम जिनमन्दिरों के समान उन मन्दिरों में भी यक्ष-यक्षिणी तथा शासनदेवताओं की वहुत प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। इनके दर्शन करने से अकृत्रिम जिनमन्दिरों का स्मरण हो आता है। ये जिनालय भगवान के अभिषेक, पूजन, वन्दना, स्वाध्यायादि के शब्दों से निरन्तर गुंजायमान रहते हैं।

जन्म :

इस ग्राम में खण्डेलवाल जातीयोत्पन्न श्रीमान् चन्दनमलजी पाटनी नामक एक सद्गृहस्थ थे; जिनके शीलवती, शान्तस्वभावी श्रीमती जड़ाववाई नाम की भार्या थी; जिनके कारण परिवार के समस्त कुटुम्वीजनों की रुचि धर्मध्यान में प्रवृत्त हुई है।

आपकी कुक्षि से चार पुत्रों श्री रिद्धकरण जी, श्री गिरधारीमल जी, श्री केशरीमलजी और श्री पूनमचन्द जी एवं तीन पुत्रियों गोपीवाई, केसरवाई एवं सवसे छोटी मोहनी वाई (चरितनायिका) ने जन्म लिया।

विक्रम संवत् १९६२ के श्रावण मास की शुभ घड़ी में चरितनायिका का जन्म हुआ। आनन्द-मंगल छा गया। माता मुख देख कर संतुष्ट हुई। दसवें दिन नामकरण विधि के अनुसार कन्या का नाम मोहनी वाई रक्खा गया। मोहनी वाई यह सार्थक नाम था। जैसा नाम वैसा गुण अर्थात् यह वाल्यावस्था में तो कुटुम्वीजन के मन को मोहित करने वाली थी ही, साथ ही उसका नाम यह प्रकट कर रहा था कि यह वालिका भविष्य में भी जन-जन के मन को मोहित करने वाली होगी। दिन-पर-दिन व्यतीत होने लगे। पुरातन रीति-रिवाज के अनुसार वालिका अक्षराभ्यास से वंचित रही। क्योंकि वर्षों पूर्व घर की वृद्धा स्त्रियों की धारणा थी कि वालिका को घर के वाहर निकालना ही खतरा है। पढ़-लिखकर पुरुषों को वाहर का राजा वनना चाहिये और वनिताओं को विना पढ़े ही घर की रानी। ललनाओं को तो अपनी गृहस्थी का कार्य ही सिखाना चाहिये। विनय, सेवा, सुश्रूषा, गृहकार्य की निपुणता ही स्त्रियों का शृंगार है। यह भी कहा जाता था कि एक घर में दो कलमें नहीं चलतीं इसलिए इस वालिका का शिक्षण नहीं हो पाया।

विवाह :

शनैःशनैः बालिका १२ वर्ष की हो गई । माता-पिता को विवाह की चिन्ता हुई । कन्या के विवाह को चिन्ता होना स्वाभाविक भी है—

गृहस्थानां हि तद्दौस्थ्य-मतिमात्रमरुन्तुदम् ।
कन्यानामप्रमादेन, रक्षणादिसमुद्भवम् ।।३३६।। क्षत्र चूड़ामणि ।।

गार्हस्थ्य जीवन में सबसे वड़ा दुःख है युवति-कन्या के रक्षण की चिन्ता । एक दिन चन्दनमल जी के घर में बधाइयां बजने लगीं । सर्व कुटुम्वी जन का हृदय हर्षोल्लसित हो गया । सौभाग्यवती ललनायें नृत्य-गान करने लगीं । शहनाइयों की मधुर ध्वनि वारात के आगमन की सूचना दे रही थी । अनेक वारातियों के साथ डेह निवासी श्री चम्पालाल जी सेठी दूल्हा वन कर तोरण पर आये । वादित्रों की ध्वनि से दिशायें गूंज उठीं । सौभाग्यवती वनितायें मंगलगीत गाने लगीं । सज्जन गण एक दूसरे पर गुलाल उछालने लगे । आषाढ़ मास की शुभ वेला में मोहनी बाई का श्री चम्पालाल जी के साथ पाणिग्रहण हो गया । गृहस्थी के वंधन में बंध कर मोहनी वाई ससुराल चली गई ।

वैधव्य :

अभी विवाह में बजने वाली शहनाइयों की प्रतिध्वनि भी समाप्त नहीं हो पाई थी, विवाह में आये मेहमान अपने घरों को लौट भी नहीं पाये थे और विवाह-वंधन के वोझिल दायित्व की अनुभूति भी न हो पाई थी, कि शादी के मात्र तीन-चार माह वाद ही इनके पति श्री चम्पालाल जी की इहलीला समाप्त हो गई । सच है कर्म की गति वड़ी विचित्र होती है । कहते हैं कि चन्द्रमा एवं सूर्य को राहू और केतु नामक ग्रह विशेष से पीड़ा, सर्प तथा हाथी को मनुष्यों के द्वारा वंधन और विद्वद्गणों की दरिद्रता देखकर अनुमान लगाया जाता है कि नियति वलवान है[1] और फिर काल ! काल तो किसी को नहीं छोड़ता । जो अपने प्रताप से छहों खण्डों का अधिराजा वना हुआ है और ब्रह्माण्ड में वलवान होकर वड़ा भारी राजा कहलाता है ऐसा चतुर चक्रवर्ती भी ऐसे चला गया मानो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था । इसलिये मन में निश्चय करना चाहिये कि काल किसी को भी नहीं छोड़ता ।

वारह वर्ष की वाल अवस्था; न विवाह की अनुभूति और न वैधव्य का वोध, न मन में किसी प्रकार का विषाद और न पतिवियोग से आंखों में अश्रुधारा । हो भी क्या सकता था इस

---

१. शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनं, गजभुजंगमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां, विधिरहो वलवानिति मे मतिः ।। नीति ।।

अल्पवय में ? परंतु मोहनी वाई के माता-पिता के हृदयों पर तो वज्रपात हुआ था । पुत्री के वैधव्य की मर्मान्तिक पीड़ा से रोगग्रस्त होकर पिताजी तो छह महीने के वाद ही स्वर्गवासी वन गये। अभी तक भी मोहनी वाई को अपनी अवस्था की कोई सुध नहीं थी । वालपन था, अपनी अवस्था का विचार करने योग्य ज्ञान का विकास भी नहीं हुआ था ।

जैसे-जैसे वय वढ़ती गई वैसे-वैसे मोहनी वाई को कुछ-कुछ आभास होने लगा अपनी अवस्था का, स्मरण होने लगा स्त्रीपर्याय की पराधीनता और संसार की असारता का । इस पराधीन पर्याय का नाश करने का एक ही अमोघ उपाय है संयम और संयम-पालन का साधन है ज्ञान। वस, मोहनी वाई संयम-शील की रक्षा करती हुई ज्ञानार्जन करने लगी । यद्यपि शिशु अवस्था में लौकिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिलने से अक्षरज्ञान विशेष नहीं था फिर भी भाविक ज्ञान का विकास विशेष रूप से हो गया जिससे वे वड़े-वड़े विद्वानों के साथ चर्चा करने में भी भयभीत नहीं होती थीं । मोहनी वाई का समय प्रतिक्षण संयम की आराधना की भावना करते हुए व्यतीत हो रहा था ।

आचार्य शान्तिसागर महाराज के संघ का दर्शन :

विक्रम संवत् १६८४, फाल्गुन मास में दक्षिण प्रान्त से १०८ आचार्यवर्य श्री शान्तिसागरजी महाराज का संघ परम पावन तीर्थ श्री सम्मेदशिखर जी (मधुवन) आया । इस महातपस्वी के दर्शनार्थ देश-देशान्तरों के यात्रियों की भीड़ उमड़ पड़ी । शिखरजी के कोने-कोने में यात्रिगण ठहरे हुए थे । जव मोहनी वाई ने सुना कि दिगम्वर साधुओं का संघ आया है तो उनका हृदय पुलकित हो उठा । शीघ्र ही अपने भ्रातृ परिवार के साथ वे भी सम्मेदशिखर जी आयीं ।

दिगम्वर साधुओं का स्वरूप शास्त्रों में तो पढ़ा था, अग्रजों से सुना भी था परंतु साक्षात् दर्शन का लाभ तथा उनकी चर्या का अवलोकन करने का शुभावसर प्रथम ही प्राप्त हुआ था । इन दिगम्वर साधुओं की चर्या देखकर इनके मन की यह भ्रांति नष्ट हो गई कि पंचम काल में निर्दोष चारित्र के पालक दिगम्वर साधु नहीं होते ।

दिगम्वर साधुओं के दर्शन, प्रवचन-श्रवण तथा उनकी दिनचर्या के अवलोकन से मोहनी वाई के अंतरंग में भावना जाग्रत हुई तथा उन्होंने यह दृढ़ निश्चय किया कि मेरे जीवन के क्षण इन महापुरुषों के चरण-सान्निध्य में ही व्यतीत होवें ।

सयम के प्रति झुकाव :

श्री सम्मेदशिखरजी में मुनिराजों के दर्शन से अंकुरित संयमभावना को पल्लवित करने के लिए मोहनी वाई ने दिल्ली, जयपुर, व्यावर, कुचामन आदि अनेक चातुर्मासों में आचार्य संघ में जाकर आहारदान व धर्म-श्रवण का लाभ प्राप्त किया ।

संघस्थ मुनिश्री चन्द्रसागर महाराज के प्रति आपका विशेष आकर्षण हुआ। उनके उपदेश से प्रभावित होकर विक्रम संवत् १९९१ में सुजानगढ़ चातुर्मास में आपने द्वितीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। सत्य है, साधु की संगति सदा सुखकर होती है। कहा भी है कि—

कबिरा संगति साधु की, ज्यों गंधी की वास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तो भी वास-सुवास॥

संयम की ओर बढ़ती हुई मोहनी बाई चन्द्रसागर महाराज के संघ में रहकर लाड़नूँ, लालगढ़, मैनसर, डेह आदि ग्रामों में भ्रमण करके संघ के साथ नागौर में आई।

सप्तम प्रतिमा ग्रहण :

नागौर एक प्राचीनतम नगर है। जहाँ पर विशाल जिनमन्दिर हैं। श्रद्धालु संयमी श्रावकगणों का वहां निवास है। मोहनी बाई की सहेली मथुरा बाई भी नागौर में जैन कन्या पाठशाला में अध्यापिका थीं। श्री चन्द्रसागर महाराज ने बार-बार धर्मोपदेश कर मोहनी बाई एवं मथुरा बाई को सचेत किया। देखो, यह मानव-पर्याय अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त होती है। इसका सार है संयम–'नरस्य सारं किल व्रतधारणं'। आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और निद्रा लेना, कलह करना यह सब तो मानव और पशुओं के समान है।[1]
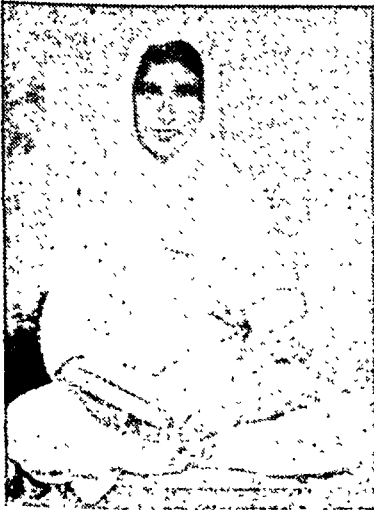
ब्र० मोहनी बाई

महाराज श्री के मधुर वचनामृत के पान से बाईजी ने असंयम का वमन कर सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। अब कुटुम्बियों से आपका ममत्व टूट गया। आज तक तो अकेली थी, अब मथुरा बाई और आप दो हो गई–दो ही नहीं, ग्यारह हो गई अर्थात् एक-एक पृथक्-पृथक् रहते हैं तब तो उनकी जोड़ दो होती है और एक-एक मिल जाने से ग्यारह हो जाते हैं। आप दोनों ही शरीर से दो होते हुए भी मन से एक थीं। इसलिये ग्यारह के समान शक्ति वाली हो गई थीं।

१–आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनः पशुभिः समानाः॥

धैर्यशालिनी :

संयम-नियम से शून्य हृदय वाले भव्यों को धर्मामृत का पान कराते हुए श्री चन्द्रसागरजी महाराज व्यावर पहुंचे । व्यावर चातुर्मासानन्तर जयपुर आये ।

मुनिराज का आगमन सुनकर जनता का हृदय वैसे ही नाच उठा जैसे वर्षाकाल के आगमन को सुनकर मयूर नाच उठता है । जयपुर निवासियों ने महाराज का भव्य स्वागत किया तथा चातुर्मास करने की प्रार्थना की । भव्यों के भाग्य से महाराज ने चातुर्मास करना स्वीकार कर लिया । चातुर्मास निर्विघ्न पूरा हो गया । महाराज श्री विहार करके खानिया में आ गये ।

वालू और पत्थर के टीलों के समीप खानिया (जिन मंदिर) है तब उसके चारों ओर भंयकर अटवी थी ।

परम तपवस्वी, निर्भीक वक्ता श्री चन्द्रसागर महाराज आहार करने के बाद जंगल में चले जाते और तरुतल में बैठ कर आत्मचिंतवन करते । चारों तरफ से आने वाली सिंह की दहाड़ सुनकर भी वे साहसी पुरुष आकुल नहीं होते ।

एक दिन जब उपदेश का समय हुआ तव मोहनी वाई तथा श्री चान्दमल जी बड़जात्या आदि श्रावक महाराजश्री की खोज करने को निकले । थोड़ी दूर गये थे कि जंगल से लकड़ियां वटोरने वाले किसी किसान ने कहा—तुम लोग जंगल में मत जाओ, अभी-अभी एक सिंह इधर से निकला है और जहां पर नागा वावा बैठा है वहां पर गया है । शायद तुम्हारे नागा वावा को सिंह ने भक्षण कर लिया है ।

किसान की वार्ता को सुनकर सर्व श्रावकों का हृदय दहल गया और वे भयभीत होकर वोले—वाई जी ! अपन तो इधर नहीं जायेंगे ।

मोहनी वाई ने कहा—आप लोग सुखपूर्वक घर पर जाकर विश्राम कीजिये । मैं तो अपने गुरुवर के समीप जाऊंगी । जहां पर चन्द्रसागर महाराज के चरण कमल पड़ते हैं उस क्षेत्र में आपत्ति नहीं आ सकती । चन्द्रसागर महाराज की जय ! ऐसा उच्चारण करके मोहनी वाई ने जंगल में प्रवेश किया । पीछे-पीछे श्रावकों की भीड़ थी । एक सघन छायादार वृक्ष के नीचे गुरुदेव को सकुशल विराजमान देख कर सवका हृदय आनन्दित हो गया । महाराजश्री को नमस्कार करके सवने पूछा—स्वामिन् ! यहां पर सिंह आया था । गुरुदेव ने मुस्कुराते हुए कहा—आया था, दर्शन करके चला गया । श्रावकों ने इधर-उधर दृष्टि डाली, शेर जा रहा था और महाराज श्री के स्थान के पास उसके पाँवों के चिह्न अंकित थे । इस घटना से अनुमान लगाया जा सकता है कि

पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज कितने तेजस्वी तपस्वी थे[1] आज भी जिनके यशोगान से जन-जन का मुख मुखरित है—

मिथ्या तम आच्छादित जग में फैला भ्रष्टाचार।
धनमद के अत्याचारों से पीड़ित हुआ जैन संसार ।।
ऐसे विकट समय में जिसने बन्द किया पाखण्ड प्रसार।
उन गुरुवर श्री चन्द्र सिन्धु को नमस्कार हो बारंबार ।।

महाराज श्री के साथ अनेक नगरों में भ्रमण करती हुई तथा नैनवाँ नगर में चातुर्मास करके वीर संवत् २४६५ में महाराज के संघ में आहारदान के लाभ से तथा धर्मोपदेश से अपने जन्म को सार्थक करती हुई ब्र० मोहनी बाई सवाईमाधौपुर पहुंची।

धर्म-प्रभावना :

सवाईमाधौपुर के चातुर्मास में मोहनी बाई ने एक विशाल विधान की योजना की। १०८ कलशों से भगवान का अभिषेक करके सारे नगरवासियों को एक-एक कलश और सौभाग्यवती स्त्रियों को एक-एक शाटिका प्रदान की । रथयात्रा निकाली गई । श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने लिखा है कि—

आत्मा प्रभावनीयो, रत्नत्रयतेजसा सततमेव ।
दानतपोजिनपूजा, विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः ।।

रत्नत्रय तेज के द्वारा अपनी आत्मा की शुद्धि करना अंतरंग प्रभावना है तथा दान, तप, पूजा और विद्याओं के अतिशय के द्वारा जिनधर्म का उद्योत करना बहिरंग प्रभावना अंग है। यह सम्यग्दृष्टि का चिह्न है क्योंकि अंग के बिना अंगी सम्यग्दृष्टि रह नहीं सकता।

क्षुल्लिका व्रत ग्रहण :

श्री चन्द्रसागरजी महाराज के धर्मोपदेश को सुनकर मोहनी बाई के हृदय में वैराग्य के अंकुर फूटने लगे । उन्होंने संसार की असारता का विचार कर महाराजश्री से क्षुल्लिका के व्रत प्रदान करने की याचना की।

इनकी संयम, तप, त्यागमय प्रवृत्ति को देखकर महाराजश्री ने क्षुल्लिका व्रत की स्वीकृति दे दी । महाराजश्री के मुखारविन्द से स्वीकृति सुनकर बाईजी का हृदय आनन्द से ओत-प्रोत हो गया। हर्ष के आंसुओं से आंखें छल-छला उठीं।

१—ये समाचार स्व० श्री चांदमल जी बड़जात्या नागौर वालों ने सुनाये थे जो उनकी प्रत्यक्ष देखी हुई घटना है।

क्षु० इन्दुमती जी

आश्विन शुक्ला १० की शुभ वेला में बाईजी ने एक शाटिका, एक चादर तथा एक थाली-कटोरी के सिवाय सर्व परिग्रह का त्याग कर दिया। अपनी सर्व सम्पदा तीर्थक्षेत्रों में एवं अन्य धर्मकार्यों में वितरित कर दी। आज शरीर से परिग्रह का भार उतर जाने से लाघव आ गया तथा गुणों में गुरुत्व।

महाराजश्री ने इनके गुणानुसार इन्दुमती नाम रखा अर्थात् इन्दु के समान निर्मल मति (बुद्धि) होने से यह नाम सार्थक था।

अब मोहनी बाई इन्दुमती बन गई। जब इनकी सखी मथुरा बाई ने देखा कि मेरी सहेली ने क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण कर लिये हैं तो उनका मन भी गृहस्थाश्रम से उदासीन हो गया। वे विचारने लगीं कि मानव-पर्याय को एक क्षण भी बिना संयम व्यतीत नहीं करना चाहिये। मैंने तो इतना काल व्यर्थ ही खो दिया। कौन जाने किस समय यमराज कण्ठ पकड़ कर ले जाये। संसारी प्राणी व्यर्थ ही मोह-माया में फंसकर आत्मकल्याण से वंचित रहता है। मुझे सुअवसर मिला है—मानव-पर्याय, सद्विचार और गुरुओं का सान्निध्य। इस सुअवसर में आत्मकल्याण करना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार से उत्पन्न हुई संयम की प्रबल भावना से प्रेरित मथुरा बाई ने भी कार्तिक कृष्णा पंचमी के दिन क्षुल्लिका के पद को स्वीकार किया। इन दोनों में परस्पर अटूट धार्मिक स्नेह था। प्रतिक्षण स्वाध्याय ध्यान करते हुए उनका समय व्यतीत होने लगा।

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति ॥

२

आर्यिका दीक्षा

दिगम्बर सम्प्रदाय में स्त्री वर्ग की दो दीक्षाएँ सम्पन्न होती हैं–१ क्षुल्लिका और २ आर्यिका । क्षुल्लिका जी पीछी-कमण्डलु, श्वेत साड़ी और श्वेत चादर के अतिरिक्त सर्व परिग्रह की त्यागी होती हैं, आर्यिका दीक्षा होने पर श्वेत चादर भी छूट जाती है, अब केवल पीछी-कमण्डलु और श्वेत साड़ी मात्र परिग्रह रह जाता है ।

ब्रह्मचारिणी मोहनी बाई जब क्षुल्लिका इन्दुमती बनीं तब उन्होंने भी व्रत धारण कर पीछी-कमण्डलु, श्वेत साड़ी और श्वेत चादर के अतिरिक्त सब प्रकार के सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर दिया । आपके पास जो कुछ धन-राशि थी, उसमें से कुछ तो आपने पहले ही डेह ग्राम में महिलाओं के पूजनादि करने हेतु चैत्यालय के निर्माण में लगा दी । दीक्षा के प्रसंग पर शेष सारी राशि भी अनेक धार्मिक संस्थाओं को प्रदान कर आपने इस परिग्रह रूपी पिशाच से अपना पीछा छुड़ाया और सुख-शान्ति के पथ की अनुगामिनी बन गई ।

द्वितीय वर्षायोग :

कसावखेड़ा का वर्षायोग पूर्ण होने पर संघ ने कुन्थलगिरि की यात्रा की जहाँ समाधि सम्राट् चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज विराज रहे थे । गुरु दर्शन के लिए ही पूज्य चन्द्रसागर महाराज कुन्थलगिरि पधारे थे । अपने गुरु के एवं परम पावन सिद्ध क्षेत्र के—देशभूषण कुलभूषण मुनिराज ने इसी पर्वत पर तपस्या कर मुक्ति रमा का वरण किया था—दर्शन कर क्षु० इन्दुमतीजी और क्षु० मानस्तम्भमतीजी कृतकृत्य हो गई । उनका हृदय पुलकित हो उठा । गुरुओं के, सिद्ध क्षेत्रों के एवं वीतराग प्रभु के दर्शन से जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह

अनिर्वचनीय है। कुछ दिन वहां रुककर संघ आडूल आया। वि० सं० २००१ का चातुर्मास वहीं सम्पन्न हुआ। संघ के चातुर्मास से अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। नैनवां निवासी श्री कजोड़ीमलजी की क्षुल्लकदीक्षा गुरुदेव के हाथों सम्पन्न हुई। आपका नाम क्षु० धर्मसागर रखा गया, आप यथानाम तथा गुण वाले सरल प्रकृति के भद्र परिणामी हैं जो वर्तमान में विशाल संघ के नायक आचार्य धर्मसागरजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हैं।

चातुर्मास के बाद संघ का विहार मुक्तागिरि की ओर हुआ। मुक्तागिरि से साढ़े तीन करोड़ मुनियों ने मुक्ति-पद प्राप्त किया है। पर्वत पर अति मनोज्ञ पावन जिन मन्दिर हैं जिनमें विशाल जिन प्रतिमाएँ हैं, उनके दर्शन से पाप-कालिमा का नाश होता है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। पर्वत पर केशर की वृष्टि होती है, निर्मल नीर का झरना बहता है, पर्वत पर जाने के बाद वापस आने की भावना नहीं होती है।

गुरु वियोग :

मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके महाराज संघ सहित सनावद होते हुए सिद्धवरकूट पहुँचे। फाल्गुन का महीना था। झंझावात के शीतल झकोरों से समस्त संघ ज्वराक्रान्त हो गया। ज्वरग्रस्त होकर संघ संचालक श्री प्रतापमलजी बगड़ा ने सिद्धवरकूट से ही स्वर्ग को प्रयाण किया। सिद्धवरकूट से ऊन पहुँचते ही श्री १०८ हेमसागरजी महाराज तथा क्षुल्लक बोधसागरजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज भी अत्यन्त ज्वरग्रस्त हो गए। इसी स्थिति में संघ बड़वानी पहुँचा। आपके तत्त्वावधान में सुजानगढ़ निवासी श्री चाँदमल धन्नालाल द्वारा निर्मापित मानस्तम्भ की प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न होकर फाल्गुन शुक्ला दशमी के दिन भगवान विराजमान हो गए। चारित्र शिरोमणि चन्द्रसागर महाराज का शरीर प्रतिक्षण कृष्णपक्ष के चन्द्रमा के समान क्षीण होता गया। ज्वर ने निकलने का नाम नहीं लिया तो महाराजश्री को निश्चय हो गया कि अब यह शरीर टिकने वाला नहीं है। तब तीन दिन की समाधि के साथ इस भौतिक शरीर का त्याग कर स्वर्गवासी बन गए। गुरु का वियोग किसके लिए असह्य नहीं होगा अपितु सबके ही हृदय का विदारक था। नवीन दीक्षिता क्षु० इन्दुमतीजी, क्षु० मानस्तम्भमतीजी एवं क्षुल्लक धर्मसागरजी को गुरु वियोग की असह्य वेदना सहन करनी पड़ी। कर्मों की गति विचित्र है, इसके आगे किसी का वश नहीं चलता, यही सोचकर आपने गुरुवियोग से व्यथित हृदय को शांत किया। महाराज की समाधि के समाचार सुनकर समस्त जैन समाज में सन्नाटा छा गया। घोर अन्धकार प्रतीत होने लगा क्योंकि एक अलौकिक दीपक सदा के लिए बुझ गया था।

परमपूज्य चन्द्रसिन्धु :

जिस समय सारा विश्व मिथ्यात्व अन्धकार से आच्छादित था, सुख के इच्छुक प्राणी अज्ञान के गहन कूप में गिरकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो अपने लक्ष्य की प्राप्ति की असफलता का अनुभव

कर रहे थे, मोह की मदिरा का पान करके मानव सन्मार्ग को भूल रहे थे, ऐसे घोर विकट समय में इस भारत वसुन्धरा के महाराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत नादगांव निवासी खंडेलवाल पहाड़्या गोत्रोत्पन्न श्रीमान् नथमलजी श्रेष्ठी की धर्मपत्नी सीता देवी की कुक्षिका रूपी उदयाचल पर प्रकाशपुंज, मिथ्यान्धकार-नाशक, सन्मार्गप्रकाशक, पुत्र रूपी चन्द्र का उदय हुआ। जिसने अपने महामहिमाशाली जीवनकाल में लक्ष लक्ष आत्माओं को अपने सद्ज्ञान रूपी प्रकाश द्वारा पथ प्रदर्शन कर सन्मार्ग में लगा दिया। वही प्रकाशपुंज चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर महाराज के शिष्य स्वामी चन्द्रसागर के रूप में प्रकट हुआ।

श्री चन्द्रसागर वास्तव में चन्द्र थे। उनका शरीर चन्द्रवत् उज्ज्वल था। मन इन्दु-किरण सम शीतल एवं शान्त था। मुख की आभा चन्द्रकिरण सम सौम्य और सुखद थी। जिस भव्य प्राणी ने उसकी शीतल चान्दनी का आश्रय लिया, उसका संसार-ताप दूर हो गया। यद्यपि कितनी ही विपत्तियों के कृष्ण मेघ उनके सामने मंडराये, उनके स्व-पर हितार्थ कार्य में बाधा पहुँचाने का प्रयत्न किया पर फिर भी उन्होंने अपने भक्त रूपी मोक्ष के पथिकों को अपने वचन रूपी किरणों के द्वारा सन्मार्ग का दिग्दर्शन कराया।

वे समदर्शी थे। समस्त प्राणियों पर उनकी ज्ञान रश्मियां बराबर बिखरती थीं। चाहे कोई गरीब हो या अमीर। वे अत्यंत शीतल एवं कोमल हृदयी थे। अत्यंत काले बादलों के समान आई हुई विपत्तियों को हंसते-हंसते सहन करने वाले थे। वे आपत्तियों में मेरुवत् अचल तथा सागर के समान गंभीर रहे। स्व-पर-कल्याण करना उनका धर्म था। भटके हुए को राह बताना उनका कर्म था। उनकी त्याग और तपस्या आज के जड़वादी संसार के लिये एक अलौकिक आदर्श है। उनके वचन आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर प्रकाश डालने वाले थे। वे भोगाकांक्षा, यशोलिप्सा से कोसों दूर थे।

किसी प्रकार का प्रलोभन, ख्याति, पूजा-लाभ की प्रबल वायु उनके मेरुवत् हृदय को नहीं हिला सकी। सत्य जिनागम के रहस्य का उद्‌घाटन करने के लिये उनके विरोधी दलों ने उनका विरोध किया परंतु सत्पथदर्शक ने अपने ध्येय को नहीं छोड़ा।

उन्होंने संयम के अमृत से भव्य चातकों के असंयम के ताप को दूर किया, संसार रूपी समुद्र के भंवरों में गोते खाने वाले भव्यों को व्रतों का हस्तावलंबन देकर बाहर निकाला तथा भव्य प्राणियों के अज्ञान अंधकार से व्याप्त चक्षुओं को ज्ञान शलाका से खोला। उनकी प्रशंसा आचार्य शांतिसागरजी महाराज भी करते थे। एक बार भी जिन्होंने इनके दर्शन किये हैं वह इनको भूल नहीं सकता। आपका एक एक वचन अमूल्य था। ऐसे परम तपस्वी स्पष्टवादी, निष्परिग्रही, कुंदकुंदादि आचार्यों के पद चिह्नों पर चलने वाले गुरुदेव के चरणों में सर्व लोगों ने असंख्यात बार वन्दन नमस्कार किया तथा उनके गुणों का स्मरण करके आंखों में अश्रु धारा बहने लगी।

मिथ्यात्व अन्धकारनाशक सूर्य, भव्य भवरोग नाशक धन्वन्तरी, ज्ञानध्यान के दीप्तिमान पुंज, करुणासागर गुरुदेव के शरीर का दाह संस्कार भक्त गणों ने बड़े व्यथित हृदय से किया एवं सर्व जैन समाज ने अश्रुभरे नयनों से श्रद्धांजलि अर्पित की।

गुरु का वियोग किसके लिये असह्य नहीं होगा अपितु सबके हृदय का विदारक था। गुरुदेव के वियोग से इन्दुमतीजी तिलमिला गई। जिस प्रकार वृक्ष के उखड़ जाने पर फल, कलियां आदि मुरझा जाती हैं उसी प्रकार चन्द्रसागर रूपी वृक्ष के उखड़ जाने पर उनके शिष्य रूपी पुष्प और इन्दुमतीरूपी कली मुरझा गई। असह्य दुःख का पर्वत अकस्मात् आ पड़ा। किसने सोचा था कि असमय में ही गुरुदेव का वियोग हो जायेगा।

इस अघटित घटना से इन्दुमतीजी के हृदय में भारी चोट पहुंची। वज्रपात के समान उनका हृदय विदारित हो गया परंतु उपाय क्या था अश्रुधारा बहाने के सिवाय। गुरुदेव का आश्रय सदा के लिये छूट गया। "होनहार होतव्य को टाल सके ना कोय"। अन्त में श्री गुरु के वचनों को हृदय में धारण करके धैर्य धारण किया। जैसे सरोवर के सूख जाने पर पक्षीगण इधर-उधर चले जाते हैं उसी प्रकार चन्द्रसागर रूपी सरोवर के सूख जाने से उनके शिष्यगणरूपी पक्षी इधर-उधर विहार कर गये।

तृतीय वर्षायोग :
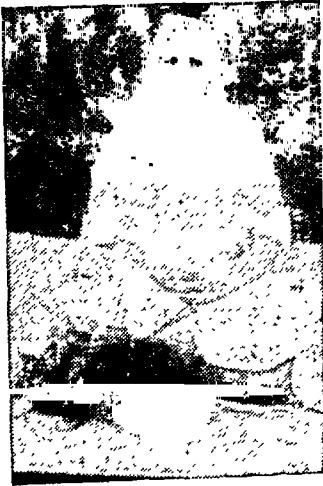
विमलमतीजी

स्वर्गीय गुरुदेव को हृदय में धारण कर क्षु० इन्दुमतीजी, क्षु० मानस्तम्भमतीजी और क्षु० धर्मसागरजी के साथ विहार करते हुए राजस्थान के पिड़ावा नगर में पधारीं जहां पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज विराज रहे थे। आपके दर्शनों से सबको अतीव आह्लाद हुआ। यहां क्षुल्लिका मानस्तम्भमतीजी की आर्यिका दीक्षा सम्पन्न हुई। अब वे विमलमतीजी हो गईं। क्षुल्लिका इन्दुमतीजी संघ के साथ विहार करती हुई झालरापाटण पहुँची, वहाँ परम पूज्य वीरसागरजी महाराज का चातुर्मास हुआ। आपने भी वि० सं० २००२ का यह चातुर्मास संघ में ही रहकर धर्माराधनापूर्वक सम्पन्न किया। झालरापाटण में शान्तिनाथ भगवान का विशाल विम्ब है जिसके दर्शन करने से मन विभोर हो जाता है, वाणी गद्‌गद हो जाती है, मस्तक अपने आप नम जाता है तथा कर वन्दना के लिए जुड़ जाते हैं। यहाँ विशेष अवसरों पर मनों दूध-दही आदि विपुल सामग्रियों सहित अभिषेक पूजन होता था जिससे काफी धर्म प्रभावना हुई। चातुर्मास-समाप्ति पर मार्गस्थ ग्राम-नगरों में धर्म की प्रभावना करता हुआ संघ टोडारायसिंह पहुंचा।

चतुर्थ वर्षायोग :

गुरुभक्त श्रद्धालु श्रावकों की विशेष प्रार्थना पर गुरुदेव श्री वीरसागरजी महाराज ने यहां चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान की। वि० सं० २००३ का चातुर्मास क्षुल्लिका इन्दुमतीजी ने

भी संघ के साथ टोडारायसिंह में ही किया। यहाँ पर विशाल सात मन्दिर हैं। जैन धर्म पर दृढ़ आस्था रखने वाले खण्डेलवाल और अग्रवालों के लगभग १५० घर हैं। संघ के चातुर्मास से समाज में विशेष जागृति आई। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने व्रत ग्रहण किये। श्री मोहनलालजी छाबड़ा व उनकी पत्नी ने पंचम प्रतिमा के व्रत लिए। अनन्तर श्री मोहनलालजी ने पू० १०८ मुनिश्री सन्मति-सागरजी के रूप में महाव्रत अंगीकार कर २५ नवम्बर १९८० को उदयपुर में श्रेष्ठ समाधिमरण किया है। श्री शंकरलालजी बाकलीवाल व उनकी पत्नी ने दूसरी प्रतिमा के व्रत लिये। श्रीमती नवला बाई व श्री गुलाबचन्दजी टोंग्या की धर्मपत्नी ने भी व्रत धारण किये। श्री गुलाबचन्दजी आगे वढ़कर मुनि जयसागरजी होकर भव्य प्राणियों को सन्मार्ग में लगाते हुए आत्म कल्याण कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य कई श्रावक-श्राविकाओं ने शक्त्यनुसार व्रत-नियम लिये। महिला-समाज हेतु अभिषेक-पूजन के लिए एक पृथक् चैत्यालय भी स्थापित किया गया जो आज अपने विशाल रूप में विद्यमान है। टोडारायसिंह का समाज अच्छा धर्मपरायण गुरुभक्त समाज है। वहाँ प्रायः त्यागियों, व्रतियों, साधु-सन्तों का समागम वना रहता है।

पंचम वर्षायोग :

टोडारायसिंह से विहार कर संघ राजस्थान की राजधानी गुलाबीनगरी जयपुर में पहुँचा। संवत् २००४ का चातुर्मास चरितनायिका ने वीरसागरजी महाराज के संघ के साथ यहीं सम्पन्न किया। क्षुल्लिकाजी को आर्यिका कीर्तिमतीजी का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ। जयपुर जैनपुर है, यहाँ अनेक मन्दिर, चैत्यालय, नसियांजी हैं। मुनिवृन्द एवं आर्यिकाजी क्षुल्लिकाजी की प्रेरणा से अनेक स्त्री-पुरुषों, बालक बालिकाओं ने देवदर्शन, जल छानकर पीना, रात्रिभोजन त्याग आदि के नियम लिये। महिला समाज में पुरुषों से भी अधिक उत्साह व उमंग थी। संघ के सान्निव्य से, विखरती धार्मिक आस्था पुनः सुदृढ़ एवं गतिशील हुई। सदाचार की ओर प्रवृत्ति हुई। इस तरह जन समूह में एक नयी धार्मिक चेतना प्रकट हुई।

छठा वर्षायोग :

वि० सं० २००५ का वर्षायोग क्षुल्लिका इन्दुमतीजी ने आर्यिका १०५ श्री विमलमतीजी के साथ नागौर में सम्पन्न किया था। पूज्य १०८ गुरुदेव श्री चन्द्रसागरजी के वि० सं० १९९२ में यहां आने से पहले कई वर्षों तक यहाँ किसी त्यागी वर्ग का चातुर्मास तो दूर आगमन तक नहीं हुआ था। इसके वाद त्यागी वर्ग का आगमन तो हुआ पर चातुर्मास नहीं। वि० सं० २००५ में यह पहला ही अवसर था जव 'माताजी' का चातुर्मास हुआ अतः समाज में आशातीत उत्साह था; इसकी कल्पना इसी बात से की जा सकती है कि माताजी दो थीं और चौके लगते थे वहत्तर। सर्व प्रथम नागौर में इन्हीं आर्यिका द्वय के सान्निध्य में सिद्धचक्र मण्डल विधान आयोजित हुआ था। जिसमें कुचामन शहर से सेठ गम्भीरमलजी पाण्ड्या द्वारा निर्मापित 'रजत रथ' लाया गया था। इस अवसर पर अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

मेरी (सुपार्श्वमती) तीव्र भावना थी कि मैं भी नागौर जाकर आर्यिका श्री के दर्शन कर अपने को पवित्र करूँ परन्तु अशुभ कर्म के उदय व स्त्री-पर्याय की पराधीनता के कारण मेरी भावना क्रियान्वित नहीं हो सकी। आर्यिका श्री के नागौर चातुर्मास करने की सूचना जब से मिली थी तभी से उनके दर्शनों की उत्कट अभिलाषा लगी थी; यद्यपि सात वर्ष की आयु में मैंने श्री चन्द्रसागरजी महाराज के संघ के दर्शन अवश्य किये थे तथापि आर्यिका-माताओं की चर्या से मैं सर्वथा अनभिज्ञ थी। प्रत्यक्ष तो दर्शन किये ही नहीं थे, शास्त्रीय ज्ञान भी नहीं था कि आर्यिका किसे कहते हैं ? उनकी चर्या कैसी होती है ? चातुर्मास के दिन बीतते जा रहे थे, आर्यिका श्री के दर्शन की उत्कण्ठा बलवती होती जा रही थी; वीतराग प्रभु से प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्या समय यही प्रार्थना करती कि हे प्रभो ! मुझे भी कभी पूज्य पुरुषों के दर्शन होंगे, उनके सान्निध्य में रहने का अवसर मिलेगा। मेरे पूज्य पिताजी एवं भाईजी सिद्धचक्र महोत्सव के अवसर पर माताजी के दर्शन कर आए थे और सबके समक्ष प्रभावना अङ्ग की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया करते थे, जिसे सुनकर मेरा हृदय गद्‌गद हो जाता था हृदय में आर्यिका-दर्शन की प्रवल इच्छा तरंगें उठतीं और यों ही विलीन हो जातीं। अपने कार्य की सिद्धि के लिए मैंने मंत्रराज 'णमोकार मंत्र' का अवलम्बन लिया जिसकी महिमा पिता श्री के मुख से मैं कई बार सुन चुकी थी। वास्तव में णमोकार महामंत्र की महिमा अतुल है। इसके प्रभाव से दुष्कर से दुष्कर कृत्य भी सुसम्पन्न हो जाते हैं।

लेखिका को प्रथम दर्शन :

मेरा विश्वास सफल सिद्ध हुआ। णमोकार मंत्र के प्रभाव से अप्रत्याशित बात हुई; चातुर्मास के बाद आर्यिका द्वय का डेह ग्राम जाना सुनिश्चित था परन्तु मेरे नवकार-स्मरण से पूज्य श्री इन्दुमतीजी का विचार मैनसर ग्राम में आने का हुआ। पौष का भयङ्कर शीत ! परन्तु उसकी परवाह न कर २६ मील के मरुदेशीय रेतीले मार्ग को दो दिन में पार कर माताजी मैनसर आ पहुँची। आर्यिकाजी का आगमन सुन कर एवं दर्शन पाकर भव्य जीवों के मन कमल खिल उठे। १३ वर्ष पूर्व की स्मृति सजीव हो उठी जब आचार्य कल्प महान् तपस्वी योगिराज १०८ श्री चन्द्र-सागरजी महाराज ने इस क्षेत्र में विहार कर अपने चरणकमलों से यहाँ का कण-कण पवित्र किया था। पूज्य माताजी के प्रथम दर्शन से मुझे जिस अनुपम आनन्द की अनुभूति हुई, उसे मेरी लेखनी लिपिवद्ध करने में अशक्त है।

प्रथम आहारदान और सदा के लिए नमक त्याग :

पूज्य माताजी के साथ गट्टू बाई, दाखा बाई, केशर बाई आदि ब्रह्मचारिणी बाइयाँ थीं। संध्या काल था। सबके यथायोग्य स्थान पर ठहर जाने के बाद मैं अपने घर आई। पूज्य पिताश्री बोले—"तुम्हें जो कुछ करना है, सो कर लो; यह स्वर्ण अवसर बार-बार नहीं मिलता।" मैंने मुख से तो कुछ नहीं कहा परन्तु रातभर यही विचार उठते रहे कि क्या करूँ ? क्या जीवन भर

के लिए इनका साथ स्वीकार कर लूँ ? प्रातः काल अशुद्ध जल का परित्याग कर माताजी को आहार दिया। प्रथम आहार-दान के लाभ से जिस आनन्द की अनुभूति हुई वह वचनातीत है। माताजी ने विना नमक का आहार लिया। उनके आहार कर चले जाने के बाद जब मैं साग-भाजी में नमक मिलाने लगी तो पिताजी ने कहा—"क्या तुम विना नमक के नहीं खा सकती ? क्या वह शक्ति तुममें नहीं है ?" उनके वचन सुनकर हृदय में एक अपूर्व साहस जागृत हुआ। "क्या मैं नमक नहीं छोड़ सकती ? माताजी भी तो मेरी जैसी ही हैं। क्या उन जैसी शक्ति मुझमें नहीं है ?" ये विचार आते ही मेरी नमक खाने की इच्छा समाप्त हो गई। उस दिन से फिर कभी मेरी जिह्वा ने नमक का स्पर्श नहीं किया।

मध्याह्न में माताजी का प्रवचन होता था, सुनने के लिए समस्त जैन-अजैन बन्धु-भगिनी एकत्र होते थे। उनकी मधुर वाणी एवं मारवाड़ी भाषा में समझाने की शैली बहुत प्रिय लगती थी, कथा प्रसंग रोचक होने से उठने की इच्छा नहीं होती थी। संध्या समय मैं माताजी के पास चौबीस ठाणा, भक्ति पाठ आदि का अध्ययन करने भी जाती थी। एक माह पूर्ण हुआ परन्तु माताजी ने यह कभी नहीं कहा कि तुम व्रत ग्रहण करो। मेरे मन में सर्वदा यही भावना बनी रहती थी कि कब मुझमें इतनी योग्यता आ सकेगी कि जिसे देखकर स्वयं माताजी के मुखारविन्द से ये शब्द निस्सृत हों कि तुम व्रती बनो। मैंने सोचा—दो दिन बाद माताजी का विहार हो जाएगा; मैंने तो अभी कुछ संयम–त्याग लिया ही नहीं। माताजी के साथ हो लेने की मेरी प्रबल इच्छा थी तो मैंने स्वयं ही माताजी से निवेदन किया कि आप मुझे क्षुल्लिका के व्रत देकर अनुगृहीत कीजिए। माताजी बोलीं—मैं स्वयं क्षुल्लिका हूँ, तुम्हें क्षुल्लिका व्रत नहीं दे सकती, तुम सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण करो और विद्याध्ययन में चित्त लगाओ। वात्सल्यपूर्ण वाणी श्रवण कर मुझे अपरिमित हर्ष हुआ। मैंने शीघ्र ही सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये। मैं माताजी के वात्सल्य में इतनी बँध चुकी थी कि अब उनसे एक मिनट भी अलग होने की भावना नहीं होती थी। दो दिन बाद माताजी का विहार लालगढ़ की ओर हुआ। यह मैनसर से छह मील दूर है। वहाँ उस समय श्रावकों के लगभग २०-२५ घर थे। वहाँ एक घटना घटी—कुछ दिनों से प्रतिदिन मध्याह्न में गाँव में अग्नि का प्रकोप होता था जिससे कितने ही घर जलकर भस्म हो जाते थे, सामान नष्ट हो जाता था। माताजी को जब यह बात बताई गई तो उन्होंने शान्ति धारा मंत्र का मंत्रपूत जल छिड़कने को कहा। ऐसा करने से प्रतिदिन का अग्नि प्रकोप दूर हो गया जिससे वहाँ के निवासी माताजी से बहुत प्रभावित हुए।

विशाल संघ का चातुर्मास (नागौर) :

लालगढ़ में दो माह ठहर कर माताजी डेह पहुँचीं। डेह आपकी जन्म भूमि है। वहां आपके मधुर प्रेरणास्पद उपदेश से अनेक भाई-बहनों ने व्रत नियम अंगीकार किये। डेह ने भावना

होते हुए वि० सं० २००६ में आप फिर वर्षा-योग के निमित्त से नागौर पहुँची। परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गुरुदेव १०८ श्री वीरसागरजी महाराज भी वहाँ संघ सहित पधारे थे। विशाल संघ के दर्शन से जन-जन का मन प्रफुल्लित था। दो मुनिराज—१०८ श्री वीरसागरजी, १०८ श्री आदिसागरजी, तीन क्षुल्लकजी— १०५ श्री धर्मसागरजी, १०५ श्री शिवसागरजी एवं १०५ श्री सिद्धसागरजी चार आर्यिकाजी—१०५ श्री वीरमतीजी, १०५ श्री सुमतिमतीजी, १०५ श्री विमलमतीजी एवं १०५ श्री पारसमतीजी—तथा तीन क्षुल्लिकाजी—क्षु. इन्दुमतीजी, सिद्धमतीजी, शान्तिमतीजी—इस प्रकार कुल बारह पीछी थीं। ब्र० सूरजमलजी, ब्र० पण्डित भूरामलजी (स्व० १०८ आचार्य श्री ज्ञान-सागरजी) ब्र० मोहनलालजी (अधुना १०८ मुनि श्री सन्मतिसागरजी), ब्र० नेमीचन्दजी (अधुना, १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी), ब्र० चाँदमलजी, ब्र० धूलजी (१०८ मुनि श्री पद्म सागरजी), ब्र० कजोड़मलजी, ब्र० कस्तूरीबाई, ब्र० हीराबाई, ब्र० भँवरीबाई (अधुना आर्यिका-पार्श्वमतीजी), ब्र० सोनाबाई, ब्र० मुकनीबाई आदि अनेक व्रतीजन थे। इस विशाल संघ का सान्निध्य पाकर जैन समाज का प्रत्येक सदस्य आह्लादित था। १४ वर्ष पूर्व प्रातः स्मरणीय गुरुदेव १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज जो धर्म बीज बो गये थे उसे ही पल्लवित पुष्पित करने मानो इस विशाल संघ सहित पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज का पधारना हुआ था। उस समय नागौर नगर में पानी का अभाव था। अनावृष्टि के कारण कुए, तालाब सब सूख गये थे। बहुत दूर-दूर से पानी लाना पड़ता था। अजैन लोग कहते थे ये नग्न साधु आए हैं अतः वर्षा ही नहीं हो रही है, ये दर्शन करने योग्य भी नहीं हैं। आदि अनेक प्रकार की चर्चा होने लगी थी परन्तु नीति वाक्य है कि—

पद्मिनी राजहंसाश्च, निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः।
यं देशमुपसर्पन्ति, सुभिक्षं तत्र जायते ॥

(पद्मिनी स्त्री, राजहंस और निर्ग्रन्थ तपस्वी जिस क्षेत्र में चले जाते हैं वहाँ सुभिक्ष होकर परम शान्ति प्राप्त होती है।) इस बात को सत्यार्थ करने के लिए ही मानो अकस्मात् इतनी मूसलाधार वृष्टि हुई कि जिससे समस्त तालाव कूप आदि जल से परिपूर्ण हो गए। अव तो नागरिक वन्धु जैन तप-स्वियों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे। आषाढ़ शुक्ला एकादशी को १०५ क्षुल्लक श्री शिवसागरजी महाराज की मुनि दीक्षा का भव्य समारोह हुआ। वैराग्य के इस अद्भुत प्रसंग के अवलोकनार्थ डेह, लाडनूं, सुजानगढ़, मेड़ता सिटी, मेड़ता रोड आदि स्थानों के सैंकड़ों स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए थे। इसी अवसर पर मूलतः डेह निवासी महाराष्ट्र प्रान्तीय, ४५ वर्षीय श्री चन्दूलालजी कासलीवाल की भी क्षुल्लक दीक्षा सम्पन्न हुई थी। वाद में आपने फुलेरा के पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर प० पू० १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के करकमलों द्वारा विशाल चतुर्विध संघ के समक्ष दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी। अपने दूसरे ही चातुर्मास में समाधिमरण कर आप स्वर्गवासी हुए। आपका नाम सुमतिसागरजी था।

इस नागौर चातुर्मास में पूज्य श्री वीरसागरजी महाराज की पीठ में एक अदीठ फोड़ा हो गया था इस कारण समाज तो आकुल-व्याकुल था परन्तु महाराजश्री के मुख पर लेशमात्र भी व्यग्रता नहीं थी। शरीर के प्रति उनका पूर्ण निर्ममत्व भाव था। धन्य है उनकी निस्पृहता।

आर्यिका दीक्षा :

आ० इन्दुमतीजी का दीक्षा समारोह

चरितनायिका क्षु० इन्दुमतीजी ने पूज्य गुरुदेव से आर्यिका दीक्षा प्रदान करने की विनय की। संसार, शरीर और भोगों से माताजी की पूर्ण विरक्ति देखकर गुरुदेव ने उन्हें आर्यिका दीक्षा प्रदान करने की स्वीकृति दे दी। आसोज शुक्ला दशमी सं० २००६ को पूज्य क्षुल्लिका जी की आर्यिका दीक्षा पूज्य गुरुदेव के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। इस अवसर पर क्षु० सिद्धमतीजी व क्षु० शान्तीमतीजी को आर्यिका दीक्षा तथा अनन्तमतीजी की क्षुल्लिका दीक्षा भी हुई थी।

संघ के सान्निध्य में नागौर में अनेक दीक्षा समारोह, शिखर निर्माण व प्रतिष्ठा समारोह तथा सिद्धचक्र मण्डल विधान आदि महोत्सव सोत्साह, धूमधाम से सम्पन्न हुए थे। इससे, जैनधर्म की महती प्रभावना हुई। अनेक लोगों ने आचरण की शुद्धि का महत्व समझकर यथाशक्ति व्रत-नियम भी अंगीकार किये। धर्म जीवन का अभिन्न अंग बना।

बस, चल पड़ी इन्दुमती माताजी की जीवन यात्रा— अंगीकार किया एक व्रतिनी की दिनचर्या को।

व्रतिनी अर्थात् पञ्च महाव्रत, पञ्च समितियाँ, पञ्च इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक और सात शेष नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना। (२८ मूलगुण)

पाँच महाव्रत : (१) अहिंसा : मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से हिंसा का त्याग।

(२) सत्य : मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से असत्य का त्याग।

(३) अस्तेय : मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से चोरी का त्याग।

(४) ब्रह्मचर्य : मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से ब्रह्मचर्य पालन करने का नियम।

(५) अपरिग्रह : सर्व प्रकार के परिग्रह का नौ कोटि से त्याग।

पाँच समितियाँ : (१) ईर्या समिति–४ हाथ आगे की जमीन देखकर निर्जीव मार्ग से चलना।

(२) भाषा समिति–मात्र स्वपर कल्याणक वचन बोलना।

(३) एषणा समिति– बत्तीस अन्तराय, ४६ दोष टाल कर रागद्वेष रहित सम-भाव से बिना निमंत्रण के श्रावक के घर पर जाकर दातार के पड़गाहन करने पर निर्दोष आहार ग्रहण करना।

(४) आदाननिक्षेपणसमिति : कमण्डलु आदि उपकरणों को रखते उठाते समय सावधानी रखना, और

(५) प्रतिष्ठापन समिति : निर्जन्तु, एकान्त और लोकनिन्दा रहित स्थान में मल-मूत्र क्षेपण करना।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाँच इन्द्रियों के मनोज्ञामनोज्ञ विषयों में रागद्वेष नहीं करना (५) इन्द्रिय विजय है।

१ **भूमिशयन :** जमीन पर सोना, बिस्तर आदि नहीं बिछाना।

२ **केशलोच :** निर्भीक होकर हँसते-हँसते अपने हाथों से मस्तक के केशों को उखाड़ना।

३ **एकभुक्ति :** दिन में एक बार अपने हाथों में (कर पात्र) दातार गृहस्थ द्वारा दिया हुआ रूखा सूखा आहार ग्रहण करना।

४ **अचेलकत्व :** वस्त्र मात्र का त्याग करना भी अचेलकत्व है और ईषत् चेल (थोड़ा वस्त्र) भी अचेलकत्व है। आर्यिका स्त्री है। स्त्री शरीर की रचना विकृत है इसलिये पूर्ण वस्त्र का त्याग तो शक्य नहीं है, १६ हाथ की एक शाटिका रखना ही आर्यिकाओं का अचेलकत्व गुण है।

५ **अदन्तधावन :** दाँतों का मञ्जन आदि नहीं करना।

६ **स्थित भोजन :** अपनी अञ्जुलि में समपाद खड़े होकर नियमित भोजन करना।

७ **अस्नान :** स्नान, अञ्जनादि का त्याग करना।

छह आवश्यक : १. सामायिक : समभाव का पालन २. चतुर्विंशतिस्तव : तीर्थंकरों का स्तुतिपाठ

३. वन्दना : देव गुरु को नमस्कार ४. प्रतिक्रमण : दोषों का शोधन और प्रकटीकरण

५. प्रत्याख्यान : अयोग्य के त्याग का नियमन और व्रत पालन

६. कायोत्सर्ग : नियत काल के लिये देह से ममत्व त्याग कर खड़े होना।

इन अट्ठाईस मूलगुणों का पूर्णतया पालन तो महाव्रती नग्न दिगम्बर महापुरुष ही करते हैं। आर्यिकाओं के उपचार महाव्रत होते हैं क्योंकि वे पूर्णतया परिग्रह का त्याग नहीं कर सकतीं। जब परिग्रह का त्याग पूर्ण नहीं है तब शेषव्रत भी पूर्ण नहीं होते।

उपचार महाव्रतिनी—अपने व्रतों का निर्दोष रीत्या पालन करती हुई तथा ग्रामों एवं नगरों में ज्ञान की गंगा प्रवाहित करती हुई इन्दुमती माताजी मंगल विहार करने लगीं।

४

तीर्थराज की ओर

नागौर में आर्यिका दीक्षा ग्रहण करने के बाद चरितनायिका माताजी इन्दुमतीजी आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के विशाल संघ के साथ भदाना होते हुए वि० सं० २००६ माघ वदी दूज को डेह ग्राम पहुँची। संघ में आचार्य श्री वीरसागरजी, मुनिश्री आदिसागरजी, मुनिश्री शिवसागरजी, क्षुल्लक १०५ श्री धर्मसागरजी (वर्तमान आचार्य श्री धर्मसागरजी), क्षुल्लक सिद्धिसागरजी, क्षुल्लक सुमतिसागरजी तथा ब्रह्मचारी सूरजमलजी, ब्रह्मचारी राजमलजी (वर्तमान मुनिश्री अजितसागरजी), ब्र० भूरामलजी (स्व० आचार्य श्री ज्ञानसागरजी), ब्र० कालूरामजी, ब्र० जुहारमलजी, ब्र० चांदमलजी, आर्यिका १०५ श्री वीरमतीजी, आ० सिद्धमतीजी, आ० विमलमतीजी आ० पारसमतीजी, आ० इन्दुमतीजी (चरितनायिका), आर्यिका शान्तिमतीजी, आर्यिका सुमतिमतीजी, क्षुल्लिका अनन्तमतीजी तथा ब्रह्मचारिणी-बाइयां आदि मिला कर कुल २८ त्यागी-व्रती थे। विशाल संघ के डेह में प्रवेश करते ही आकाश में बादल छाकर प्रकृति ने भी मानो वर्षा की बूंदों से आप सबका हार्दिक स्वागत किया। समस्त जैनाजैन नागरिकों का स्वागतोत्साह दर्शनीय था। संघ ने पहले प्राचीन मन्दिर के जिनबिम्बों के दर्शन किए, अनन्तर ग्राम में प्रवेश कर नये मन्दिर का अवलोकन किया। संघ के विराजने से विशेष धर्म प्रभावना हुई। केश लोंच व प्रवचन आदि के कार्यक्रम सार्वजनिक स्थानों पर आयोजित हुए जिनसे प्रेरणा पाकर अनेक लोगों ने अपनी-अपनी शक्त्यनुसार व्रत-नियम आदि ग्रहण किए। संघ के सान्निध्य में प्रतिदिन आगमोक्त पञ्चामृताभिषेक व पूजन आदि की क्रियायें सम्पन्न होती थीं। समय-समय पर सिद्धचक्र आदि अनेक माङ्गलिक विधान भी निर्बाध सम्पन्न हुए। पूज्य गुरुदेव के उद्बोधन से २६ नर-नारियों ने सदैव के लिये अशुद्ध जल का परित्याग

किया। कुछ ने पंचाणुव्रत ग्रहण किये। श्रीमान् बालचन्दजी पाटनी एवं उनकी श्रीमतीजी ने दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए।

आठवाँ वर्षा-योग :

संघ डेह से पुनः नागौर आया। भदाना पहुँचा। यहाँ पर १२ वीं शताब्दी का निर्मित एक प्राचीन भव्य जिनमन्दिर है जिस पर श्री मोहनलालजी पहाड़िया ने शिखर बनवाया है। इसकी प्रतिष्ठा पूज्य वीरसागरजी महाराज के सान्निध्य में हुई। वहां से विहार कर संघ डेह, लाडनूं होता हुआ सुजानगढ़ पहुँचा। कुछ वर्ष पूर्व इस नगर में—बहुत दिनों से मिथ्यात्व की गहरी निद्रा में सुप्त मरुभूमि की जनता को सर्वप्रथम सद्ज्ञान के जल से सिञ्चन कर सचेत करने वाले उद्भट विद्वान मुनि श्री चन्द्रसागरजी महाराज ने चातुर्मास किया था। आज पुनः विशाल संघ के दर्शन से भव्य जीव अपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगे। इस चातुर्मास में सिद्धचक्रादि अनेक महत्त्वपूर्ण विधान तथा दीक्षासमारोह आदि अनेक धार्मिक महोत्सव आयोजित किए गए। अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

वर्षायोग समापन के बाद परम पूज्य वीरसागरजी महाराज ने संघ सहित कुचामन होते हुए फुलेरा की ओर विहार किया। आर्यिका १०५ श्री विमलमती माताजी एवं १०५ श्री इन्दुमती माताजी लाड़नूं होते हुए पुनः डेह ग्राम पहुँचीं। ज्येष्ठ मास चल रहा था। डेह के समाज की तीव्र इच्छा थी कि चरितनायिका वहीं वर्षायोग स्थापित करे परन्तु आपने स्वीकृति नहीं दी। कारण वहाँ आपकी जन्मदात्री मातेश्वरी मौजूद थीं। परिवार में शोक-सन्ताप था। उनके भ्रातृ-पुत्र श्री कँवरीलालजी का युवावस्था में निधन हो गया था। भ्राता पूनमचन्दजी रुग्ण थे। इसलिये इनकी मातेश्वरी बहुत व्याकुल थी। प्रत्यक्ष अशान्त वातावरण का प्रभाव मन पर पड़े विना नहीं रहता है अतएव चरितनायिका ने वहाँ चतुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान नहीं की। समाज के लोगों ने बहुत आग्रह किया; श्री रिद्धकरणजी सवलावत ने तो इतना कहा कि आप चातुर्मास की स्वीकृति देंगी तभी मैं अन्न जल ग्रहण करूंगा। किन्तु माताजी ने दृढतापूर्वक उत्तर दिया कि आप कुछ भी करें, मैं यहाँ चातुर्मास नहीं करूंगी। श्री रिद्धकरणजी दिन भर खड़े रहे परन्तु माताजी अपने विचारों पर अटल रहीं। ठीक भी है, यदि इस प्रकार के आग्रहों से साधु लोग अपना ध्येय छोड़ दें तो उनका घर छोड़ना भी कठिन हो जाएगा। डेह के समीप नागौर था परन्तु वहाँ माताजी को जाना नहीं था। इसके आस-पास ४० मील तक जैन-श्रावकों के घर नहीं थे और डेहवासी विहार कराने के इच्छुक नहीं थे अपितु विहार का विरोध कर रहे थे। परन्तु माताजी ने किसी ओर ध्यान नहीं दिया। साधुओं के हृदय में ममता नहीं होती। चरितनायिका इन्दुमती माताजी मरुभूमि के ज्येष्ठ मास की तपती भूमि और बहती लू की परवाह न करती हुई तीन ही दिन में मेड़ता रोड़ आ पहुँची। आर्यिका १०५ श्री विमलमती माताजी डेह में ही रह गयीं।

नवम वर्षायोग :

डेह में–इन्दुमतीजी–आर्यिका विमलमतीजी

मेड़ता रोड़ में रेलवे स्टेशन के समीप ही एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान का मनोज्ञ विम्व है। यहाँ से कुछ दूरी पर श्वेताम्वर तीर्थ—पार्श्वनाथ फलवृद्धि तीर्थ—है जिसमें पार्श्वनाथ भगवान की प्राचीन मूर्ति है। मूलत: यह मन्दिर भी दिगम्वर-जैनों का था परन्तु उनकी कमजोरी से श्वेताम्बर जैन समाज ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। दिगम्वर समाज की कमजोरी से न जाने ऐसे कितने ही क्षेत्र दूसरों के अधिकार में चले गए हैं। माताजी के पुनीत पदर्पण से स्थानीय दिगम्बर जैन समाज अतीव हर्षान्वित हुआ। समाज के अनुरोध पर माताजी ने संवत् २००८ का वर्षायोग वहीं सम्पन्न किया।

णमोकार मंत्र का चमत्कार :

इस चातुर्मास में मैंने (ब्र० भँवरी वाई) 'सूर्यप्रकाश ग्रन्थ' का स्वाध्याय किया। इसमें श्री सम्मेदशिखरजी की पैदल यात्रा की वड़ी महत्ता लिखी है। इसे पढ़कर मेरे मन में ऐसी भावना हुई कि एक वार साधुओं के साथ तीर्थराज की यात्रा करूँ। मैंने अपना मनोभाव माताजी के समक्ष प्रकट किया। माताजी वोलीं—अभी तो असम्भव है। मैंने अपने मन में दृढ़ निश्चय किया कि जव णमोकार मंत्र की आराधना से असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाता है तो फिर मेरी मनोकामना पूरी क्यों नहीं होगी? यह महामंत्र समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाला है, मुक्ति पद-दाता है, इससे मेरी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। यह दृढ़ विश्वास था; उसी दिन से मैंने णमोकार मंत्र तथा "ॐ ह्रीं अनन्तानन्तपरमसिद्धेभ्यो नम:", "नमोस्तु सर्वसिद्धेभ्य:" मंत्रों का जाप करना प्रारम्भ कर दिया। चातुर्मास के वाद माताजी विहार करके रेण आई। वहां एक जिन मन्दिर है, श्रावकों के पन्द्रह घर हैं। वहाँ से माताजी मेड़ता सिटी पहुँची। मेड़ता रोड़ निवासी श्रावक गण चातुर्मास में माताजी से वहुत प्रभावित हुए थे, वहाँ के श्री मोहनलालजी सेठी तथा रतनलालजी सेठी साथ ही थे। मैंने उनसे कहा कि एक वार साधु संघ के साथ तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की यात्रा करने की प्रवल इच्छा है तो रतनलालजी वोले—"यदि माताजी चलें तो मैं चलने को तैयार हूँ परन्तु इतनी दूर का प्रवास सहज नहीं है। माताजी की इच्छा भी नहीं है।" अस्तु।

मेड़ता सिटी में दो प्राचीन मन्दिर हैं। एक मन्दिरजी में आदिनाथ भगवान की खड्गासन प्राचीन प्रतिमा है जिसके दर्शन करने पर वहाँ से अन्यत्र जाने की इच्छा ही नहीं होती।

सहस्रकूट चैत्यालय भी प्राचीन है। आदिनाथ प्रभु के सम्मुख बैठना और मध्याह्न में जाप करना तथा यही भावना भाना कि 'प्रभो! मेरा भी कभी कर्मोदय होगा जिससे दिगम्बर साधु-सध्वियों के साथ तीर्थराज की वन्दना हो सकेगी'—मेरा यही क्रम चलता रहा वहाँ।

दस-पन्द्रह दिन बाद ही फुलेरा से ब्र० चाँदमलजी का एक तार आया "MAHARAJ-JEE VIRSAGARJI'S SANGH GOING SHIKHARJI PLEASE YOU ALSO ATTEND POSITIVELY" "महाराज श्री वीरसागरजी का संघ शिखरजी जा रहा है। आप भी जरूर साथ में चलें।" तार पढ़ कर मेरा मन मयूर नृत्य करने लगा। एक बार तो माताजी ने अवश्य कहा—"१२०० मील की यात्रा है।" इतनी दूर चलना सरल नहीं परन्तु फिर थोड़ी ही देर में उनकी भावना सम्मेदशिखरजी की यात्रा करने की हो गई। इससे उस समय मुझे जिस आनन्द की अनुभूति हुई वह व्यक्त नहीं की जा सकती। महामंत्र का माहात्म्य अचिन्त्य है, इसके प्रभाव से जब मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है तो फिर यदि क्षुद्र कार्य सिद्ध हो जाए तो इसमें कौनसे आश्चर्य की बात है?

तीर्थराज की ओर :

मेड़ता सिटी से विहार कर डेगाना, उगरियावास, बोरावड़, मकराना, पलाड़ा, मीठड़ी, गुढ़ा, साँभर, फुलेरा, हिरणोदा, बगरू, भाँकरोटा आदि ग्रामों के जिनमन्दिरों के दर्शन तथा तत्रस्थ नागरिक एवं ग्रामीण नर-नारियों को धर्मामृत का पान कराती हुई माताजी जयपुर पहुँचीं। वहाँ परम-पूज्य वीरसागरजी महाराज संघ सहित विराजमान थे। गुरुदेव के दर्शन एवं संघ की वन्दना से जो आनन्द मिला वह अपूर्व था। आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी, मुनि शिवसागरजी, श्री धर्मसागरजी, आर्यिका १०५ श्री वीरमतीजी, सुमतिमतीजी, पारसमतीजी, इन्दुमतीजी, सिद्धमतीजी, शान्तिमतीजी, सुनन्दाजी (कुन्थुमतीजी), ऐलक पदमसागरजी, क्षुल्लिका अनन्तमतीजी, गणमतीजी, अजितमतीजी आदि साधु-साध्वी तथा ब्र० चाँदमलजी, सूरजमलजी, राजमलजी, कालूरामजी, वासुदेवजी, लाड़-मलजी, मदनलालजी, कजोड़मलजी, गणेशमलजी, ब्रह्मचारिणी भँवरी बाई, मुकनी बाई, सोनी बाई, गोपी बाई, हीरा बाई, कस्तूरी बाई, भंवरी बाई आदि व्रती व अन्य ७५ श्रावक-श्राविकाओं सहित विशाल संघ ने तीर्थराज की वन्दना के लिए विहार किया।

जयपुर से संघ सांगानेर आया। यहाँ प्राचीन विशाल सात जिनालय हैं। सभी जिना-लयों में विशाल एवं प्राचीन हजारों जिनप्रतिमाएँ स्थित हैं जिनके दर्शन करने से स्वानुभूति का विकास होता है।

सांगानेर से शिवदासपुरा होते हुए संघ पद्मपुरी पहुँचा। यहां पर छठे तीर्थङ्कर पद्मप्रभु की चमत्कारी मूर्ति है। एक विशाल मन्दिर का निर्माण हुआ है। वहाँ से निमोड़ा, रूपाड़ी, कोट-खावदा, लालसोट, ब्राह्मणवास, गंगापुर, मण्डावरी आदि के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए तथा

तत्रस्थ जैन-जैनेतरों को धर्मामृत का पान कराते हुए आचार्य श्री संघ सहित प्रसिद्ध ऐतिहासिक अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी—चाँदनपुर ग्राम में पहुँचे। यहां पर इतिहास प्रसिद्ध, चरम तीर्थङ्कर, अहिंसा धर्म के उद्योतक श्रीमद्देवाधिदेव १००८ भगवान महावीर का प्राचीन विम्ब है जो भूतल से निकला हुआ है, जिसके स्मरण से दीवान जोधराज का उपसर्ग दूर हुआ था। उन्होंने जिनधर्म से प्रभावित होकर जैन मन्दिर में तीन शिखर बनवाए थे जो बहुत दूर से ही दृष्टिगोचर होते हैं। इन शिखरों पर निरन्तर ध्वजाएँ फहराती रहती हैं; इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो ये भव्य जीवों को जिनेन्द्र दर्शन के लिए बुला रही हैं। इस मन्दिर में नव तत्त्व का ज्ञान करवाने स्वरूप नव वेदियाँ हैं। एक ओर जिनशासनरक्षक मणिभद्र नामक क्षेत्रपाल स्थित है। महावीर प्रभु के दर्शन करने से समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। कृष्णाबाई और कमलाबाई के आश्रम में भी जिन मन्दिर हैं। श्री महावीरजी की धर्मशाला, बगीचे आदि की शोभा दर्शनीय है।

वहाँ से आचार्यश्री का संघ हिण्डोन, बयाना, भरतपुर, फरिया आदि के जिनभवनों के दर्शन करता हुआ आगरा पहुँचा। यहाँ अनेक जिनमन्दिर हैं। यमुना नदी के समीप बेलनगञ्ज में एक अत्यन्त सुन्दर जिनमन्दिर है जिसकी शोभा कहने में नहीं आती। मोती कटला में मन्दिरजी में शीतलनाथ भगवान की काले पाषाण की भव्य मूर्ति है। मूलभूत यह प्रतिमा दिगम्बर है, प्रतिष्ठा भी दिगम्बराम्नाय से हुई है, उस पर लेख भी दिगम्बर है, परन्तु अब उस पर श्वेताम्बर बन्धुओं ने अधिकार कर लिया है। यद्यपि इस मूर्ति का प्रक्षालन-पूजन श्वेताम्बर भाई करते हैं तथापि इस पर आभूषण, अंगिया, चक्षु नहीं लगा सकते, यह इस बिम्ब का अतिशय है। श्वेताम्बर भाइयों ने इस पर चक्षु लगाने के प्रयत्न किए थे परन्तु जो चक्षु चढ़ाता था वही अन्धा हो जाता था, अन्तत : चक्षु नहीं चढ़ाये गये।

आगरा से संघ मथुरा पहुँचा जहाँ से अन्तिम केवली जम्बू स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया है। यहाँ सप्त ऋषियों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मन्वादि सप्त ऋषियों के आगमन से यहाँ का मरी रोग दूर हुआ था। मथुरा शहर में तीन मन्दिर हैं।

मथुरा से संघ फिरोजाबाद आया। यहाँ १४ जिनमन्दिर हैं। एक चन्द्रप्रभ जिनभवन है जिसमें डेढ़ फुट ऊँची स्फटिक मणि की चन्द्रप्रभु की सातिशय पद्मासन मूर्ति है। इसके बारे में कहा जाता है कि यह मूर्ति एक नदी में थी। एक सेठ को स्वप्न आया कि इस नदी में पुष्प भर कर एक टोकरा छोड़ दो। जहाँ जाकर टोकरा ठहर जाएगा वहाँ पर जिन प्रतिमा होगी। वैसा ही किया गया। कहते हैं टोकरा छोड़ने पर नदी का अथाह पानी घुटने-घुटने भर हो गया। नदी के बीच में प्रतिमा प्रत्यक्ष दिखने लगी। लोगों के जय निनाद से आकाश गूंज उठा। मस्तक पर विराजमान कर प्रतिमा लायी गई। नदी का पानी पूर्ववत् लबालब हो गया। वहाँ पर एक स्वर्ण निर्मित सिंहासन भी था,

वह नहीं लाया जा सका। स्फटिक मणि की इतनी बड़ी एवं मनोज्ञ प्रतिमा अन्यत्र देखने में नहीं आई। फिरोजाबाद पण्डितों एवं त्यागियों का जन्म स्थान है। इस स्थान को परम पूज्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज जैसे आचार्य और पण्डित माणिकचन्दजी न्यायाचार्य जैसे प्रतिभा के धनी पण्डित को जन्म देने का गौरव प्राप्त है।

यहाँ से संघ शिकोहाबाद, मैनपुरी, कुम्हारी, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद होता हुआ बनारस पहुँचा। बनारस नगरी सातवें तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ भगवान और तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जन्म से पवित्र हुई है। यहीं पर मिथ्यावादियों के मान को खण्डन करने वाले, मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान तेजस्वी, पञ्चमकाल के महातपस्वी स्वामी समन्तभद्र ने जिनधर्म का उद्योत किया था।

स्वामी समन्तभद्र को भस्मक व्याधि हो गई थी जिससे वे जितना अन्न खाते थे वह सब भस्म हो जाता था। मुनिपद में इतना आहार दुष्प्राप्य था इसलिये गुरु-आज्ञा से मुनिपद छोड़कर भ्रमण करते हुए बनारस पहुँचे। यहाँ पर शिवकोटि राजा द्वारा निर्मित शिवमन्दिर में प्रचुर मात्रा में मिष्ठान्न का भोग लगता था। उन्होंने राजा से कहा—राजन् आपके पण्डे स्वयं प्रसाद खा जाते हैं, भगवान को भूखा रखते हैं। आपकी आज्ञा हो तो मैं यह सारा प्रसाद भगवान को खिला सकता हूं। राजा की अनुमति पाकर समन्तभद्र मन्दिर में रहने लगे और शिव के बहाने सारा मिष्ठान्न स्वयं खाने लगें। कुछ दिनों के बाद रोग शान्त हो गया तो मिष्ठान्न बचने लगा। यह देखकर राजा के मन में शंका हुई। अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ कि शिव को मिष्ठान्न खिलाने के बहाने से यह व्यक्ति स्वयं खा जाता है और पाँव फैलाकर सोता है। इस क्रिया से इसने देवता शिव का अपमान किया है। अतः इसे दण्डित किया जाना चाहिए। क्रुद्ध होकर राजा शिव कोटि ने समन्तभद्र से कहा कि तुम शिव के उपासक नहीं हो, तुमने अपनी क्रियाओं से देवता का अपमान किया है अतः तुम्हें सबके समक्ष शिव लिंग को नमस्कार करना होगा, ऐसा न करने पर तुम्हें प्राणदण्ड दिया जाएगा।

निर्भीक समन्तभद्र स्वामी ने कहा—"ऐसा विषयासक्त देव मेरा नमस्कार सहन करने में समर्थ नहीं है।" राजा ने कठोर आदेश दिया तो समन्तभद्र स्वामी बोले—"कल प्रातःकाल नमस्कार करूंगा।" उसी समय स्वामी को एक कमरे में बन्द कर दिया गया। वे जिनेन्द्र-भक्ति में लीन हुए। रात्रि में जिनशासन रक्षक ज्वालामालिनी देवी ने स्वप्न दिया—गुरुदेव! चिन्ता न करें; आपका कार्य सफल होगा। दूसरे दिन प्रातःकाल नगरी के नर-नारी शिवमन्दिर में होने वाला यह तमाशा देखने के लिए एकत्र हुए, अपार भीड़ लग गई। राजा ने स्वामी समन्तभद्र को कमरे से निकाल कर सीधे शिवमन्दिर में शिव लिंग को नमस्कार करने के लिए भेज दिया।

स्वामी समन्तभद्र राजा और विशाल जन समूह के समक्ष शिवपिण्डी के आगे बैठ कर वीतराग प्रभु की भक्ति में लीन हुए—स्तुति करने लगे। ज्योंही उन्होंने आठवें तीर्थंकर श्रीचन्द्रप्रभु भगवान की—

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम्॥

स्तुति कहते हुए नमस्कार किया त्योंही शिवलिंग टुकड़े-टुकड़े हो गया और उसमें से चन्द्रप्रभु भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा प्रकट हुई। जय-जयकार शब्द से आकाश गूँज उठा। राजा शिवकोटि ने भी दिगम्बर-दीक्षा ग्रहण की। आज भी बनारस में उस स्थान पर भग्न महादेव के नाम से प्रसिद्ध शिवलिंग है।

तीर्थङ्कर द्वय के जन्म से पुनीत बनारस नगरी से विहार कर संघ आरा पहुँचा। आरा नगरी जैनियों की काशी कहलाती है; यहाँ ४० जिनालय हैं। अनेक छोटे-बड़े चैत्यालय हैं। अग्रवाल जैन समाज के १०० घर हैं। अनेक जैन धर्मशालायें हैं। समाज अत्यन्त धार्मिक रुचि सम्पन्न है। जिनालयों में यक्ष-यक्षिणी सहित विशाल एवं मनोज्ञ प्राचीन जिन बिम्ब हैं। यहाँ से तीन मील दूर धनुपुरा नामक ग्राम है जहाँ चन्दाबाई का आश्रम है। उसमें बाहुबलि भगवान की विशाल भव्य मूर्ति है जिसके दर्शन से जन्म-जन्मान्तर के उपार्जित पापकर्म नष्ट हो जाते हैं। यहाँ बालिकाएँ और विधवा बहनें ज्ञानोपार्जन कर आत्मकल्याण में सतत तत्पर रहती हैं। आश्रम के बाह्यभाग में तीन प्राचीन मन्दिर हैं।

यहाँ से संघ सुदर्शन सेठ के निर्वाण से पुनीत पाटलीपुत्र (पटना) पहुँचा। यहाँ पर चार-पाँच प्राचीन जिनमन्दिर हैं। उनकी वन्दना करता हुआ संघ वीरप्रभु के जन्म स्थल कुण्ड ग्राम पहुँचा। यहीं से कुछ दूरी पर नालन्दा है। इतिहास बताता है कि यहाँ बौद्धों का प्राचीन मठ था। खुदाई में भूगर्भ से निकला हुआ कुछ भाग आज भी विद्यमान है। अकलङ्कदेव ने यहीं विद्याध्ययन किया था और बौद्धों के साथ विवाद कर उन्हें परास्त कर जिनधर्म का उद्योत किया था।

यहाँ से संघ भगवान मुनिसुव्रतनाथ के जन्म स्थल और भगवान महावीर के आगमन का पवित्र स्थल राजगृहनगर पहुँचा। यहाँ अत्यन्त रमणीक पाँच पहाड़ हैं। इन पर विशाल जिन-मन्दिर हैं। तीसरे पर्वत पर महावीर प्रभु का खड्गासन जिनबिम्ब है व प्राचीन चरणपादुका स्थित है। पाँचवें पर्वत पर भी प्राचीन जिनबिम्ब हैं। पर्वतों के जल से परिपूर्ण जलकुण्ड हैं, उनमें सदा उष्णजल भरा रहता है। इस जल-स्नान से अनेक रोग दूर हो जाते हैं। अतः यहाँ अनेक जैन-अजैन यात्री आते रहते हैं। प्राचीन काल में राजगृही राजा श्रेणिक की राजधानी थी। यहाँ विपुलाचल पर्वत पर अनेक बार भगवान महावीर के समवसरण में धर्म-देशना का श्रवण कर तथा ६०,०००

साठ हजार प्रश्न पूछ कर राजा श्रेणिक ने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था तथा तीर्थङ्कर प्रकृति का वन्ध कर अपने आपको पवित्र बनाया था। राजा श्रेणिक का जीव भावी चौबीसी में प्रथम तीर्थङ्कर होगा।

राजगृही से संघ सुलतानगञ्ज पहुँचा। श्रावकों के वहाँ दस घर थे परन्तु जिनमन्दिर नहीं था। आचार्य श्री ने श्रावकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि जिस प्रकार मद्य-मांस-मधु, पञ्च उदुम्बर फलों का त्याग, रात्रि भोजन त्याग, जल छानकर पीना आदि श्रावकों के अष्टमूलगुणों के अन्तर्गत हैं उसीप्रकार प्रतिदिन जिनबिम्ब के दर्शन करना भी एक मूल गुण है—

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च ।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ।।

(जिनेन्द्र भगवान का दर्शन पापों का नाश करने वाला है, स्वर्ग जाने के लिए सीढ़ी के समान है एवं मोक्ष का साधन है। जिसप्रकार छिद्रित हाथ में पानी नहीं ठहर सकता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से और साधुओं के दर्शन से भवभवान्तर में उपार्जित किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं।)

श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत् ।
आलोकनविहीनस्य, तत्सुखावाप्तयः कुतः ।।

(श्रीमुख अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के मुख का अवलोकन करने से श्री अर्थात् मुक्ति एवं सांसारिक लक्ष्मी के मुख का अवलोकन होता है अतः उनकी प्राप्ति होती है। जो जिनेन्द्र भगवान का दर्शन नहीं करते उनको तत्सम्बन्धी सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है।)

जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिसमार्जितम् ।
जन्ममृत्युजरा रोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ।।

जन्म-जन्म में उपार्जित पाप और जन्म-जरा-मृत्यु रूप रोग भगवान जिनेन्द्र के दर्शन से क्षण में नष्ट हो जाते हैं। "जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करूँ" ऐसी भावना मात्र से सहस्र उपवास करने का फल प्राप्त होता है। लक्ष उपवास करने से जितने कर्मों की निर्जरा होती है, उतने कर्मों की निर्जरा जिनेन्द्र दर्शन के लिए गमन करने से हो जाती है। जिनेन्द्र का दर्शन करने से कोटि उपवास का फल प्राप्त होता है। जिनविम्व के दर्शन की महिमा अगम्य है। जिस ग्राम में जिनमन्दिर नहीं है, वहाँ तज्जन्य परिणाम विशुद्धि से होने वाली पुण्यराशि की प्राप्ति कैसे हो सकती है। जिनविम्ब का दर्शन सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण है अतः श्रावकों को जिनमन्दिर का निर्माण अवश्य करना चाहिए। गृहस्थ-सम्वन्धी पापों का नाशक जिनमन्दिर का निर्माण है।

आचार्यश्री के उद्बोधन से प्रबुद्ध होकर तत्रस्थ श्रावकों ने आचार्यश्री की उपस्थिति में ही वहाँ एक चैत्यालय स्थापित किया। आज वहाँ एक भव्य जिन-भवन बन गया है।

सुलतानगञ्ज से विहार कर संघ वासुपूज्य भगवान के पञ्च कल्याणकों से पवित्र स्थल नाथनगर-भागलपुर पहुँचा। वहाँ स्थित वासुपूज्य भगवान के बिम्ब, प्राचीन चरण एवं प्रतिमाओं के दर्शन से नेत्र अघाते नहीं है। जिस प्रकार इक्षु रस से दूध अधिक मधुरता को प्राप्त होता है उसी प्रकार मृत्युञ्जयी प्रभु के पंच कल्याणकों से पवित्र क्षेत्र भी अधिक अतिशय को प्राप्त होते हैं। नाथ-नगर और भागलपुर के दर्शन कर संघ ने मन्दारगिरि की ओर प्रस्थान किया।

धर्मो रक्षति रक्षितः :

संध्या हो जाने के कारण त्यागी गण भागलपुर से कुछ दूरी पर स्थित एक गांव में ठहर गए। श्रावक-श्राविका कुछ आगे जाकर एक पाठशाला में ठहरे। पाठशाला लगभग वन-प्रदेश में ही थी। निकटवर्ती ग्रामीणों ने वहाँ आकर संघ के श्रावकों से कहा कि आप लोगों को यहाँ रहना उचित नहीं है, क्योंकि यहाँ चोर-डाकुओं का भय है। यह जान कर संघस्थ श्रावकगण ब्र० चाँदमलजी, ब्र० वासुदेवजी आदि ने विचार किया कि अब इस समय कहाँ जा सकते हैं, समीप में कोई गाँव भी नहीं है। मैं बोली—जो कुछ होना होगा वह होगा; अब इस समय आगे नहीं जा सकते। सब वहीं पर ठहर गये। रात्रि को लगभग नौ बजे सिपाही वेशधारी एक मनुष्य आया और पाठशाला के बाहर कुर्सी पर आसीन हो गया। उसके बाद समस्त संघ को निद्रा ने घेर लिया। प्रातः चार बजे जब सब उठे तो देखा कि वह मनुष्य वहीं पर बैठा हुआ है। विचार हुआ कि इसे कुछ इनाम अवश्य देना चाहिए परन्तु कुछ ही क्षणों में वह मनुष्य न जाने कहाँ अन्तर्ध्यान हो गया, कुछ पता नहीं लग सका। उसकी बहुत खोज भी की पर पता नहीं पा सके। समीपवर्ती ग्रामीण कहने लगे कि यहाँ पर कोई सिपाही या चौकीदार वगैरह नहीं रहता है। उससे यह अनुमान लगा कि आचार्यश्री के शुभाशीर्वाद एवं पुण्यो-दय से संघ की रक्षा हेतु कोई देव आया था सो अपना काम कर प्रातःकाल चला गया। तपस्वियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। वहाँ से मन्दारगिरि के लिए प्रस्थान किया।

मन्दारगिरि :

उत्तरपुराण में रजतमौलि के समीप मन्दारगिरि पर्वत का उल्लेख है। यह नदी आज-कल रजतनदी के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दागिरि को मन्दारगिरि कहते हैं। यह पर्वत लगभग ७०० फुट ऊँचा है। पर्वत पर दो प्राचीन मन्दिर शिखर समन्वित हैं। बड़े मन्दिर में दो चरणयुगल हैं। छोटे मन्दिर में तीन चरण युगल हैं। इस क्षेत्र को प्रकाश में लाने का श्रेय स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी, आरा; स्व० केसरेहिन्द रायबहादुर सखीचन्दजी जैन, डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल पुलिस, कलकत्ता

तथा बाबू हरनारायणजी भागलपुर को है। अनेक बार वहां के पण्डों के साथ मुकदमेबाजी हुई थी। वहाँ के महन्त को जेल की सजा हुई। वे लोग वासुपूज्य भगवान के चरणों को अपने धर्म के चरण बताते थे। बड़े प्रयत्न व परिश्रम के बाद यह अनुपम निधि दिनाङ्क २० अक्टूबर १६११ को रजिस्ट्री द्वारा सम्बलपुर के जमींदारों से दिगम्बर जैनों के अधिकार में आई।

एक किंवदन्ती यह भी है कि सागरमन्थन के समय देवों ने मन्दारगिरि को मथानी बनाया था। वहाँ मकरसंक्रान्ति के अवसर पर तीन दिन पर्यन्त हिन्दुओं का बड़ा मेला लगता है। यहां के सीताकुण्ड, शङ्खकुण्ड को एवं पापहारिणी नाम के तालाब को तथा गुफा के मन्दिर को हिन्दू लोग पूज्य मानते हैं। भादवा सुदी ग्यारस से पूर्णिमा तक यहाँ मेला भरता है। यह क्षेत्र भागलपुर शहर से ३० मील की दूरी पर स्थित है।

मन्दारगिरि की वन्दना करके संघ वि० सं० २००८ आषाढ़ कृष्णा छठ को अनन्तानन्त तीर्थङ्करों के परम पावन निर्वाण क्षेत्र अनादिकालीन श्रीसम्मेदशिखरजी पहुँचा। गिरिराज के दर्शन से प्राप्त अपूर्व आनन्द वचनातीत था। संघस्थ सभी त्यागी गण, श्रावक-श्राविकाएँ वन्दनार्थ पर्वत-राज पर पहुँचे। जब श्रीपार्श्वनाथ टोंक की सीढ़ी से उतर रहे थे, तो आगे-आगे पांच दिगम्बर साधु, उनके पीछे श्वेत साड़ी पहने आर्यिकायें और क्षुल्लिकाएं, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी वृन्द तथा अन्य लोग क्रम से उतर रहे थे, उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो चारण ऋद्धिधारी मुनि हीं उतर रहे हों। उस समय परम पूज्य आचार्यश्री एवं अन्य मुनि-आर्यिकाओं के साथ वर्तमान विंशति तीर्थंकरों के निर्वाण से पवित्र तीर्थराज की वन्दना से जो आनन्द हुआ वह मेरे जीवन में अपूर्व था। जब से यह सुना था कि दिगम्बर साधुओं के साथ सम्मेदशिखरजी की वन्दना करने से सात-आठ भव में भव्य प्राणी मुक्ति रमा को प्राप्त हो जाते हैं तभी से यह इच्छा हुई थी कि कभी जीवन में ऐसा पुण्योदय होगा जिससे मैं भी दिगम्बर साधुओं के साथ गिरिराज की वन्दना का सौभाग्य प्राप्त कर सकूंगी। बहुत दिनों से इच्छित वस्तु की प्राप्ति से जो आनन्द आया उसका वर्णन करना अशक्य है।

दसवां वर्षायोग :

यहाँ से आचार्यश्री संघ सहित आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को ईसरी (हजारीबाग) पहुँचे। वि० सं० २००९ का चातुर्मास यहीं पर सम्पन्न हुआ था। इस चातुर्मास में श्रावकों का उत्साह कल्पना-तीत था। वहां आहार के समय का दृश्य चतुर्थकाल की स्मृति कराता था। दूर-दूर से यात्री गण आते थे। दर्शन करने वालों एवं आहार दाताओं की अपूर्व भीड़ सदा लगी रहती थी। अभिषेक, पूजन, आहारदान, स्वाध्याय, अध्ययन आदि में दिन का व्यतीत होना पता ही नहीं लगता था। अनेक विद्वानों के समागम से तत्वचर्चा का भी विशेष लाभ मिला था। जीवन में ऐसे शुभावसर बार-बार नहीं मिलते।

स्व० १०८ मुनि श्री सुमतिसागरजी महाराज :

इस वर्षायोग में पूज्य मुनि १०८ श्री सुमतिसागरजी महाराज का स्वर्गवास हो गया था। आप औरंगाबाद जिले के अन्तर्गत पिपली गाँव के थे। आपके पूर्वज डेह गाँव के खण्डेलवाल जातीय कासलीवाल गोत्र में उत्पन्न हुए थे। आपने नागौर में वि० सं० २००६ की आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन क्षुल्लक दीक्षा एवं वि० सं० २००८ के फुलेरा (राजस्थान) के पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। आप दृढ़ श्रद्धानी परम तपस्वी थे।

स्व० १०८ मुनि श्री आदिसागरजी महाराज :

वर्षायोग–समाप्ति पर पौष कृष्णा सप्तमी के दिन संघ विहार कर पुनः मधुवन पहुँचा। शीत का अत्यन्त प्रकोप था। संघ पर्वत पर वन्दना हेतु गया था। पर्वत पर शीतल वायु के झकोरे दिगम्बर साधुओं के नग्न तन पर हिम वर्षा-सी कर रहे थे किन्तु धैर्यशाली, मेरुवत् अडोल अकम्प तपस्वी पर्वतराज की वन्दना कर रहे थे। वन्दना के बाद पूज्य १०८ श्री आदिसागरजी महाराज को भीषण ज्वर आ गया, उनका शरीर क्षीण हो गया। शरीर में तीव्र वेदना थी तब भी आप अपने ध्यान में मग्न रहते थे। आपकी मुद्रा परम शान्त और गम्भीर थी। अन्त समय में आपने आत्मध्यान में लीन होकर पौष शुक्ला पञ्चमी के दिन देहोत्सर्ग किया।

आपका जन्म खण्डेलवाल जातीय अजमेरा गोत्र में हुआ था। आप मूलतः दाँता (सीकर, राजस्थान) के निवासी थे। आप आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के प्रथम सुशिष्य थे। छोटों के प्रति वात्सल्य भाव और बड़ों के प्रति विनम्रता का व्यवहार आपका स्वभाव था। आपकी गुरुभक्ति अद्वितीय रही। आप हमेशा कहा करते थे कि बड़ा बनने की चेष्टा मत करो। बड़ा बनना सरल नहीं है। पहले मूँग की दाल बनती है, फिर पानी में डाल कर उसके छिलके उतारे जाते हैं, अनन्तर चक्की में पीसी जाती है, फिर नमक मिर्च मसाला मिलकर गर्म-गर्म उबलते तेल में तला जाता है तब कहीं बड़ा बनता है। इसी प्रकार जो समस्त शिष्यों के कार्य-अकार्य, मान-अपमान को समभाव से सहन करता है वह बड़ा बनता है। गुरु छत्र है, जो गुरुओं की छत्रछाया में रहता है उसका संसार-ताप नष्ट हो जाता है।

> किं ध्यानेन भवत्यशेषविषय–त्यागैस्तपोभिः कृतं,
> पूर्णं भावनयालमिन्द्रियदमैः पर्याप्तमाप्तागमैः।
> किन्त्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं,
> सर्वे येन विना विनाथबलवत् स्वार्थाय नालं गुणाः॥

"ध्यान, त्याग, तप, इन्द्रिय विजय आदि गुण एक तरफ हैं और गुरुभक्ति एक तरफ है। अतः संसार-नाश की कारणभूत गुरु भक्ति सोल्लास करनी चाहिए। जिस प्रकार सेनापति के बिना सेना शत्रुओं का नाश करने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार गुरुभक्ति के बिना जप-तप सार्थक नहीं है।" पूज्य आदिसागरजी महाराज की अध्ययन की रुचि बड़ी तीव्र थी। इतनी अवस्था हो जाने पर भी आप निरन्तर व्याकरण, न्याय आदि के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। आप कहा करते थे— "मनुष्य को ज्ञानार्जन करने के लिए मैं अजर-अमर हूं, ऐसा विचार करना चाहिए और व्रत धारण करते समय मैं अभी यमराज के मुख में पहुँच जाऊँगा, इस जलवुदवुदवत् क्षणभंगुर शरीर का क्या विश्वास; अगला श्वास आये कि नहीं ? ऐसा विचार कर व्रत लेने की शीघ्रता करनी चाहिए।"

"आत्मकल्याण और विद्यार्जन करने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिए। क्षणत्यागे कुतो विद्या, कणत्यागे कुतो धनं।"

"कान दो हैं और जीभ एक, इसलिए सुनना अधिक और वोलना कम चाहिए।"

"मानव-जीवन को सार्थक करने के लिए व्रत धारण करने चाहिए।"

आप न केवल निरन्तर आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय ही करते थे अपितु उनका सार प्राप्त कर आत्मा का सच्चा अनुभव भी करते थे।

जब भीषण ज्वर से आपका शरीर क्षीण हो गया और शरीर में तीव्र वेदना थी तव भी आप ध्यान में लीन, परम शान्त और गम्भीर थे।

पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है—

गुरुमूले यतिनिचिते, चैत्यसिद्धान्तवार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि, सन्यसनसमन्वितं मरणम्॥

(गुरु के चरण-सान्निध्य में, यतिओं के समूह में, जिन प्रतिमा के समक्ष एवं जहां जिन-सिद्धान्त रूपी समुद्र का सम्यक् घोप होता हो वहां मेरा मरण हो।)

आवाल्याज्जिनदेवदेव ! भवतः श्रीपादयोः सेवया,
सेवासक्तविनेयकल्पलतया कालोऽद्य यावद् गतः।
त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे,
त्वन्नामप्रतिवद्ध वर्णपठने कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम॥

(हे भगवन् ! जन्म से लेकर आज तक मैंने आपके चरणों की सेवा की है। उस सेवा रूपी कल्पवृक्ष का फल यदि प्राप्त हो तो मरण के समय आपका नाम उच्चारण करने के लिए मेरा कण्ठ कुण्ठित नहीं होवे अर्थात् मैं आपका नामोच्चारण करता हुआ प्राणविसर्जन करूं)

इस प्रकार की भावना का सार पूज्य मुनिश्री को प्राप्त हुआ था। आप प्रातःकाल चार बजे स्वयमेव उठकर पद्मासन लगाकर बैठ गये जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो निर्भीक होकर यमराज का सामना कर रहे हों।

आपने भव-भवान्तर से प्राणियों के पीछे लगने वाली ममता की जंजीर को समता के शस्त्र से क्षीण कर दी थी और यमनाशक संयम को स्वीकार किया था अतः ममता की सखी मृत्यु का आगमन सुनकर भी आप भयभीत नहीं हुए। वही सच्चा योद्धा है जिसने त्रिलोकविजयी 'काम' का नाश किया है और वही सच्चा वीर है जिसे मृत्यु का भय भी विचलित नहीं कर सकता, अन्यथा—

झूठी करणी आचरे, झूठे सुख की आस।
झूठी भक्ति हृदय धरे, झूठो प्रभु को दास॥

जिसे मृत्यु का भय लगता है वह वीर नहीं कहा जा सकता है। ख्याति, पूजा, लाभ के लिए युद्ध में प्राणों की आहुति देने वाले तो बहुत होते हैं परन्तु समाधि मरण कर वीर गति को प्राप्त होने वाले बहुत कम होते हैं। सब कुछ सीखा परन्तु जब तक मरने की कला नहीं सीखी तब तक कुछ नहीं सीखा।

पूज्य १०८ मुनिराज श्री आदिसागरजी महाराज ने हँसते-हँसते णमोकार मन्त्र का जाप करते हुए अन्तः समाधि में लीन होकर गुरुवर्य १०८ पूज्य श्री वीरसागरजी महाराज के सान्निध्य में अनन्तानन्त सिद्धों के सिद्धि के क्षेत्र, परम पावन सम्मेदशिखर पर भौतिक शरीर का परित्याग कर देवपद प्राप्त किया।

सुमेरु पर्वत की दृढ़ता, सागर की गम्भीरता, वसुधा की क्षमाशीलता, व्योम की विशालता, वायु की निर्लेपता, तरणि की तेजस्विता, शशि की शीतलता और नवनीत की कोमलता— जिसके समक्ष सदैव श्रद्धा से नत रहती थी ऐसी अध्यात्म मूर्ति पूज्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज के चरणारविन्द में शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन!!

—::०::—

५

संघ सान्निध्य

श्री सम्मेदशिखरजी से विहार करके संघ चम्पारन, डेहरी ग्रोन सोन के जिन-मन्दिर के दर्शन करता हुआ बनारस लौटा। यहाँ से कुछ दूरी पर श्रेयांसनाथ भगवान का जन्म क्षेत्र श्रेयांसपुरी है जिसका अपर नाम सारनाथ है। यहाँ एक मनोज्ञ जिन मन्दिर है जिसमें काले पाषाण की श्रेयांसनाथ भगवान की विशाल प्रतिमा है। प्रतिमा अतीव आकर्षक और प्रभावशाली है। यहाँ पर जैन आम्नाय का एक विशाल स्तूप भी बना है जिस पर बौद्ध लोगों ने अपना अधिकार जमा रखा है।

श्रेयांसपुरी से कुछ दूरी पर भगवान चन्द्रप्रभ के जन्म से पवित्र चन्द्रपुरी नामक स्थान है। यहाँ गंगा नदी के किनारे पर एक सुन्दर जिनमन्दिर है जिसमें मूलनायक चन्द्रप्रभ भगवान का बिम्ब है। इस मन्दिर में प्रवेश करने मात्र से सूर्य का सन्ताप एवं मार्ग का श्रम नदी के शीतल जल से स्नात पवन के प्रवाह से दूर हो जाता है तथा जिनबिम्ब के अवलोकन से भव्यजीवों का संसार ताप नष्ट हो जाता है।

इन पवित्र क्षेत्रों के दर्शन करता हुआ संघ भगवान आदिनाथ, भगवान अजितनाथ आदि तीर्थंकरों के जन्म से पुनीत अनादिनिधन अयोध्या (साकेतपुरी) पहुँचा। यहाँ भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबलि के मनोज्ञ एवं विशाल बिम्ब हैं। चारों ओर भगवान अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ आदि तीर्थंकरों के चरण स्थापित हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर भगवान धर्मनाथ का जन्मक्षेत्र धर्मपुरी ग्राम है, यहाँ भी विशाल जिनमन्दिर है। किसी समय अयोध्यानगरी की रचना इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने की थी।

यहां से फिरोजाबाद, टिकैतनगर, दरियावाद आदि नगरों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ बाराबंकी पहुँचा। यहाँ अतिशय युक्त जिनालय है जिसमें चन्द्रप्रभ भगवान का मनोज्ञ चमत्कारी विम्ब है। बाहुबलि भगवान की भी सुन्दर प्रतिमा है तथा मानस्तम्भ आदि की भी सुन्दर रचना है। यहां से लखनऊ, कानपुर, कालपी, चिरगाँव आदि स्थानों के जिनालयों के दर्शन करता हुआ संघ झाँसी पहुँचा। झाँसी इतिहास प्रसिद्ध शहर है। यहाँ बड़े विशाल जिनमन्दिर हैं। यहां से संघ नङ्ग-अनङ्ग आदि साढ़े पाँच करोड़ मुनियों की निर्वाण स्थली सोनागिरि क्षेत्र में पहुँचा।

सोनागिरि सिद्धक्षेत्र :

णंगाणंगकुमारा, कोडिपंचद्धमुणिवरा सहिया।
सवणगिरिवरसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥

सोनागिरि सिद्धक्षेत्र की महिमा अचिन्त्य है और शोभा अवर्णनीय। यहाँ शिखरबन्ध १७ विशाल जिनमन्दिर हैं। एक अतिशय रमणीय छोटा-सा पर्वत है जिस पर ५७ मन्दिर हैं। चंद्र-प्रभ भगवान का एक प्राचीन जिनमन्दिर है जिसमें चन्द्रप्रभ भगवान का विशाल खड्गासन विम्ब है। इसके दर्शन करने से हृदय गद्‌गद् हो जाता है। मन्दिरजी के बाहरी भाग में बाहुबलि की उन्नत एवं मनोज्ञ मूर्ति हैं जिसके दर्शन से स्वानुभव जाग्रत होता है, अनन्त संसार का नाशक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। जिस समय आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज का संघ सोनागिरि पहुँचा उस समय यह शुभ समाचार मिला कि यहाँ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज भी पधारने वाले हैं। यह जानकर संघ में नवीन उत्साह उत्पन्न हुआ। गुरुदेव के दर्शनों के अभिलाषी श्रावकों के मन-मयूर नृत्य करने लगे।

मेरी भी बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि अनेक भाषाओं के ज्ञाता, दृढ़ विश्वासी आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज के दर्शन करूं। सम्मेदशिखरजी से प्रस्थान करते समय भी यह भावना थी कि एक बार परम पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज के संघ में पुनः पर्वतराज के दर्शनों का लाभ हो। आज यह भावना फलित हुई थी—

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्,
कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीपप्रयाणात्।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीं,
नयनपथमवाप्ताद्देव पुण्यद्रुमेण ॥

दर्शन की अभिलाषा मात्र से जो पुण्य रूपी द्रुम (वृक्ष) किसलयित हुआ था, उनके समीप आने से जो कुसुमित हुआ था आज वही हमारा पुण्य रूपी तरु उनके मुख रूपी चन्द्रमा के दर्शन

करने से फलित हो गया। उस समय आचार्य द्वय का मिलन तथा पूज्य वीरसागरजी महाराज के प्रति महावीरकीर्तिजी महाराज की अपूर्व भक्ति देखकर शरीर का रोम-रोम पुलकित हो उठा। आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज ने तीन प्रदक्षिणा देकर आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज को नमस्कार किया। उनके दोनों कर कमल मुकुलित थे, नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहे थे, वाणी में गद्गदपना था; इस प्रकार भक्ति के अपूर्व दृश्य को देखकर किस का हृदय आह्लादित नहीं हुआ था अपितु समस्त दर्शक भावविभार हो उठे थे।

वहाँ आचार्य १०८ श्री विमलसागरजी महाराज ने आचार्य द्वय के सान्निध्य में दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की थी तथा अजितमतीजी ने आर्यिकादीक्षा ग्रहण की थी। २१ दिन वहाँ रह कर प्रातः स्मरणीय पूज्य १०८ आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज का संघ वहाँ से विहार करके आगरा की ओर गया। पूज्य १०८ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज का विचार बुन्देलखण्ड जाने का था। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमति माताजी एवं पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज कुछ समय पूर्व १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के संघ में थे। दोनों का पूर्व का परिचय था अतः माताजी ने भी महावीर-कीर्तिजी महाराज के संघ के साथ विहार किया।

सोनागिरि से झांसी, भु'वारा, पृथ्वीपुर, वरुआ, सागर आदि अनेक नगरों के विशाल-विशाल जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए महाराजश्री संघ सहित टीकमगढ़ पहुँचे। यहां भी अनेक विशाल जिनमन्दिर हैं, श्रावकों के भी कई घर हैं। यहाँ से तीन मील दूर पपौरा नामका अतिशय क्षेत्र है जहाँ के ७५ विशाल जिनमन्दिर गगनचुम्वी शिखरों से संयुक्त है। इन भव्य जिनालयों के दर्शन से मिथ्यात्वान्धकार दूर हो जाता है। यहां से विहार कर वम्वोरी आदि के दर्शन करते हुए संघ आहारक्षेत्र पहुँचा।

आहारक्षेत्र अतिशय क्षेत्र है। किसी समय वहां पर अनेक जिनमन्दिर थे। प्रमाण स्व-रूप आज भी वहाँ सहस्रों खण्डित प्रतिमाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ के विशाल विम्व हैं। भगवान शान्तिनाथ के विम्व के दोनों हाथ खण्डित हैं, पुनः जुड़े हुए हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि शत्रुओं ने इस विम्व को खण्डित कर दिया था। विम्व को यहां से हटाने के भी प्रयास हुए परन्तु सफलता नहीं मिली अतः यहीं पर इसकी स्थापना कर दी गई। विम्व अत्यन्त मनोज्ञ है।

आहार क्षेत्र के जिनमन्दिरों के दर्शनों से जो अपूर्व आनन्द आया वह वचनातीत है। वहां से क्षेमपुरी, शाहगढ़, विलगाँव, तालेका, मरवाना, पिशागरण, धुवारा, बड़गांव आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए तथा धर्मपिपासु भव्य चातकोंको धर्मामृत का पान कराते हुए आचार्य-श्री द्रोणगिरि पहुँचे।

फलहोडीवरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे।
गुरुदत्ताई मुणिंदा, णिव्वाणगया णमो तेसिं ।।

यह फलहोड़ी नदी और बड़गांव की पश्चिम दिशा में है। बड़गाँव में भी एक छोटी-सी हाड़ी पर जिनमन्दिर है। वहाँ से फलहोड़ी नदी के उस पार द्रोणगिरि पर्वत है, पर्वत के नीचे एक जिनमन्दिर है। ऊपर ३५ जिनमन्दिर हैं। सिद्धक्षेत्रों के दर्शन से पुण्यराशि का बन्ध होता है, पापलिमा दूर होती है और परम्परा से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

यहां से तिगोड़ा आदि अनेक ग्रामों में विचरण करते हुए संघ नैनागिरि (रेशिन्दीगिरि) पहुँचा। इस पर्वत पर ३६ जिनमन्दिर हैं। यहाँ भगवान पार्श्वनाथ का समोसरण आया था। वरदत्तादि पाँच ऋषियों ने यहीं से निर्वाण पद प्राप्त किया था। पर्वत की तलहटी में तालाब के मध्य में एक अत्यन्त मनोज्ञ जिनमन्दिर है। वहां की शोभा अनुपम है।

पासस्स समवसरणे, गुरुवरदत्त पंचरिसिपमुहा।
रेसिंदीगिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ।।

यहां से आचार्यश्री वंधाजी क्षेत्र गये। इस स्थान पर भगवान आदिनाथ, अजितनाथ एवं सम्भवनाथ का एक मन्दिर तलघर में है। अतिशयकारी प्रतिमाएं हैं। कुछ खण्डित प्रतिमाएं भी हैं।

गन्धोदक महिमा :

गर्मी के दिन थे। यहां की भीषण गर्मी से क्षेत्र के सभी कुए सूख गए थे। एक मील दूर नदी से पानी लाना पड़ता था। मैंने एक दिन आचार्यश्री से कहा—"गुरुदेव! यहां पानी का अभाव है। विहार करके अन्यत्र चलना चाहिए।" महाराजश्री बोले—"कुआ तो तुम्हारे कमरे के पास में ही है। पानी दूर से क्यों लाते हो?" मैंने कहा—"गुरुदेव! उसमें पानी नहीं है।" महाराजश्री स्वल्प मुस्करा कर चुप हो गए। दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने जिनेन्द्रदेव का अभिषेक किया। पूज्य गुरुवर ने संकेत दिया कि यह गन्धोदक कुए में डाल दो। मैंने महामन्त्र णमोकार का जाप करते हुए भगवान के पावन शरीर से स्पर्शित पवित्र गन्धोदक कुए में डाल दिया। कुछ देर वाद देखा तो कुआ पानी से पूरा भरा था। गन्धोदक की महिमा अचिन्त्य है। गुरुदेव के इस चमत्कार को देखकर वहां के नर-नारी हर्षित होकर महाराजश्री का जय-जयकार करने लगे, मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

यहाँ से हट्टेरा आदि मार्गस्थ ग्रामों में विहार करता हुआ संघ कुण्डलपुर पहुँचा। कुण्डलपुर में एक छोटा-सा पर्वत है जिस पर सत्तावन जिनमन्दिर हैं। उनमें विशाल-विशाल जिनविम्ब हैं। पर्वत पर भगवान महावीर का जिनमन्दिर है जिसे 'वड़े वावा' का मन्दिर कहते हैं। उस मन्दिर में स्थित महावीर प्रभु का पद्मासन जिनविम्ब कहीं पास की अटवी में था। किसी महाशय को

स्वप्न आया कि घासफूस की गाड़ी बना कर, उस गाड़ी में भगवान को विठा कर अन्यत्र ले जा सकते हो परन्तु वह गाड़ी अपने आप चलेगी, तुम पीछे मुड़ कर नहीं देखना। घूम कर देखते ही गाड़ी वहीं पर रुक जाएगी।

निद्रा खुली तो महाशय स्वप्न का विचार करने लगे—इतनी विशाल प्रतिमा घास की गाड़ी पर कैसे आ सकती है? तथापि स्वप्न की परीक्षा करने हेतु वहां गए। विम्ब को स्पर्श किया, दोनों हाथों से बिम्ब को उठाया तो विम्ब फूल के समान हल्का प्रतीत हुआ। महान् विशालकाय जिनविम्ब को फूल के समान हाथ से उठाकर फूस की गाड़ी पर विराजमान कर महाशय आगे-आगे चलने लगे। कुछ दूर जाने के बाद उनके मन में विचार आया कि गाड़ी पीछे आ रही है या नहीं? ज्योंही उन्होंने पीछे घूमकर देखा तो गाड़ी वहीं पर रुक गई। एक तिल मात्र भी आगे नहीं बढ़ी। अन्ततोगत्वा, उसी पर्वत पर भगवान को विराजमान किया गया। उस बिम्ब के अंगूठे से दूध की धारा निकलती थी। इस दूध से अनेक रोग दूर हो जाते थे। एक बार यवनराज अपने साथियों के साथ प्रतिमा को खण्डित करने के लिये आया तो वहां मधुमक्खियों के समूह के समूह दृष्टिगोचर होने लगे और प्रतिमा खण्डित करने वालों को कष्ट देने लगे जिससे उन्हें वहां से भागना पड़ा।"

पर्वत के नीचे निर्मल जल से भरा हुआ विकसित कमलों से सुशोभित एक तालाब है। उसके समीप एक रमणीय जिनमन्दिर है। तालाब का नाम कुण्डलगिरि है। पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज ने कहा था कि यह अन्तिम केवली श्रीधर का सिद्धक्षेत्र है—

कुंडलगिरिम्मि चरिमो, केवलणाणिसु सीधरो सिद्धो।
चारणरिस्सिसु चरिमो, सुपासचंदाभिधाणीय ॥

निo चउत्थो महाधियारो गाo १४७९

केवलज्ञानियों में अन्तिम श्रीधर केवली कुण्डलगिरि पर सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं। ऐसा तिलोयपण्णत्ति में वर्णन है। इस पर्वत का नाम भी कुण्डलगिरि है इससे सिद्ध होता है कि यह श्रीधर केवली का सिद्धक्षेत्र है। यहाँ की भूमि परम पवित्र है। चारों ओर फल-फूलों की गन्ध से क्षेत्र सुवासित रहता है।

'बड़े बाबा' के अतिशय प्रभावशाली बिम्ब का अवलोकन कर मन-मयूर नाच उठता है। जिस प्रकार चाँदनपुर के श्रीमहावीरजी क्षेत्र में अनेक यात्री अपनी मनोकामनाएँ लेकर आते हैं और पुण्य योग से उनकी कामनाएं पूर्ण होती हैं, उसी प्रकार यहां भी यात्रीगण अपनी कामनाएँ पूर्ण हुई पाते हैं। यहां से कुल्हाकुमारी होते हुए आचार्य महावीरकीर्तिजी कटनी पहुँचे। कटनी में कुछ वर्ष पूर्व आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने चातुर्मास किया था। वहां की समाज अत्यन्त साधुभक्त एवं धर्मिष्ठ है।

महाराज से घोर उपसर्ग किया। उस समय महाराजश्री के साथ क्षुल्लक शीतलसागरजी, क्षुल्लक सम्भवसागरजी थे। श्रावकों में श्री केसरीमलजी बड़जात्या, श्री चांदमलजी बड़जात्या, श्री झूमरमलजी बगड़ा, श्री नेमीचन्दजी बगड़ा आदि थे। अज्ञानी दुर्जनों ने महाराजश्री पर लाठियों से प्रहार किया, उसे दूर करने के लिए श्रावकों ने प्रयत्न किया। नागौर निवासी गुरुभक्त चांदमलजी बड़जात्या ने अपनी जान जोखम में डाल कर आचार्यश्री पर पड़ने वाली लाठियों को अपने हाथों पर झेला। आचार्यश्री बैठ गए थे उन्होंने अपने शरीर से आचार्यश्री का शरीर आच्छादित कर लाठियां पीठ पर सहीं। उन्हें काफी चोट लगी। तभी पुलिस की एक जीप आगई और उपसर्ग दूर हुआ। श्री चाँदमलजी ने असीम साहस एवं गुरुभक्ति का परिचय दिया, आज के युग में विरले ही व्यक्ति ऐसे होते हैं।

यहां से पुरलिया, चाइवासा होते हुए आचार्यश्री कटक पहुँचे। यहां दो प्राचीन जिनमन्दिर हैं। प्राचीन प्रतिमाएँ एवं प्राचीन यन्त्र भी हैं। पूर्वकाल में यह कलिङ्गदेश कहलाता था यहां राजा खारवेल ने अनेक प्रतिष्ठाएँ करवाई थीं। कटक से अठारह मील दूर पर खण्डगिरि उदयगिरि नामक सिद्धक्षेत्र है—

जसहररायस्स सुआ, पंचसयाइं कलिंगदेसम्मि।
कोडिसिलाकोडिमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

कलिङ्ग देश में यशरथ राजा के पांच सौ पुत्रों एवं कोटि मुनियों को मुक्ति प्राप्त हुई है। यहां पर्वत पर भगवान आदिनाथ का एक प्राचीन विम्ब है और आधुनिक प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ भगवान का खड्गासन विम्ब है। और भी अनेक जिनविम्ब हैं। पर्वत के मध्य में पत्थर पर खड्गासन प्रतिमा उकेरी हुई है। अनेक शिलालेख हैं; पर्वत पर अनेक गुफाएं भी हैं। नीचे भी एक छोटा सा मन्दिर है। यहाँ अनेक जैनेतर बन्धु भी उसकी प्राचीनता देखने के लिए आते हैं। वहां की प्राकृतिक छटा मनमोहक है। सिद्धक्षेत्र के दर्शन से पापपंक का प्रक्षालन होता है। महाराज यहां पर बीस दिन रहे। श्रीमान् सुगनचन्दजी लुहाड़िया ने सिद्धचक्र विधान कराया। कटक निवासी केशरीमल निहालचन्द्रजी के यहां कलकत्तावासियों के आवागमन का सदा तांता सा लगा रहता था। यहां से विहार कर पुनः उसी रास्ते से कटनी, जहाजपुर होता हुआ आचार्यश्री का संघ निमियाघाट से पर्वतराज की वन्दना हेतु पर्वत पर चढ़ कर वन्दना करके मधुवन पहुँचा। कुछ दिन यहां रह कर संघ ईसरी में आया।

१३ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०१२ का वर्षायोग आर्यिका इन्दुमतिजी ने आचार्य महावीरकीर्तिजी के संघ के साथ ईसरी में सम्पन्न किया।

आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज सोनागिरि से आगरा, मुरेना होते हुए निवाई, टोडारायसिंह में संघ सहित चातुर्मास कर जयपुर पहुँचे। आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज

के द्वारा प्रदत्त आचार्य पद जयपुर खानिया चातुर्मास में पूज्य श्री वीरसागरजी महाराज को विधि पूर्वक प्रदान किया गया। आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज की वृद्धावस्था थी, स्वास्थ्य भी नरम रहने लगा था। पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतिजी ने जब आचार्यश्री के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सुना कि गुरुवर्य अस्वस्थ्य रहने लगे हैं तो वे आचार्यश्री के दर्शन की उत्कट अभिलाषा से वहां से विहार कर गिरिडीह, कोडरमा, नवादा, गुणावा, राजगिरि, पावापुरी, कुण्डलपुर, पटना, आरा, बनारस, अयोध्या, फिरोजाबाद, सुमेरगञ्ज, दरियाबाद, बाराबंकी, लखनऊ, कानपुर, एटा, यशवन्तगढ़, सुरेरा, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद, टुण्डला, आगरा, भरतपुर, एत्मादपुर, हिण्डौन, श्री महावीरजी, गंगापुर, ब्राह्मणवास, मंढारा, लालसोट, कोटखावदा, निमोड़ा, पदमपुरा, शिवदासपुरा, चनलाई आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन करती हुई एवं धर्मपिपासु भव्य जीवों को धर्मामृत का पान कराती हुई खानिया पहुँची। वहां आचार्यश्री विशाल संघ सहित विराज रहे थे। तीन वर्ष बाद पुनः गुरुवर्य एवं समस्त संघ के दर्शन से मन हर्षित हो गया। नेत्रों में आनन्दाश्रु छलक रहे थे। गुरुदेव एवं संघ के अप्रतिम वात्सल्य से हृदय गद्गद हो गया तथा शरीर रोमाञ्चित हो उठा।

१४ वाँ वर्षायोग :

पूज्य माताजी ने वि० सं० २०१३ का चातुर्मास खानिया (जयपुर) में आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज व संघ के साथ किया। संघ का धर्मस्नेह अपूर्व था। संघस्थ साधुओं की तत्त्व-चर्चा व विद्वानों के समागम से विशेष ज्ञानाराधना हुई थी। नियमित और व्यस्त दिनचर्या के कारण चातुर्मास का काल इतना शीघ्र समाप्त हो गया जैसे दो दिन ही बीते हों।

वर्षायोग समाप्ति पर आचार्यश्री शारीरिक अशक्तता के कारण समीप ही खजाञ्ची की नसियाँ, जयपुर पधार गए। संघ के साधुगण समीपवर्ती ग्रामों में चले गए। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतिजी ने आमेर, सांगानेर, पिपालिया, माँजी का रेणवाल, माधोराजपुरा आदि गांवों में विहार किया। आषाढ़ माह में परम पूज्य १०८ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज संघ सहित जयपुर पहुँचे। आचार्य वीरसागरजी महाराज के संघस्थ समस्त साधुगण भी लौट आए। उस समय ३० साधुओं का विशाल संघ था। अनेक ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणियां थीं। उस समय का वातावरण चतुर्थकाल की स्मृति दिलाता है।

एक दिन परम पूज्य १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज शास्त्रस्वाध्याय कर रहे थे। उस समय वे क्षुल्लक अवस्था में थे। उन्होंने मुझसे कहा—"तुमसे तो एकेन्द्रिय अच्छा है, उसमें प्रतिवर्ष विकास स्वरूप कुछ नवीनता तो आती है, तुमने आज तक इतने वर्षों में कुछ भी उन्नति नहीं की। क्या यह तुम्हारे लिए शोभादायक है ?" महाराजश्री का संकेत मेरे हृदय को स्पर्श कर गया। वास्तव में

जिस उमंग से साधु समागम में रहना स्वीकार किया था, वह अभी तक पूर्ण नहीं हुआ था। एक वर्ष पूर्व जब आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज टोडारायसिंह में विराज रहे थे तब मैं आचार्यश्री के दर्शनार्थ श्री सम्मेदशिखरजी से आई थी। उस समय पूज्य १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज की क्षुल्लक-दीक्षा का समारोह था। इस अवसर पर पूज्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज ने मुझसे कहा था—"अब तो तुम्हारी सारी तीर्थयात्राएँ हो गई, फिर व्यर्थ में क्यों समय नष्ट करती हो; आर्यिका के व्रत ग्रहण करो।" महाराजश्री के इन वचनों को सुनकर परम पूज्य १०८ आचार्य गुरुदेव श्री वीरसागरजी महाराज बोले—"भैया! मैं अब बूढ़ा हो गया हूं। यह मुझसे दीक्षा नहीं लेगी।"

इन दिनों पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज श्री सम्मेदशिखरजी में विराज रहे थे। आर्यिका इन्दुमती माताजी भी वहीं थीं। आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज विशेष ज्ञानी थे, वे बाह्य क्रियाओं से मनुष्य के अन्तरंग को पहचानने वाले थे। वे यह समझते थे कि मैं (भंवरी बाई) आर्यिका इन्दुमति माताजी की उपस्थिति के बिना दीक्षा लेने वाली नहीं हूं अतः उनकी उपस्थिति में श्री महावीरकीर्तिजी महाराज से ही दीक्षा लूंगी। इसीलिए उन्होंने संकेत किया। मैं गुरुदेव का संकेत समझ गई। मैंने तत्काल उत्तर दिया—"गुरुदेव! जिस समय आपकी और महावीरकीर्तिजी की तथा इन्दुमतीजी आदि सभी आर्यिकाओं की उपस्थिति होगी तभी दीक्षा लूंगी।"

आचार्यश्री ने मधुर मुस्कान बिखरते हुए कहा—"न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।" पूज्य शिवसागरजी महाराज भी वहीं थे। मैंने कहा—"गुरुदेव! ऐसा कौनसा अद्‌भुत और असम्भव कार्य है जो नहीं होगा।" महाराजश्री ने कहा—"समुद्र के एक तरफ जूवा है और दूसरी तरफ गाड़ी" दोनों का मिलना असम्भव है। इसी प्रकार एक ओर वृद्धावस्था एवं क्षीण शरीर प्राप्त गुरुदेव श्री वीरसागर जी महाराज राजस्थान में हैं तो दूसरी ओर सुदूर विहार में श्री सम्मेद-शिखरजी में श्री महावीरकीर्ति जी और आर्यिका इन्दुमतिजी हैं, दिल्ली में वीरमतिजी आदि आर्यिकाओं का संघ है। इन सबका एकत्र होना असम्भव तो नहीं है तथापि दुस्साध्य अवश्य है।"

मैंने कहा—"गुरुदेव! णमोकार मन्त्र के प्रभाव से (अघटितं घटत्येव, घटितं विघटत्येव च) दुस्साध्य से दुस्साध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाते हैं। आपके समक्ष ही मेरी अभिलाषा पूर्णता को प्राप्त करेगी।" अपनी भावना को इस तरह अभिव्यक्त कर मैं तब शिखरजी (मधुवन) चली आई थी। दो वर्ष की अवधि में ही मेरी मनोकामना पूर्ण हुई।

परम पूज्य श्रुतसागरजी महाराज के उद्‌बोधन ने मुझे अपने विस्मृत कर्त्तव्य का स्मरण करा दिया था। उस समय पूज्य श्रुतसागर महाराज क्षुल्लक अवस्था में थे। मैंने कहा—"महाराज! आप भी तो दो साल से वहीं पर खड़े हैं। मुझे क्षुल्लिका नहीं बनना है, मैं आर्यिका बनूंगी। क्या आप क्षुल्लक रह कर मुझे नमस्कार करेंगे।"

वे बोले—"नहीं।"

"तो क्या आप दिगम्बर दीक्षा लेंगे ?"

"देखेंगे समय पर, तुम तो कुछ करके दिखाओ।"

पू० इन्दुमतीजी की देन : आर्यिका दीक्षा—१५ वाँ वर्षायोग :

खानिया (जयपुर) वि० सं० २०१४। भाद्रपद का मंगल मास। विशाल संघ का सान्निध्य। दो आचार्यों—श्री वीरसागर जी महाराज, श्री महावीरकीर्ति जी महाराज—की उपस्थिति। प्रतिदिन विद्वानों का आगमन। परम पूज्य आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज के दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों का न टूटने वाला क्रम। आचार्यश्री का भौतिक शरीर क्षीण होता जा रहा था मगर आत्मिक बल वृद्धिगत था।

विचारों की उत्तुङ्ग लहरें मेरे मानस को आन्दोलित कर रही थीं कि यह स्वर्ण अवसर हाथ से नहीं खोना। संध्या समय मैंने अपने मन के भाव पूजनीया मातृतुल्य गुरुवर्या परम परोपकारिणी इन्दुमती माताजी के समक्ष अभिव्यक्त किये। सुनते ही वे बड़ी प्रसन्न हुई और उन्होंने तत्काल मेरी भावना समस्त आर्यिकाओं पर प्रकट कर दी।

प्रातःकाल आर्यिका सुमतिमती माताजी व इन्दुमती माताजी ने मेरी मनोभावना आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के सम्मुख व्यक्त कर दी। आचार्यश्री ने सुनने के साथ ही अपनी स्वीकृति दे दी।

विक्रम संवत् २०१४ भाद्रपद शुक्ला षष्ठी के दिन मेरी दीक्षाविधि आयोजित हुई। नाम सुपार्श्वमती[1] रखा गया और मुझे आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी को सौंप दिया गया।

卐

---

१. आर्यिका दीक्षा समारोह बड़े ठाट-बाट के साथ सम्पन्न हुआ था। अपार जनसमूह के समक्ष आचार्यश्री वीरसागरजी द्वारा आचार्य महावीरकीर्ति जी, आर्यिका इन्दुमती जी व अन्य आर्यिकाओं व मुनिराजों के सान्निध्य में यह दीक्षा दी गई। सुपार्श्वनाथ भगवान का गर्भकल्याणक का दिन होने से नाम सुपार्श्वमती रखा गया। परम पूज्य आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न होने वाली यह अन्तिम दीक्षा थी। पूज्य श्रुतसागरजी महाराज एवं सन्मतिसागरजी महाराज ने भाद्रपद शुक्ला तृतीया को दिगम्बर दीक्षा—मुनिपद धारण किया था।—सं०

६

गुरु वियोग

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च", जन्म के साथ मरण और मरण के बाद जन्म यह अनादि का क्रम है; सारा पुरुषार्थ जीव का इसी ओर होना चाहिए कि वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाए। जन्म भी उसी का सार्थक कहा जाना चाहिए जो मुक्ति की ओर अग्रसर हो। ऐसे ही वीर पुरुष थे आचार्य वीरसागर महाराज जिन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षण को सार्थक व्यतीत किया और आसोज कृष्णा अमावस्या की मध्याह्न वेला में आत्मध्यान में निमग्न हो कर ३१ साधु-साध्वियों के समक्ष अन्तरङ्ग विशुद्धिपूर्वक नश्वर भौतिक देह का विसर्जन कर उत्तम गति के लिए प्रयाण किया।

मैं (सुपार्श्वमति) आपकी अन्तिम दीक्षित शिष्या हूं। मेरी दीक्षा के कुछ दिनों बाद ही आचार्यश्री हम सबको छोड़ कर चले गए। गुरु-वियोग असाध्य होता है। छठे गुणस्थानवर्ती साधुओं के भी इष्ट-वियोग होने से किञ्चित् आर्त्तध्यान हो सकता है। विशाल संघ के कुशल संचालक, वात्सल्य भाव की मूर्ति, परम तेजस्वी, शिष्यों के प्रतिपालक, करुणा से ओतप्रोत शान्त स्वभावी गुरु का वियोग किसे हृदय-विदारक नहीं था। मरुस्थल जैसे शुष्क प्रदेश के शुष्क-मानव-तरुवरों को श्री चन्द्रसागर जी महाराज ने सींचा था। आपने पुनः दीर्घकाल तक धर्मामृत पिला कर उन्हें अंकुरित, पुष्पित एवं फलित किया था। कितने ही प्राणियों को संयम का सहारा देकर संसार-समुद्र में डूबने से बचाया था। जैन समाज आपका उपकार कभी नहीं भूल सकेगी।

पूज्य श्री वीरसागर जी महाराज, आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य थे। आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज ने अपनी सल्लेखना के समय कुन्थलगिरि में आपको

आचार्य पद प्रदान करने की घोषणा की थी और पिच्छिका व कमण्डलु भिजवाए थे। ये पिच्छिका-कमण्डलु आपको शास्त्रोक्त विधि-विधान पूर्वक खानिया जयपुर में विशाल जनसमुदाय के समक्ष भेंट किए गए थे और आपको 'आचार्य पद' से गौरवान्वित किया गया था। आपके पास अनेक विद्वान आते थे, अपने प्रश्नों के सन्तोषजनक समाधान सुन कर आपके ज्ञान, तपश्चरण एवं सरलता से मुग्ध होकर नतमस्तक हो जाते थे।
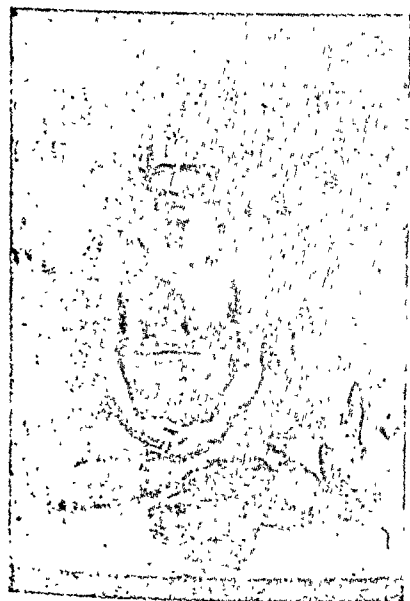
आ० वीरसागरजी

आपका 'वीर' नाम यथार्थ था। आप काम रूपी योद्धाओं को जीतने वाले होने से 'वीर' थे। आपने अपने जन्म से खण्डेलवाल जातीय गंगवाल गोत्रोत्पन्न रामलालजी की भार्या भागुबाई की कुक्षि को पवित्र किया था। अल्पायु में ही ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर लिया था। अपने सहपाठी खण्डेलवाल गोत्रोत्पन्न श्री खुशालचन्दजी पहाड़िया (श्री चन्द्रसागर जी महाराज) के साथ में आचार्यश्री शान्तिसागर महाराज के दर्शन से आपने संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर व्रत प्रतिमा ग्रहण की थी। फिर निरन्तर गुरु सान्निध्य में रह कर आचार्यश्री से दिगम्वर दीक्षा ग्रहण की थी।

दिगम्वर अवस्था में आपने दो वार परम पुनीत श्री सम्मेदशिखरजी तीर्थक्षेत्र की पैदल-यात्रा की थी। आपने अपने चरणारविन्द से अटक से कटक तक समस्त भारतभूमि को पवित्र किया था।

वि····विशेषेण, ई····अन्तरङ्ग-वहिरङ्ग, रं···श्रियं शान्तिं गृह्णाति, ददाति असौ वीरः। आपने स्वयं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूपी सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी को ग्रहण किया था एवं अनेक भव्य जीवों को रत्नत्रय-रूप निधि प्रदान कर समृद्धिशाली वनाया था अतः आप वास्तव में सार्थक नाम वाले थे। आपके द्वारा निर्मल वीतराग शासन का उद्योत हुआ था।

आपने गृहस्थावस्था में भी कचनेर में गुरुकुल स्थापित किया था तव आपका नाम हीरालाल जी गंगवाल था, आप गुरुजी के नाम से ख्यात थे। गुरुकुल का संचालन स्वयं कर आपने अनेक भव्य जीवों का अज्ञानान्धकार दूर किया था। मुनि अवस्था में आपने अनेक भव्य जीवों को शिव-राह वता कर कल्याण किया। आज जितना त्यागी वर्ग दृष्टिगोचर हो रहा है वह विशेषतः आपकी ही देन है।

आचार्यश्री वीरसागरजी के वचनों में 'गागर में सागर' भरा था, ऐसा कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

❀ यदि गागर फूटी है तो नीर का परिधारण नहीं होगा, धागा टूटा होगा तो टुकड़ों का सन्धान नहीं होगा।

❀ लक्ष्य के बिना चलना पैरों का अभिशाप है।

❀ विश्वास देकर ठगना सबसे बड़ा पाप है।

❀ विज्ञान के द्वारा बाहरी खोज करना सरल है। भेद विज्ञान के द्वारा अन्तरंग की खोज करना कठिन है।

❀ आंख-नाक मूंद कर समुद्र में प्रवेश किये बिना रत्नों की प्राप्ति नहीं होती है, वैसे ही इन्द्रिय निरोध कर अन्तरंग आत्मा में प्रवेश किये बिना स्वात्मनिधि की प्राप्ति नहीं होती है।

❀ सुई का काम करो, कैंची का काम मत करो।

❀ भीतर काले बाहर उजले मत बनो।

❀ अपनी भूल का विचार करो, दूसरों की भूल मत देखो।

❀ गुणग्राही हंस बनो, दुर्गुणग्राही जोंक मत बनो।

❀ खरा है सो मेरा है। मेरा है सो ही खरा है—ऐसा मत कहो।

❀ कांचली छोड़ने से सर्प निर्विष नहीं होता, उसी प्रकार बाहरी त्याग मात्र से कर्म रहित नहीं होंगे—भीतर के रागद्वेष का त्याग करो।

❀ धर्मात्माओं के साथ वात्सल्य भाव रखो।

❀ "पण्डिताई माथे चढ़ी, पूर्व जन्म को पाप।
औरन को उपदेश दे, कोरे रह गए आप ।।" अर्थात् चमची सब प्रकार के व्यञ्जनों में जाती है, सब सामग्री परोसती है परन्तु स्वत: उनका स्वाद नहीं लेती है; उसी प्रकार आत्मानुभव शून्य मनुष्य समस्त ग्रन्थ पढ़ता है, दूसरों को भी समझाता है परन्तु स्वयं आत्मानुभव रस का स्वाद नहीं लेता है।

❀ पर निन्दा के लिए मूक बनो। दूसरों के दोष देखने के लिए अन्धे बनो।

❀ साधु का घर दूर है जैसे पेड़ खजूर।
ऊपर चढ़े तो रस चखे, नीचे चकनाचूर ।।

❀ ऊपर उठना है तो पतंग के समान व्रत की एवं गुरु की आज्ञा रूप डोरी में बंधे रहो।

❀ भोगों के समय नीचे की ओर देखो, त्याग के समय ऊपर की ओर देखो।

आचार्यश्री वचन से कम बोलते थे, आपका व्यक्तित्व ही मोक्षमार्ग का निरूपण करता था।

संघस्थ साधु-साध्वियों का संक्षिप्त परिचय

(१) प्रथम शिष्य, पूज्य १०८ श्री आदिसागरजी महाराज :

आपका जन्म दाँता रामगढ़ (सीकर, राजस्थान) में हुआ। जन्म नाम चांदमलजी अजमेरा था। आपकी दीक्षा प्रतापगढ़ में वि० सं० १९९० फाल्गुन सुदी ग्यारस को हुई थी। आप परम तपस्वी, शान्तिप्रिय, अध्यात्मयोगी थे। श्री सम्मेदशिखरजी में आपका स्वर्गवास हुआ।

(२) परम तपस्वी १०८ आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज :

आपका जन्म अड़गाँव में खण्डेलवाल जातीय रांवका गोत्रोत्पन्न श्री नेमीचन्द जी के घर माता दगड़ाबाई की कोख से हुआ था। नाम हीरालाल था। बाल्यकाल में ही आपके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था जिससे सम्पूर्ण कुटुम्ब के भरण-पोषण का भार आप पर आ पड़ा। आपने बाल्यावस्था में ब्र० हीरालाल जी गंगवाल (पू० वीरसागरजी महाराज) के सान्निध्य में कचनेर के गुरुकुल में कुछ समय तक अध्ययन किया था। जिस समय श्री वीरसागरजी महाराज ने मुनि-अवस्था में कचनेर में वर्षायोग किया तब आपको बाल्यकाल की स्मृति हो आई। आपने विचार किया कि जिन्होंने बचपन में ज्ञान दिया, उन्हीं को सच्चा गुरु बना कर आत्मकल्याण करूँ। आप गृहस्थी के बन्धन में नहीं बँधे, बालब्रह्मचारी रहे। संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर आप कचनेर से आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के साथ में आ गये।

आपने मुक्तागिरि सिद्ध-क्षेत्र पर वि० सं० १९९९ में सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये तथा सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र पर क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। तब ये शिवसागर बने। वि० सं० २००६, आषाढ़ शुक्ला ग्यारस के दिन नागौर नगर में आपने जिनदीक्षा ग्रहण की। वि० सं० २०१४, कार्तिक शुक्ला ग्यारस के दिन आपको स्व० आचार्य वीरसागरजी महाराज का उत्तराधिकारित्व (आचार्य पद) प्रदान किया गया।

यद्यपि गृहस्थावस्था में आपका विशेष अध्ययन नहीं था परन्तु त्यागी बनने के बाद आपका ज्ञानाभ्यास बढ़ता ही गया। संस्कृत प्राकृत भाषाओं में आपकी गति हो गई।

आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के स्वर्गारोहण के बाद आपने संघ सहित भगवान नेमिनाथ के निर्वाण क्षेत्र गिरनार पर्वत की यात्रा की। संघ संचालक थे निवाई निवासी ब्र० हीरालालजी पाटनी, आपने इस पुनीत प्रयोजन में अपने द्रव्य का सदुपयोग किया। अनन्तर ब्यावर, अजमेर, सुजानगढ़, डेह, नागौर, सीकर, लाडनूँ, जयपुर (खानिया), पपौरा, श्रीमहावीर जी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों को संघ सहित चातुर्मास कर पवित्र किया। इस विहार काल में

आपने पूज्य अजितसागरजी महाराज आदि अनेक विद्वान व्यक्तियों को एवं जिनमतीजी, विशुद्धमतीजी आदि विदुषियों को मुनि एवं आर्यिका पद से विभूषित किया।

श्रीमहावीरजी अतिशयक्षेत्र में मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं के चतुर्विध विशाल संघ के समक्ष अल्पायु में ही वि० सं० २०२६, फागुन कृष्णा अमावस्या के दिन आपने प्राणोत्सर्ग किया।

यद्यपि आप शरीर से दुबले-पतले थे परन्तु आपका आत्मबल बहुत दृढ़ था।

आप हमेशा कहा करते थे—"भक्ति से शक्ति, शक्ति से युक्ति और युक्ति से मुक्ति होती है। जब हम में भक्ति ही नहीं है तो शक्ति कहां से आएगी। जिस समय (सरसों का दाना भी जिसके शरीर में चुभता था ऐसे) सुकुमाल के हृदय में गुरुओं की भक्ति उमड़ पड़ी तब रस्सी के सहारे उतरने की शक्ति और रस्सी बना कर उतरने की युक्ति मिल गई और वे चारित्र धारण कर संसार कारागृह से मुक्त हो गए।"

"चिन्ता से चतुराई घटती है। चिन्तन से चतुराई बढ़ती है। विषय भोगों के चिन्तन से चतुराई घटती है, आत्मचिन्तन से चतुराई बढ़ती है।"

"बुरा जो खोजन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।"

आपका एक-एक शब्द अनुकरणीय होता था। आप जैसे तपस्वियों के दर्शन से अनेक भवों की उपार्जित कर्मकालिमा दूर हो जाती है। आप श्री के चरणों में शत-शत वन्दन! शत-शत वन्दन!!

(३) मुनिश्री सुमतिसागरजी महाराज :

वि० सं० १९६४ आसोज सुदी चौथ के दिन खण्डेलवाल जातीय कासलीवाल गोत्रीय श्रीमान् नेमीचन्द जी के घर माता केसरबाई की कोख से पीपरी (औरंगाबाद) में आपका जन्म हुआ। नाम रखा गया चन्दूलाल। आपकी क्षुल्लक दीक्षा वि० सं० २००६ आषाढ़ सुदी ग्यारस के दिन नागौर में सम्पन्न हुई और मुनि दीक्षा सं० २००८ कार्तिक सुदी चतुर्दशी के दिन फुलेरा में। आपका दीक्षा नाम सुमतिसागर रखा गया। आपके पूर्वज डेह (नागौर) के थे।

आपने ४५ वर्ष की अवस्था में माता-पिता की ममता की जंजीर और वनिता की स्नेह-बेड़ी को तोड़ कर, गृहस्थावस्था रूपी कारागृह से निकल कर समता रूपी पाथेय लेकर, दिगम्बर मुनिमुद्रा रूपी रथ पर सवार होकर मुक्ति-पथ की राह अपनाई थी तथा वि० सं० २००६ भादवा

सुदी १५ के दिन पूर्ण संयम, नियम, उपवास के द्वारा कर्मराशि को लघु कर ईसरी (सम्मेदशिखर) में गुरु सान्निध्य में भौतिक शरीर का परित्याग किया था। आप परम तपस्वी व दृढ़ विश्वासी साधु-राज थे। ऐसे साधुराज के चरणों में शत-शत वन्दन।

(४) मुनिश्री धर्मसागरजी महाराज :

मुनिश्री धर्मसागरजी महाराज

परम पूज्य प्रात: स्मरणीय शान्त स्वभावी वाल ब्रह्मचारी १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज का जन्म गम्भीरा गांव (बूंदी) में सद्‌गृहस्थ खण्डेलवाल जातीय छावड़ा गोत्रीय श्री बख्तावरमल जी के घर माता उमराव बाई की कोख से विक्रम संवत् १९७० पौष शुक्ला पूर्णिमा को हुआ। अशुभ कर्मोदय से आपके वाल्यकाल में ही माता-पिता का प्लेग रोग के कारण स्वर्गवास हो गया। आपकी चचेरी बहन ब्र० दाखाबाई ने आपका लालन-पालन किया। संसार की स्थिति को देखकर आप विरक्त ही रहते थे। बाल्यावस्था में भी आप अत्यन्त उत्साही और वीर थे। एक बार आप आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी से कह रहे थे कि "गुरुदेव! मैं १०-११ वर्ष की अवस्था में तालाब के किनारे खड़ा हुआ लोगों को पानी में कूद कर तैरते हुए देख रहा था। मेरे मन में विचार आया कि मैं भी तो ऐसा ही हूं, क्या मैं नहीं तैर सकता? जब सब लोग घर चले गए तो मैं तालाव में कूद पड़ा। तैरना तो जानता नहीं था, पानी में डूबने लगा। कुछ पुण्योदय से किनारे के पत्थर का सहारा मिल गया तो निकल कर बाहर आया। कपड़े सुखा कर चुपचाप घर चला आया और किसी से भी कुछ नहीं कहा।" यह घटना आपकी बाल्यावस्था में निर्भीकता की द्योतक है।

आप संसार से विरक्त होकर चन्द्रमा के समान सौम्य व शीतल, सूर्य के समान तपस्वी, निर्भीक वक्ता, शास्त्र मर्मज्ञ, आत्मानुभवी १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर संघ में ही रह कर विद्याध्ययन करने लगे। आपको भव्य एवं भद्र परिणामी समझकर चन्द्रसागरजी महाराज ने बालूज (महाराष्ट्र) में वि. सं. २००० में क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। आपके गुणानुसार आपको भद्रसागर (धर्मसागर) नाम से सुशोभित किया गया।

कुछ समय बाद ही गुरुदेव चन्द्रसागरजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। संघस्थ मुनिश्री हेमसागरजी महाराज एवं बोधसागरजी महाराज का स्वर्गवास भी कुछ दिन पहले हो गया

था। अब पुरुष वर्ग में आप ही एक मात्र शिष्य रह गये। गुरु वियोग से आपको बहुत दुःख हुआ। परन्तु काल के समक्ष किसी का वश नहीं चलता, होनहार अमिट होती है। धैर्य धारण कर, वस्तु-स्वरूप का विचार करते हुए आप विहार कर पू० वीरसागरजी महाराज के निकट झालरापाटन पधारे तथा उन्हींके संघ में रह कर ध्यान-अध्ययन करने लगे। संघ के साथ वि० सं० २००६ को टेह में आये।

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज से आपने विक्रम संवत् २००८ में कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन मुनि दीक्षा ग्रहण की। आप मुनिश्री धर्मसागरजी महाराज के नाम से विख्यात हुए। आचार्यश्री के साथ संघ में रह कर आपने सम्मेदशिखर, पावापुर, चम्पापुर आदि अनेक तीर्थों की पैदल यात्रा की। आचार्यश्री की समाधि के बाद श्री गिरनार जी की यात्रा से आपने संघ से पृथक् हो कर अपने विहार से अनेकानेक ग्रामों और नगरों में धर्मामृत की वर्षा की।

आपने मालवा प्रान्त, बुन्देलखण्ड आदि अनेक क्षेत्रों की यात्रा की, धर्म-पिपासुओं को उपदेश-पीयूष का पान कराया तथा अनेक पुरुषों एवं स्त्रियों को मुनि पद एवं आर्यिका पद प्रदान किया।

विक्रम सम्वत् २०२५ की फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र में आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज के स्वर्गारोहण के कुछ दिन बाद आपको अपार जनसमुदाय के बीच आचार्यपद से विभूषित किया गया। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। अभिमान तो मानो आपको छू ही नहीं गया। आपकी वाणी में द्राक्षा से भी अधिक मधुरता है। आपके कुछ मधुर वचन यहां प्रस्तुत हैं—

❀ दूसरा नै कांई देखै छै, आपणो देखणो सीख। दूसरा थारो भलो कोनी कर सकै। तू ही थारो शत्रु है और तू ही थारो मीत।

❀ धोबी को काम करतां घणां दिन हुया है अब तो आपणो कपड़ो धोवण को जतन कर।

❀ घणा दिनां रो खोटो स्वभाव पड्यो है पराई निन्दा-करण रो। ई नै छोड़ो। आपरी निन्दा करै जका नै चोखो जाण।

❀ "निन्दक तू मत मरजे रे! म्हारी निन्दा कुण कर सी रे!" प्रशंसा करणे वाले स्यूं निन्दक नै चोखो जाणो। निन्दक आपणी निन्दा कर आपा नै सचेत करै है। प्रशंसा करणे वालो तो खुद रो भलो करे—आप रो तो भलो कोनी करै।

❀ साधु कै एक गांव एक घर थोड़ो ही है। जठै जावैगो घणां भांत का आदमी मिलै—

"साधु थारै सौ गांव, कोई भाई पटै, कोई भाई नटै।
सगलाई नटै तो जावां कठै, सगलाई पटै तो मैलां कठै॥"

❀ हे आत्माराम ! तू थारो भलो चावै तो सास्त्र रूपी आरस में थारो मूण्डो देख र थारी कालिमा उतार।

❀ जकौ जिस्यो करै विस्यो ही भरै।

❀ करै जका नै करणे द्यो, आपरा मन नै संभाल र राखो।

आचार्यश्री आगम के दृढ़ विश्वासी हैं। आगम विरोधी चर्चा आपको सहन नहीं होती। आपका कहना है कि जितना कर सकते हो उतना तो अवश्य करो। नहीं कर सकते हो तो श्रद्धान करो। श्रद्धान से विमुख मत बनो। आपकी प्रतिभा के समक्ष दर्शक, श्रोता नतमस्तक हो जाते हैं। आपकी गुणगरिमा अवर्णनीय है।

सब जग में है फैल रही, नर-नारी यश का गान करें,
गुणसुवास जगत में महक रही।
पदरज से भूतल पवित्र हुआ।
गुरुवर की महिमा भारी है।
नतमस्तक हो गुरुचरणों में, प्रतिदिन धोक हमारी है॥

(५) मुनिश्री श्रुतसागरजी महाराज :

मुनिश्री श्रुतसागरजी महाराज

आप बीकानेर के हैं, ओसवाल भाबर जाति में आपका जन्म हुआ। संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो आपने युवावस्था में वनिता का बन्धन तोड़ दिया; भगिनियों के प्यार को छोड़ दिया तथा छोटी-छोटी पुत्रियों की ममता भी आपको नहीं जकड़ सकी। कहा जाता है कि स्नेह की डोर वज्र से भी अधिक दृढ़ होती है परन्तु आपने उसे कच्चे धागे के समान तोड़कर फेंक दिया। आपके तीन सुपुत्र और तीन सुपुत्रियों में से सबसे छोटी पुत्री सुशीला ने तो पिता के मार्ग का अनुसरण किया। वह बाल ब्रह्मचारिणी होकर तत्त्वाभ्यास करने लगी तथा अब तो आर्यिका के व्रत भी ग्रहण कर लिये हैं।

था। अब पुरुष वर्ग में आप ही एक मात्र शिष्य रह गये। गुरु वियोग से आपको बहुत दुःख हुआ। परन्तु काल के समक्ष किसी का वश नहीं चलता, होनहार अमिट होती है। धैर्य धारण कर, वस्तु-स्वरूप का विचार करते हुए आप विहार कर पू० वीरसागरजी महाराज के निकट झालरापाटन पधारे तथा उन्हींके संघ में रह कर ध्यान-अध्ययन करने लगे। संघ के साथ वि० सं० २००६ को डेह में आये।

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज से आपने विक्रम संवत् २००८ में कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन मुनि दीक्षा ग्रहण की। आप मुनिश्री धर्मसागरजी महाराज के नाम से विख्यात हुए। आचार्यश्री के साथ संघ में रह कर आपने सम्मेदशिखर, पावापुर, चम्पापुर आदि अनेक तीर्थों की पैदल यात्रा की। आचार्यश्री की समाधि के बाद श्री गिरनार जी की यात्रा से आपने संघ से पृथक् हो कर अपने विहार से अनेकानेक ग्रामों और नगरों में धर्मामृत की वर्षा की।

आपने मालवा प्रान्त, बुन्देलखण्ड आदि अनेक क्षेत्रों की यात्रा की, धर्म-पिपासुओं को उपदेश-पीयूष का पान कराया तथा अनेक पुरुषों एवं स्त्रियों को मुनि पद एवं आर्यिका पद प्रदान किया।

विक्रम सम्वत् २०२५ की फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र में आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज के स्वर्गारोहण के कुछ दिन बाद आपको अपार जनसमुदाय के बीच आचार्यपद से विभूषित किया गया। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। अभिमान तो मानो आपको छू ही नहीं गया। आपकी वाणी में द्राक्षा से भी अधिक मधुरता है। आपके कुछ मधुर वचन यहां प्रस्तुत हैं—

❀ दूसरा नै कांई देखै छै, आपणो देखणो सीख। दूसरा थारो भलो कोनी कर सकै। तू ही थारो शत्रु है और तू ही थारो मीत।

❀ धोबी को काम करतां घणां दिन हुया है अब तो आपणो कपड़ो धोवण को जतन कर।

❀ घणा दिनां रो खोटो स्वभाव पड्यो है पराई निन्दा-करण रो। ई नै छोड़ो। आपरी निन्दा करै जका नै चोखो जाण।

❀ "निन्दक तू मत मरजे रे! म्हारी निन्दा कुण कर सी रे!" प्रशंसा करणे वाले स्यूं निन्दक नै चोखो जाणो। निन्दक आपणी निन्दा कर आपा नै सचेत करै है। प्रशंसा करणे वालो तो खुद रो भलो करे—आप रो तो भलो कोनी करै।

❀ साधु कै एक गांव एक घर थोड़ो ही है। जठै जावैगो घणां भांत का आदमी मिलै—

"साधु थारै सौ गांव, कोई भाई पटै, कोई भाई नटै ।
सगलाई नटै तो जावां कठै, सगलाई पटै तो मैलां कठै ।।"

❀ हे आत्माराम ! तूं थारो भलो चावै तो सास्त्र रूपी आरस में थारो मूण्डो देख र थारी कालिमा उतार ।

❀ जको जिस्यो करै विस्यो ही भरै ।

❀ करै जका नै करणे द्यो, आपरा मन नै संभाल र राखो ।

आचार्यश्री आगम के दृढ़ विश्वासी हैं । आगम विरोधी चर्चा आपको सहन नहीं होती । आपका कहना है कि जितना कर सकते हो उतना तो अवश्य करो । नहीं कर सकते हो तो श्रद्धान करो । श्रद्धान से विमुख मत बनो । आपकी प्रतिभा के समक्ष दर्शक, श्रोता नतमस्तक हो जाते हैं । आपकी गुणगरिमा अवर्णनीय है ।

सब जग में है फैल रही, नर-नारी यश का गान करें,
गुणसुवास जगत में महक रही ।
पदरज से भूतल पवित्र हुआ ।
गुरुवर की महिमा भारी है ।
नतमस्तक हो गुरुचरणों में, प्रतिदिन धोक हमारी है ।।

(५) मुनिश्री श्रुतसागरजी महाराज :

मुनिश्री श्रुतसागरजी महाराज

आप बीकानेर के हैं, ओसवाल भाबर जाति में आपका जन्म हुआ । संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो आपने युवावस्था में वनिता का बन्धन तोड़ दिया; भगिनियों के प्यार को छोड़ दिया तथा छोटी-छोटी पुत्रियों की ममता भी आपको नहीं जकड़ सकी । कहा जाता है कि स्नेह की डोर वज्र से भी अधिक दृढ़ होती है परन्तु आपने उसे कच्चे धागे के समान तोड़कर फेंक दिया । आपके तीन सुपुत्र और तीन सुपुत्रियों में से सबसे छोटी पुत्री सुशीला ने तो पिता के मार्ग का अनुसरण किया । वह बाल ब्रह्मचारिणी होकर तत्त्वाभ्यास करने लगी तथा अब तो आर्यिका के व्रत भी ग्रहण कर लिये हैं ।

महाराजश्री की तत्त्वचर्चा इतनी गम्भीर और विशद होती है कि उसके सामने बड़े-बड़े न्यायतीर्थ पण्डित भी दांतों तले उंगली दबाते हैं। निश्चय एवं व्यवहार नय को विशेष दृष्टान्तों के द्वारा समझाने का आपका तरीका अपूर्व है। आपकी वाणी मधुरता से परिपूर्ण एवं जोश भरी है। आपकी प्रतिभामय आकृति को देखकर भव्यों का मन मुग्ध हो जाता है। आपके समझाने के तरीके से तत्त्व सीधे हृदय में उतर जाता है। आपका 'बेटा' शब्द तो इतना प्यारा है कि सुनने के साथ ही हृदय गद्गद हो जाता है। आपने अनेक भव्य जीवों को दीक्षा-शिक्षा प्रदान कर शिवमार्ग में लगाया है। आपने जिनेन्द्र कथित श्रुत का अभ्यास कर अपने हृदय को श्रुत से भरा है इसलिए आप सच्चे अर्थों में श्रुतसागर हैं। आपके पावन पद कमलों में प्रतिदिन मेरा सविनय प्रणाम!

पूज्य मुनिश्री १०८ पदमसागरजी महाराज (खण्डेलवाल : वाकलीवाल), पूज्य मुनिश्री जयसागरजी महाराज (खण्डेलवाल) और पूज्य मुनिश्री सन्मतिसागरजी महाराज (खण्डेलवाल : छावड़ा; टोडारायसिंह) भी आपके (आचार्यश्री वीरसागरजी) के सुशिष्यों में हैं।

आर्यिका वृन्द

आर्यिका १०५ श्री सुमतिमती माताजी (खण्डेलवाल : विलाला; जयपुर); आर्यिका १०५ श्री विमलमती माताजी (जन्म मुंगावली-ग्वालियर; परवार) : आपका अधिकांश समय डेह, नागौर में विशेष धर्मध्यानपूर्वक व्यतीत हुआ। आप नागौर में ही समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवासिनी हुई।

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी : इन्हीं का जीवनचरित प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ है। आर्यिका १०५ श्री सिद्धमती माताजी (अग्रवाल : दिल्ली); आर्यिका १०५ श्री शान्तिमती माताजी (अग्रवाल) आर्यिका १०५ श्री वासुमती माताजी (खण्डेलवाल, बड़जात्या)

आर्यिका १०५ श्री ज्ञानमती माताजी : आपका जन्म टिकैतनगर (उ० प्र०) में अग्रवाल वंश में हुआ। आपने बाल ब्रह्मचारी आचार्यश्री १०८ देशभूषणजी से क्षुल्लिका दीक्षा एवं आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। समग्र देश में आपके ज्ञान की महिमा फैल रही है। आपने अनेकानेक ग्रन्थों की सरल भाषा में टीका एवं रचना कर जिज्ञासुओं का बहुत हित किया है। आप इस समय ऐतिहासिक हस्तिनापुर में 'जम्बूद्वीप' की रचना का महान् अद्वितीय कार्य सम्पन्न कर रही हैं।

आर्यिका १०५ श्री कुन्थुमती माताजी

आर्यिका १०५ श्री अजितमती माताजी

आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी : प्रस्तुत जीवन चरित की लेखिका हैं। आप आचार्यश्री १०८ वीरसागरजी महाराज की अन्तिम शिष्या हैं।

अन्य त्यागी समुदाय

क्षुल्लक १०५ श्री सिद्धसागरजी, क्षुल्लक १०५ श्री सुमतिसागरजी; क्षुल्लिका श्री अनन्तमतीजी, क्षुल्लिका श्री गुणमतीजी, क्षुल्लिका श्री जिनमतीजी, क्षुल्लिका पद्मावतीजी, क्षुल्लिका चन्द्रमतीजी।

ब्रह्मचारी सूरजमलजी, ब्र० राजमलजी (वर्तमान मुनिश्री १०८ अजितसागरजी महाराज) ब्रह्मचारी दीपचन्द जी बड़जात्या, ब्रह्मचारी चांदमल जी चूड़ीवाल, नागौर आदि अनेक त्यागी-व्रतियों का विशाल संघ था।

इस विशाल संघ के नायक आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज ने ९ दिगम्बर मुनियों, १२ आर्यिकाओं, ६ क्षुल्लिकाओं ३ क्षुल्लकों अनेक ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों तथा हजारों श्रावक-श्राविकाओं के समक्ष स्वर्गप्रयाण किया। मृत्यु के मुख से बचाने वाला कोई नहीं।

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यूँ कबहूं इस जीव का साथी सगा न कोय॥

गुरु रूपी सूर्य के अस्त हो जाने से संघ के समस्त साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के मुख रूपी कमल म्लान हो गए। गुरु वियोग के अपार दुःख से किसका हृदय आकुलित नहीं होता? गुरुदेव के पार्थिव शरीर के संस्कार के बाद विविध भक्तियों का पाठ किया गया।

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी के दिन आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी के समक्ष श्री शिवसागरजी महाराज को 'आचार्य' पद प्रदान किया गया।

चातुर्मास की समाप्ति के बाद संघ ने कुछ दिन जयपुर शहर में रह कर गिरनार सिद्धक्षेत्र की यात्रा हेतु सौराष्ट्र की ओर प्रस्थान किया। आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी अपने संघ सहित पद्मपुरी अतिशय क्षेत्र पहुँचे।

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी भी कुछ कारणवश कुछ दिनों तक जयपुर में रही फिर भांकरोटा, बगरू होते हुए मौजमाबाद पहुँची। यहां एक प्राचीन विशाल मन्दिर है जिसमें सहस्रों प्राचीन जिनबिम्ब हैं। तलघर में भगवान आदिनाथ, भगवान अजितनाथ एवं भगवान सम्भवनाथ के विशाल प्राचीन भव्य बिम्ब हैं जिनके दर्शन से नेत्र तृप्त होते हैं तथा गर्मी के दिनों में भी उनके समीप बैठने पर उष्णता का आभास नहीं होता।

मौजमाबाद से विहार कर माताजी भाग, दूदू और नरैना पहुँची। नरैना में जमीन से निकली हुई कई प्राचीन मूर्तियां हैं; कितनी ही मूर्तियाँ खण्डित अवस्था में भी हैं। यहां से फुलेरा, साँभर, गुढ़ा, नांवा, मारोठ, मीठड़ी, पदमपुरा, कुचामन शहर होते हुए चातुर्मास–वर्षायोग के लिए नागौर पहुँची। विक्रम संवत् २०१५ का यह वर्षायोग आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज ने भी संघ सहित यहीं स्थापित किया।

❖

७

नागौर से मांगीतुंगी

सोलहवां वर्षायोग :

राजस्थान प्रान्तान्तर्गत जोधपुर जिले में नागौर एक प्राचीन नगर है। इसके चारों तरफ परकोटा और खाई है। पुरातन काल में यह नगर राजाओं की राजधानी रहा है। यहां स्वच्छ जल से परिपूरित अनेक विशाल तालाब हैं और कई जिनमन्दिर हैं।

भगवान आदिनाथ जिनमन्दिर में श्री केसरीमल जी बड़जात्या द्वारा निर्मित एक विशाल मानस्तम्भ है। श्री मन्दिरजी पर तीन शिखर हैं। शिखर में श्री पार्श्वनाथ भगवान का विशाल मनोज्ञ बिम्ब है। नीचे भगवान आदिनाथ का बिम्ब तथा अनेक वेदियां हैं। नीचे ही हॉल में वृद्ध स्त्री-पुरुषों द्वारा सुविधापूर्वक पूजा-पाठादि क्रियाएँ सम्पन्न हो सकें एतदर्थ श्री ज्ञानीराम, मांगीलाल, सिकरीलाल बड़जात्या ने वेदी बनवा कर श्री शान्तिनाथ भगवान का बिम्ब विराजमान किया है।

शहर के बाहर दो नसियाँजी अति प्रसिद्ध हैं। ये धर्मशाला, उपवन कूपादि से सुशोभित हैं। तेरह पंथी तथा बीस पंथी नसियाँ के नाम से जानी जाती हैं।

बीस पंथी प्राचीन दो जिनमन्दिर अति विख्यात हैं। इनमें अति प्राचीन, विशाल-विशाल जिनबिम्ब हैं जो यक्ष-यक्षिणी सहित हैं। अकृत्रिम जिनमन्दिरों की भाँति अनेक यक्ष-यक्षिणियों की शास्त्रोक्त विधि से निर्मित कई मूर्तियां हैं। बीस पंथी बड़े जिनमन्दिर में प्राचीन काल से, भट्टारकों द्वारा स्थापित, एक शास्त्रभण्डार है जिसमें प्राचीनकाल के हस्तलिखित एवं स्वर्णांकित शास्त्र भरे

पड़े हैं। प्राचीन आचार्यों ने कितने परिश्रमपूर्वक उनकी रचना कर उन्हें लिपिबद्ध किया होगा। आज के नर-नारी उनकी कीमत नहीं जानते—"भीलनी क्या जाने मोतियों का मूल्य" कहावत के अनुसार उस भण्डार में अनेक ग्रन्थ जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं; जो शेष हैं उनका भी—यदि यही स्थिति रही तो—नाम मात्र शेष रह जाएगा।

वस्तु परिवर्तनशील है, उसको अक्षुण्ण बनाए रखने का एक ही उपाय है। यदि वे शास्त्र किसी प्रकाशन-योजना का अंग बन सकें या फिर उनकी फोटो कापी या नकल रखने की कोई योजना बने तो वे सुरक्षित रह पायेंगे अन्यथा उनका नष्ट होना तो स्वाभाविक है।

जैन समाज में धन की कमी नहीं है; लाखों रुपए अनावश्यक कार्यों में खर्च होते हैं। अनेक विद्वान् मौजद हैं। परन्तु हमारी मूढ़ता एवं आलस्य ने समाज को धर्मविमुख बना दिया है। हम यह नहीं सोचते कि शास्त्रों की पुनरावृत्ति के अभाव में प्राचीनता कितने दिन तक स्थिर रह सकती है। मन्त्र-तन्त्र सम्बन्धी कितने बहुमूल्य शास्त्र तो नष्ट हो गए। जो कुछ हैं वे भी कुछ काल बाद टिकने वाले नहीं हैं। प्रत्येक मनुष्य उनका गूढ़ार्थ समझ भी नहीं सकता है—मन्त्र-तन्त्र एवं संस्कृत का विशिष्ट ज्ञाता हो, वही उनके सार को समझ सकता है।

नागौर के इस अति प्रसिद्ध शास्त्र भण्डार में प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग—सभी अनुयोगों के ग्रन्थ हैं। अनेक ग्रन्थ सचित्र हैं। इस भण्डार में ऋषिमण्डल यंत्र, कलिकुण्ड यंत्र, मातृक यंत्र, वृहद् सिद्ध यंत्र, गणधर वलय यंत्र, शान्ति यंत्र, पञ्च परमेष्ठी यंत्र, पार्श्वनाथ यंत्र, सरस्वती यंत्र, ज्वालामालिनी यंत्र, चिन्तामणि यंत्र आदि अनेक यंत्र हैं।

१५

८	१	६
३	५	७
४	९	२

२०

२	९	२	७
६	३	६	५
८	३	८	१
४	५	४	७

३४

९	१६	२	७
६	३	१३	१२
१५	१०	८	१
४	५	११	१४

भण्डार में एक महान् विजयपताका यंत्र है। जिस प्रकार णमोकार मंत्र में समस्त द्वादशांग गर्भित है उसी प्रकार इस यंत्र में समस्त अंक सम्बन्धित यंत्र गर्भित हैं। इसे साधारण व्यक्ति

नहीं समझ पाता है। जिस प्रकार 'भूवलय' ग्रन्थ से अनेक प्रकार के श्लोक बनते हैं उसी प्रकार उस विजयपताका यंत्र से भी अनेक श्लोक बनते हैं। यह अद्‌भुत ज्ञान महान् तपस्वी, योगिराज, नाना भाषाओं के ज्ञाता आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज को था।

वि० सम्वत् २०१५ के इस चातुर्मास में साधुशिरोमणि, अद्वितीय, परम तपस्वी, उत्कृष्ट विद्वान् पूज्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज यहीं विद्यमान थे। आचार्यश्री असाधारण महापुरुष थे—आपके समक्ष सुमेरु पर्वत की दृढ़ता, समुद्र की गम्भीरता, वसुधा की क्षमाशीलता, व्योमकी विशालता, वायु की निर्लेपता, तरणि की तेजस्विता, शशिकर की शीतलता, नवनीत की कोमलता और शक्र की सुशासनता भी श्रद्धावनत रहती थी। आप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती, राजस्थानी आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे।

आप भव्य जीवों को भवरोग समाप्त करने के लिए औषधि बताते थे—मन भर दान, दम भर ब्रह्मचर्यव्रत, दिल भर दया को श्रद्धा की शिला पर, चरित्र के लोटे से ज्ञान का पानी मिला कर पी लेना। पथ्य : राग की मिर्च, द्वेष की खटाई, इच्छा का तेल, विषय-भोग का गुड़ नहीं खाना; जिससे तुम्हारे समस्त रोग नष्ट हो जायेंगे।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी त्रिफला का सेवन करो; इससे मानसिक विभाव परिणति रूप विकार नष्ट हो जायेंगे। ज्ञान ज्योति वृद्धिगत होगी।

अहिंसा का वंशलोचन, सत्य की मिश्री, अचौर्य की पीपल, ब्रह्मचर्य की इलायची, परिग्रह त्याग की दालचीनी इन सबको मिला कर सीतोपलादि चूर्ण बना कर पाँच समिति की चासनी, गुप्ति की मुक्ता पिष्टी मिला कर चाटने से संसार क्षय रोग नष्ट हो जाता है। वे हमेशा कहते थे—

वैद्य हमारे सिद्धजी, औषध जिनवर नाम।
भाव-भक्ति से लीजिए, महारोग नस जाए॥

आचार्यश्री भवरोग नाशक औषधि भी बताते थे और शारीरिक रोग नाशक औषधि के भी श्रेष्ठ ज्ञाता थे। 'कल्याणकारक ग्रन्थ' तो उनको कण्ठस्थ था। अनेक वनस्पतियों के गुणधर्म के वे परीक्षक थे। मार्ग में विहार करते-करते बताते जाते थे कि इस वनस्पति में यह गुण है।

आचार्यश्री परम तपस्वी थे; आगम के अनुसार चलने वाले थे; तीर्थक्षेत्रों के उत्कृष्ट भक्त थे। जरा सी भी चरित्रहीनता उनको पसन्द नहीं थी। यद्यपि असंयमी मनुष्य उनके व्यवहार से कभी रुष्ट हो जाते थे परन्तु उनकी उनको परवाह नहीं थी। आपके वचन अनुकरणीय थे। तत्त्व को समझाने की आपकी शैली इतनी सरल होती थी कि छोटे से छोटा बच्चा भी समझ सकता था।

आपके मन्त्र के प्रभाव से अजमेर में नसियाँजी के कुए का खारा पानी मीठा हो गया। वंधा क्षेत्र के सूखे कुओं में पानी भर गया। जयपुर में एक अत्यन्त रुग्ण मनुष्य का रोग भी मन्त्र से दूर हो गया।

आपके प्रभाव की डेह (नागौर) में भी अनेक घटनाएं घटित हुईं। क्षेत्रपाल के चमत्कार हुए। आपकी महिमा अकथनीय है। आचार्यश्री ने भण्डार में संगृहीत कई मंत्रों व यंत्रों का अर्थ वताया था; भण्डार से वहुत से शास्त्र लेकर उन्होंने उतरवाये भी थे। शायद उनके संघ में उनके हस्तलिखित अनेक मंत्र-तंत्र होंगे। इस समय उन ग्रन्थों की रक्षा की आवश्यकता है। अस्तु!

नागौर चतुर्मास की निरापद समाप्ति के बाद संघ वि० सं० २०१५ मिति मंगसिर सुदी १४ को डेह ग्राम में पहुँचा। आचार्यश्री—अद्भुत विद्वान्, आगम के अटूट श्रद्धानी—शंकाओं का समाधान आगम एवं युक्तियों से इतनी सरलता से करते थे कि श्रोता मंत्र-मुग्ध हो एकाग्रचित्त से श्रवण लीन होता था। आपके उपदेशामृत से अनेक जैनाजैन बन्धुओं ने स्वशक्त्यनुसार व्रत ग्रहण किए; नियम लिये और इस प्रकार आत्मकल्याण के पथ में प्रवृत्त हुए। आचार्यश्री जहां पर तीर्थ-क्षेत्र, प्राचीन मन्दिर या प्राचीन मूर्तियाँ होती थीं वहाँ पर घण्टों ध्यानस्थ हो जाते थे। वही वात स्थानीय प्राचीन मन्दिर में भी घटित हुई।

१७ वाँ वर्षायोग :

सम्पूर्ण संघ लगभग दो मास तक यहाँ रहा। अच्छी धर्मप्रभावना हुई। यहाँ से आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी ने और धर्मसागरजी ने मेड़ता रोड की ओर विहार किया। आर्यिकाश्री इन्दुमतीजी आदि वहाँ से लालगढ़-मैनसर गये। वहां कुछ दिन रह कर धर्म-प्रचार करते हुए प्राचीन नगर लाडनूँ पहुँचे। यहां भूतल से निकला हुआ प्राचीन मन्दिर है। विक्रम सम्वत् १०११ की माथुर संघ की प्रतिष्ठित प्रतिमा है। तोरण सहित एक अन्य विशाल प्रतिमा है। तोरण पर अनेक यक्ष-यक्षिणियों सहित जिन बिम्ब हैं।

सुखदेव आश्रम में संगमरमर से निर्मित जिनालय है जो अतिशय मनोज्ञ और दर्शनीय है। यहाँ भरत और वाहुबलि की विशाल खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। भगवान आदिनाथ का सप्त धातु का विम्व है। बाहर मानस्तम्भ है एवं बाहुबलि की खड्गासन प्रतिमा है। वगीचे व फव्वारे आदि से मन्दिर का प्रांगण अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता है।

बड़े मन्दिरजी के समीप ही श्री लालचन्द दीपचन्द वगड़ा द्वारा निर्मापित एक नवीन जिनालय है। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी ने वि० सं० २०१६ का वर्षायोग संघसहित यहीं लाडनूं में सम्पन्न किया था।

चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद वहां के निवासी श्री मांगीलालजी अग्रवाल की भावना श्री चन्द्रसागर स्मारक नाम से नव निर्मित जिनालय के पञ्च कल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव की हुई। उस समय अजमेर से परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज का विशाल संघ नागौर डेह होता हुआ यहां पहुँचा। श्री महावीर स्वामी के विशाल, मनोज्ञ पद्मासन बिम्ब की प्रतिष्ठा, जिनालय की प्रतिष्ठा, तथा परम पूज्य (स्वर्गीय) १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी, वीरसागरजी एवं चन्द्रसागरजी के बिम्बों की प्रतिष्ठा हुई। वि० सं० २०१६ मिति माघ शुक्ला चतुर्दशी के दिन जिनालय में बिम्ब-स्थापना आदि अनेक धार्मिक अनुष्ठानों से एवं त्यागी-व्रतियों के उपदेशामृत से महती धर्म प्रभावना हुई। वहीं पर आर्यिका १०५ श्री सुमतिमती माताजी का णमोकार मंत्र जपते हुए स्वर्गवास हुआ। संघस्थ ब्रह्मचारी दीपचन्द जी बड़जात्या नागौर वालों का स्वर्गवास भी वहीं पर हुआ था। वहां से विहार कर संघ सुजानगढ़ आया। यहां एक भव्य जिनालय, एक नसियांजी एवं तीन चैत्यालय हैं।

अठारहवां वर्षायोग :

आ० विद्यामती दीक्षा समारोह
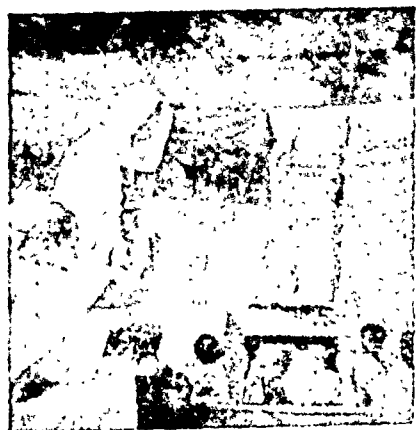
विक्रम संवत् २०१७ का वर्षायोग यहीं संपन्न हुआ। वर्षायोग में कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी के दिन लालगढ़ निवासी श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल की सुपुत्री शान्तिबाई ने जिनका विवाह डेह निवासी केसरीमलजी सेठी के सुपुत्र मूलचन्द के साथ हुआ था—२५ वर्ष की वय में वैराग्य को प्राप्त होकर, आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी की प्रेरणा से विशाल संघ एवं जनसमुदाय के समक्ष 'आर्यिका' के व्रत ग्रहण किए, नाम विद्यामतीजी रखा गया।

श्री ऋषभसागरजी, भव्यसागरजी क्षुल्लकों ने मुनि पद एवं क्षुल्लिका नेमामतीजी ने आर्यिका पद ग्रहण किया। वर्षायोग की व्यवस्था करने वाले ज्ञानीराम हरकचन्द्र सरावगी (पाण्ड्या) थे। चातुर्मास के बाद आचार्यश्री ने संघ सहित सीकर की ओर प्रस्थान किया।

उन्नीसवाँ वर्षायोग :

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी लादड़िया आदि गांवों में विहार करती हुई कुचामन शहर पहुँचीं। वहां श्रीमन्त श्रावकों के अनेक घर हैं तथा विशाल-विशाल प्राचीन जिनमन्दिर हैं। कुचामन में रथयात्रा निकाली गई जिससे विशेष धर्मप्रभावना हुई। कुचामन निवासी श्री कुन्दनमलजी काला की सुपुत्री हरको बाई ने पाँचवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। तभी से आप संघ के साथ

में हैं। वहां से विहार कर जिल्या, पाचवां, कुकनवाली, इन्दोखा, प्रेमपुरा, चिलखा, अड़गसर, लालारा, टोड़ारा, मुण्डवाड़ा, दूजोद होते हुए सीकर पहुँची। वहां आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज के संघ के साथ विक्रम संवत् २०१८ का वर्षायोग किया। संघ में ६ मुनिराज, १० आर्यिकाएँ एक क्षुल्लक, चार क्षुल्लिकाएँ व अनेक ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियां थे। यहाँ भव्य दीक्षा समारोह आयोजित हुआ।

आ० विद्यामतीजी का दीक्षा समारोह

संघस्थ बाल ब्रह्मचारी श्री राजमलजी ने यहां मुनि-दीक्षा स्वीकार की थी। क्षुल्लक पद से मुनिपद की दीक्षाएं तो बहुत देखी थीं परन्तु श्रावक से मुनिपद स्वीकार करते हुए देखने का यह प्रथम अवसर था। हजारों दर्शनार्थियों के समक्ष दीक्षा-समारोह सम्पन्न हुआ। आपका नाम श्री अजितसागरजी रखा गया। आप प्राकृत संस्कृत भाषा के प्रौढ़ विद्वान हैं। साहित्य की गवेषणा करना, उसका प्रकाशन-संरक्षण करना आपका मुख्य ध्येय है। आप शान्त-स्वभावी हैं और अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं।

आ० विद्यामतीजी की दीक्षा

पूज्य अजितसागरजी महाराज मेरे गृहस्थावस्था के विद्यागुरु हैं। मुझे जो कुछ संस्कृत प्राकृत एवं धर्मग्रन्थों का ज्ञान है वह आपकी ही देन है। संस्कृत की पहली पुस्तक से लेकर व्याकरण तक आपने ही पढ़ाया है। धर्म, दर्शन, न्याय और काव्य का ज्ञान भी मुझे आपने ही कराया। आप न्याय, व्याकरण आदि के श्रेष्ठ विद्वान हैं। मैं तो यही कहूंगी कि वर्तमान साधुओं में आपके समान संस्कृत भाषा व व्याकरण के ज्ञाता दूसरे नहीं है—इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

दीक्षा समारोह में श्री जिनमती, राजमती, सम्भवमती, बुद्धिमती क्षुल्लिकाओं ने एवं श्राविका अंगूरीबाई ने आर्यिका के व्रत ग्रहण किये। इस अवसर पर नागौर, डेह, लाडनूं, सुजानगढ़, तथा आस-पास के नर-नारी हजारों की संख्या में सम्मिलित हुए।

सिद्धचक्र मण्डल विधान आदि अनेक धार्मिक अनुष्ठान भी इस वर्षायोग में सम्पन्न हुए। सीकर में मुनिसंघ के चातुर्मास का यह प्रथम अवसर था अतः श्रावक-श्राविकाओं व बच्चों में विशेष उत्साह था।

लाडनूं में नशियांजी में केसरीचन्द्र निहालचन्द्र सरावगी अग्रवाल की ओर से पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव होने वाला था। संघ से वहां पहुँचने का विशेष आग्रह किया गया था अतः संघ ने लाडनूं की ओर विहार किया। आर्यिका इन्दुमती माताजी थोद के श्रावकों के आग्रह से कारली होते हुए थोद पहुँची। वहां कुछ दिन ठहर कर नागवा हरसोल के मन्दिर के दर्शन कर वहां के श्रावकों को उपदेशामृत से सन्तुष्ट करती हुई रेवासा पहुँची। वहां विशाल मन्दिर है उसके स्तम्भों को गिनते समय गिनती में कभी एक कम और कभी एक ज्यादा गिना जाता है। विशाल जिनविम्ब हैं। परन्तु श्रावकों के घर नगण्य हैं। यहां के निवासी व्यापार हेतु अन्य प्रान्तों में चले गए हैं। वड़े-वड़े भवन खाली पड़े हैं, रहने वाले वहुत कम हैं। वहां से संघ राणोली, कोछोर, जिजोट, कुकनवाली, जिल्या, लादरिया होते हुए लाडनूं पहुँचा।

वीसवाँ वर्षायोग :

लाडनूं नगर में यह सत्ताइसवीं प्रतिष्ठा थी। आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज ससंघ पधारे थे। आचार्यश्री की प्रेरणा से निहालचन्द पुष्पराजजी ने मानस्तम्भ का निर्माण करवाया। प्रतिष्ठाचार्य ब्र० सूरजमलजी थे। इस अवसर पर अखिल भारतीय दिगम्वर जैन महासभा का ६७ वां अधिवेशन सम्पन्न हुआ। श्री शान्तिवीर समिति एवं श्री दिगम्वर जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा के एकीकरण का भी कार्य हुआ। समाज के अनेक श्रीमन्त तथा विद्वान—पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर, सिवनी; पं० मक्खनलालजी शास्त्री, मोरेना; पं० तनसुखलालजी काला, वम्वई; पं० तेजपालजी काला, नाँदगाँव, पं० इन्द्रलालजी शास्त्री, जयपुर—भी पधारे थे। विद्वानों के समागम से तत्त्वचर्चा का खूव सुयोग मिला था। विक्रम संवत् २०१९ का वर्षायोग लाडनूं में ही सम्पन्न हुआ। वर्षायोग की समाप्ति के वाद आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज ने संघ सहित कुचामन की ओर विहार किया। उसके वाद से हम आचार्यश्री के दर्शनों का लाभ नहीं ले सके।

इक्कीसवाँ वर्षायोग :

सुजानगढ़, फतेहपुर, दांता रामगढ़, चुरु, लक्ष्मणगढ़, सीकर, दूजोद, मुंडगांव आदि स्थानों के जिनालयों की वन्दना करते हुए आर्यिका इन्दुमतीजी संघ सहित (आ० सुपार्श्वमतीजी, आ० विद्यामतीजी एवं ब्र० देवकीबाई ब्रह्मचारिणियां) लालास पहुँची। वहाँ समाज ने वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया। विधिविधान व प्रतिष्ठा का सम्पूर्ण कार्य ब्र० सूरजमलजी ने सम्पन्न किया। वहां से विहार कर जिजोट, भैंसलाना, कांकर, डाँसरोली, श्यामगढ़, मीण्डा, मण्डावर, जोबनेर, किशनगढ़-रेनवाल, ड्योढ़ी-कोढ़ी, रोजड़ी, फुलेरा, नरेना, साखूण, बांदरसींदरी, मदनगंज-किशनगढ़, ऊंटड़ा आदि के ख्यात मन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ अजमेर पहुँचा। विक्रम संवत् २०२० का वर्षायोग अजमेर में हुआ। यहाँ विशेष अनुष्ठान विधान एवं महोत्सव होने से धर्म की

२०२० में अजमेर चतुर्मास के समय स संघ

प्रभूत प्रभावना हुई। जैनाजैन जनता ने अनेक प्रकार के व्रत नियम अपनी शक्त्यनुसार ग्रहण किए। यहां पर प्रसिद्ध सोनी परिवार की ओर से निर्मित मानस्तम्भ एवं सुवर्णमयी अयोध्यानगरी की रचना दर्शनीय है। अठारह जिन-मन्दिरों तथा पांच नसियांजी से युक्त अजमेर, धर्मात्माओं के लिए धर्म-साधन का एक सुन्दर स्थान है। यहां 'बाबाजी की नसियां' प्रसिद्ध चमत्कारी है। पहले यहां के कुए का पानी खारा था परन्तु जबसे आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज के आदेशानुसार देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान के पंचामृताभिषेक एवं शान्तिधारा का गन्धोदक कुए में डलवाया तबसे उसका पानी मीठा हो गया।

कुछ कारणवश दस माह तक यहां रहने के बाद ससंघ आर्यिका इन्दुमतीजी वीर, ढ़ाल के दर्शन कर मोरादड़ी गईं। यह अतिशयक्षेत्र है। यहां भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन बहुत ही प्राचीन एवं मनोज्ञ मूर्ति है, उसके दर्शन से जो आनन्द हुआ था वह अपूर्व था। साधुसंगति महान् लाभकारी है। गाँव-गाँव के अतिशययुक्त जिनमन्दिरों के दर्शन का अपूर्व अवसर मिलता है। वहां से सणोद, डेराठूँ पहुँचे। डेराठूँ में भी तालाब से निकली हुई चमत्कारी मूर्ति है। वहां से नसीराबाद, तिवरी, दादिया, लाम्बा, झिरौता, मयली, शेरगढ़, खेरा के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ सरवाड़ पहुँचा। सरवाड़ में पन्द्रह सौ वर्ष पुराना श्री आदिनाथ भगवान का बिम्ब है; क्षेत्रपाल का स्थान है। भगवान के सामने दरवाजे के बाहर दीवाल पर, नमस्कार करते हुए बादशाह की मूर्ति है जिस पर मधुमक्खियां गिर रही हैं। वहां का इतिहास है कि मूर्ति को खण्डित करने के लिए बादशाह यहां आए थे। ज्योंही वे मूर्ति को खण्डित करने लगे त्योंही मधुमक्खियों के झुण्ड के झुण्ड निकल कर बादशाह और उसकी सेना पर आक्रमण कर बैठे। जब बादशाह ने भगवान से प्रार्थना की तो उपद्रव शान्त हो गया। बादशाह ने प्रसन्न होकर भूरि-भूरि प्रशंसा की और स्मृति में भगवान के सामने नमस्कार करते हुए अपनी प्रतिकृति पत्थर में खुदवा कर लगवा दी तथा जिनमन्दिर की सुरक्षा हेतु बहुत सा द्रव्य भी दिया। ऐसे ऐतिहासिक स्थान पर केशलोंचादि अनेक धार्मिक कार्य हुए।

बाईसवां वर्षायोग :

यहां से संघ बड़गांव, चांदसी, नांदसी, कढ़ाया, गुड़ा के जिनमन्दिरों के दर्शन करता हुआ एवं तत्रस्थित भव्यों को धर्मोपदेश देता हुआ चांपानेरी पहुँचा। यहां काले पाषाण की एक विशाल मनोज्ञ खड्गासन प्रतिमा है। यहां के श्रावकों के आग्रह पर विक्रम संवत् २०२१ का वर्षायोग यहीं चांपानेरी में सम्पन्न किया। सिद्धचक्र मण्डल विधान आदि अनेक प्रभावना-कार्य हुए। सन्तोषबाई ने सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए।

वर्षायोग के बाद देवली, विजयनगर, गुलाबपुरा, कोठ्यां आदि स्थानों पर पहुँचे। कोठ्यां में श्री कैलाशचन्द ने १६ वर्ष की अल्पायु में आपके उपदेश से प्रेरणा पाकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करके संघ का सान्निध्य प्राप्त किया। ब्र० कैलाशचन्द संघ के साथ रहने लगा। यहाँ से राधास, इटड के जिनमन्दिरों के दर्शन करता हुआ आर्यिका-संघ शाहपुरा पहुँचा। यहां एक प्राचीन मन्दिर के तलघर में भी जिनबिम्ब है। चातुर्मास में तलघर में अपने आप पानी भर जाता है। चमत्कारी मूर्ति है। श्वेताम्बर समाज विशेष होने से यहां श्वेताम्बर साधुओं का आगमन विशेष होता है। दिगम्बर साधुओं के आगमन का यहाँ यह प्रथम अवसर था। ब्राह्मणों के घर भी अधिक हैं। यहां संस्कृत के उदार विद्वानों का समागम मिला। वे भी संघ के दर्शनार्थ आते थे एवं चर्चा-उपदेश का लाभ पा, नतमस्तक होकर लौटते थे।

यहां से बिशनोई, सपाड़ी, अमरसर होते हुए संघ पारोली पहुँचा। पारोली गांव से २ मील दूर नदी किनारे छोटा सा पहाड़ है जिस पर सप्तफणि पार्श्वनाथ भगवान की पद्मासन मूर्ति अति प्राचीन है। यह स्थान चँवलेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। चमत्कारी मूर्ति है। पौष शुक्ला नवमी के दिन वार्षिक मेला लगता है। श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों आम्नाय के श्रावक इस मूर्ति की पूजा करते हैं। कहते हैं कि भगवान पार्श्वनाथ का समवशरण यहां आया था। यहां एक दो दिन ठहरने की भावना थी परन्तु पहाड़ पर पानी का अभाव था अतः दो घण्टे वहां रुक कर कोठरी, दरिणया की कोण्डी होते हुए संघ भीलवाड़ा पहुँचा।

भीलवाड़ा में प्राचीन विशाल तीन जिनमन्दिर हैं। भूपालगंज में एक नवीन मन्दिर है। इनके दर्शन करता हुआ संघ हमीरगढ़ होते हुए चित्तौड़ पहुँचा। यहां का ऐतिहासिक दुर्ग अति प्रसिद्ध है। यहां अनेक रानियों ने अपने शीलधर्म की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की आहुति अग्नि में दी थी। पर्वत पर स्थित किले में एक मन्दिर है, नीचे एक मन्दिर है। पर्वत पर एक मानस्तम्भ दिगम्बर आम्नाय का है। उस मानस्तम्भ में कीर्तिस्तम्भ की भांति भीतर से ऊपर जाने का मार्ग है। भीतर अनेक चित्र खुदे हुए हैं। ऊपर मानस्तम्भ में बाहर की ओर चारों दिशाओं को मुख करती चार बड़ी मूर्तियां हैं। ऐसा मानस्तम्भ भारतवर्ष में कहीं देखने में नहीं आया। श्वेताम्बर

ग्राम्नाय के २७ मन्दिर हैं। सुकुमाल मुनि की एक उपसर्ग रहित मूर्ति एवं शिलालेख है। कहते हैं, यहां का कीर्तिस्तम्भ भी जैनियों का था। अनेक रमणीय स्थान हैं। ऊपर एक कुण्ड है जिसमें निरन्तर नाले का जल प्रवाहित रहता है। पर्वत की शोभा अद्भुत है। चित्तौड़ से निम्बाहेड़ा के दर्शन कर संघ जावद पहुँचा। यहां एक विशाल मन्दिर है जिसमें ५०० वर्ष पुराना विशाल जिन-विम्ब है। उस बिम्ब के दर्शन से मन भावविभोर हो जाता है। कुछ दिन यहां ठहर कर संघ नीमच, मल्हारगढ़, होते हुए मन्दसौर पहुँचा। यहाँ तीन चार प्राचीन मन्दिर हैं, अतिशयकारी मूर्तियां हैं। यहां से पीपरगांव, खाचरोद आदि के मन्दिरों के दर्शन करता हुआ संघ बड़नगर पहुँचा।

बड़नगर में तीन जिनालय हैं। शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा चमत्कारी है। कुछ दिन पूर्व श्री जयसागरजी महाराज का वात रोग के कारण पैरों से हिलना-चलना बन्द हो गया था। आठ उपवास हो गए क्योंकि खड़े हुए बिना साधु आहार नहीं ले सकते। औषधि-उपचार किया गया परन्तु रोग दूर नहीं हुआ। नवें दिन जब संघ के साधु आहार करने के लिए चले गए तो श्री जयसागर महाराज ने श्रावकों से कहा कि मुझे भगवान के सामने बिठा दो। श्रावकों ने उन्हें उठा कर भगवान के समक्ष वैठा दिया। श्री शान्तिनाथ भगवान की खड्गासन मूर्ति अति मनोज्ञ है।

महाराजश्री भगवान के पैर पकड़ कर बैठ गए और विनती करने लगे कि भगवन्! आप ही अशरण-शरण हैं। या तो मेरे पैर अच्छे हो जाएं अन्यथा आज से मुझे अन्न-पानी का त्याग है। पांच मिनट में ही उनके पैर पूर्ववत् अच्छे हो गए। वे शुद्धि करके आहार हेतु चले गए। वीतराग भगवान के नाम स्मरण में बड़ी शक्ति है।

संग्राम-सागर-करीन्द्र-भुजङ्ग-सिंहा-
धिव्याधि-वह्नि-रिपु बन्धनसम्भवानि।
चोर-ग्रह-भ्रम-निशाचर-शाकिनीनां-
नश्यन्ति पञ्चपरमेष्ठीपदे भयानि॥

पञ्च परमेष्ठी के नाम-स्मरण से अनेक रोग-शोक-भय समाप्त हो जाते हैं। बड़नगर से धार, मनावर, लुहारिया होते हुए संघ बड़वानी पहुँचा। बड़वानी से इन्द्रजीत, मेघनाथ, कुम्भकरण आदि मुनियों ने कर्म-कालिमा समाप्त कर मुक्ति पद प्राप्त किया है।

बड़वानी सिद्धक्षेत्र में उन्नत गगनचुम्बी शिखरों से शोभित १७ जिनमन्दिर हैं। चूल-गिरि पर्वत के निचले भाग में रमणीय बावनगजाजी (८५ फीट ऊंची) नाम से ख्यात आदिनाथ भगवान का विशाल विम्ब है। जिसके दर्शन मात्र से भव्यों का अहंकार भाव नष्ट हो जाता है—

अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र ! तव दर्शनात्॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते ।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ।।
अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देव त्वदीय चरणाम्बुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे,
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ।।

हे देव ! आपके चरण-कमलों के दर्शन से दोनों नयन सफल हो गए इसलिए हे तीन लोक के तिलक ! आज यह संसार रूपी समुद्र मुझे एक चुल्लू प्रमाण प्रतीत होता है ।

जिनविम्ब के दर्शन की महिमा अगम्य है, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का कारण है। उस विशाल जिनविम्ब के सन्मुख एक मन्दिर है जिसमें नौ गज ऊंची एक प्रतिमा है। ऊपरी भाग में अर्थात् जहां पर खड़े होकर विशाल विम्ब का महामस्तकाभिषेक किया जाता है, वहां पर इन्द्रजीत, कुम्भकरण एवं मेघनाथ के पावन चरण चिन्ह हैं। चूलगिरि के मस्तक पर ४ जिनमन्दिर हैं। उनमें से एक मन्दिर विशाल है, उसकी शोभा वचनातीत है। वहां अत्यन्त रमणीक सुन्दर वाटिकाएँ वनी हैं। अपनी दीक्षा के वाद पैदल विहार करके मैंने सर्वप्रथम इस सिद्धक्षेत्र के दर्शन किए थे अतः हृदय में एक अपूर्व आनन्द की लहर उमड़ रही थी।

सिद्धक्षेत्र के दर्शन-वन्दन के साथ एक अपूर्व दर्शन और हुए परम पूज्य १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के समाधिस्थल के। इससे दो वर्ष पूर्व जव पू० इन्दुमती माताजी फतेहपुर में थीं मुझे एक दिन स्वप्न में प्रतिभास हुआ कि "तुम गुरुदेव के समाधिस्थल के दर्शन करने क्यों नहीं जातीं ?" मैंने कहा—कहाँ ? "वड़वानी। चन्द्रसागरजी महाराज के।" फिर आँखें खुल गईं। प्रातः काल माताजी को अपने स्वप्न के वारे में वताया।

माताजी ने कहा—वड़वानी समीप है। उसी दिन से हृदय में गुरुवर्य के समाधिस्थल के दर्शनों की इच्छा प्रवल होती गई। वीच-वीच में शारीरिक विघ्न-वाधाएँ आती रही हैं परन्तु णमोकार मन्त्र के प्रभाव से कौन से कार्यों की सिद्धि नहीं होती ! मेरे जीवन में इस महामन्त्र के प्रभाव से अनेक दुःसाध्य से दुःसाध्य कार्य भी सिद्ध हुए हैं। अस्तु,

अव दो वर्ष वाद अपनी भावना साकार हुई, उससे जो अपूर्व आनन्द हुआ वह वचनों से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। मिश्री का स्वाद कहने में नहीं आता, खाने में आता है।

मैंने पूज्य गुरुदेव १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के दर्शन सात वर्ष की अवस्था में किए थे। वही दृश्य सम्मुख आ गया। यद्यपि गुरुदेव का विशेष परिचय मुझे नहीं था फिर भी गुरुवर्या माताजी के मुख से उनके तपश्चरण, उपदेश की महिमा सुनती थी तो हृदय गद्गद हो जाता था।

पू० चन्द्रसागर गुरुदेव इस कलिकाल में अद्वितीय साधु थे। आपका जीवन एक सतत गतिमान नौका के समान था जो इस विश्व रूपी अपार सागर में अपनी गति से बढ़ता रहा। लंगर खुले नहीं कि चल पड़ा और चला तो ऐसा कि अनेक उपसर्गों के तूफान आए, उन सबको अपनी छाती पर झेला। द्वेषियों के ज्वारभाटे उसके मार्ग को एक क्षण भी न रोक सके। संसार के संकट रूपी ओलों की वर्षा उनकी कील तक को विचलित नहीं कर पाई। अनेक लोगों ने किनारे पर खड़े होकर इस नौका को देखा। किसी ने प्रशंसा की तो कोई मुख बिचका कर रह गया। परन्तु गुरुदेव ने न कभी प्रशंसा की अपेक्षा की और न अपवाद की चिन्ता। आप तो प्रशंसा और निन्दा से इतना आगे बढ़ गए थे कि जहां ये सुनाई ही न दे सके। साधु-चर्या विलक्षण होती है, अलौकिक, असामान्य होती है। साधुगण देखते हुए भी न देखने वाले के समान होते हैं और सुनते हुए भी नहीं सुनने वाले के समान होते हैं।

ब्रुवन्नपि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतावस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।।

इस यान को कलिकाल की दुस्सह परीषह रूपी सावन-भादों की काली घटा भी मार्ग च्युत नहीं करा सकी। चन्द्रसागर रूपी यान आगे बढ़ता ही चला गया; जनता विस्मय-विस्फारित नेत्रों से श्रद्धा-खचित हृदय से देखती रह गयी।

संसार विषमस्थल है। यहां रहने वालों में से किसी को इसके प्रति स्पर्द्धा हुई, किसी को ईर्ष्या हुई, कोई मात्सर्य करने लगा तो कोई द्वेष किन्तु इस यान ने मुड़कर नहीं देखा; मुड़कर देखने का अवकाश ही कहां था। इस अदम्य साहसी प्रतिभाशाली वीर ने संसार के तूफानों से बच कर अन्तिम किनारा पार कर लिया। कितने ही भव्य जीव इस यान का आश्रय लेकर दुःख-समुद्र से पार हो गए।

गुरुदेव की महिमा अगम्य थी। किसी प्रकार का लोभ अथवा भय आपका सत्य-पथ से विचलित नहीं कर सका। धर्म और शास्त्र से अनभिज्ञ पुरुषों ने आपको भयभीत करने के लिए न जाने कितने उपद्रव किए परन्तु वे सब उपद्रव भी आपको हिला नहीं पाए। असीम धैर्य के सहारे आपने अपनी पावन चरण रज से अनेक स्थानों को पवित्र किया। आचार-विचार से विचलित होने वालों को हस्तावलम्बन दिया। मरुस्थल जैसे शुष्क प्रदेश को भी अपनी धर्मामृत वृष्टि से धर्मप्लावित किया।

आपकी शान्तमुद्रा के समक्ष विषधर भुजङ्ग निर्विषवत् हो ज चला
पोत वन जाता था। कितनी ही बार आपके सामने सिंह आया और

विशाल जिनबिम्ब खण्डित पड़े हुए हैं। खण्डित जिनप्रतिमाओं सहित जो जिनमन्दिर हैं वे सरकार की देख-रेख में हैं।

किंवदन्ती है कि एक समय यहाँ के एक राजा ने एक रात्रि में १०० मन्दिर बनवाने का संकल्प किया था। उसमें ९९ मन्दिर तो बन चुके थे—एक मन्दिर शेष रहा, इतने में किसी ग्रामीण स्त्री ने चक्की चलाना शुरु कर दिया। प्रातः काल हो जाने से एक मन्दिर ऊन (कम, शेष, बाकी) रह जाने से इस ग्राम का नाम ऊन विख्यात हो गया। यहां आज भी खण्डित जिनमन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं। एक खण्डित मन्दिर में सर्प की कुण्डली के आकार का एक यंत्र है, उस पर लिखी हुई लिपि स्पष्ट पढ़ने में नहीं आती है। वहां के जानकारों का कहना है कि इसको समझ लेने पर सम्पूर्ण ज्योतिष का ज्ञान हो जाता है। पुरा काल में ऐसे महान् मांत्रिक-तांत्रिक साधक होते थे; उनके गूढ़ रहस्य को जानना आज कष्ट साध्य है। ऐसे विशाल मन्दिर और यंत्र बनना भी आज दुर्लभ है। जैन समाज में आज घोर अन्धकार व्याप्त है। अपने तीर्थों एवं धर्मायतनों की रक्षा का विशेष लक्ष्य नहीं है।

ऊन से खरगौन, बड़वाह होते हुए संघ सनावद पहुँचा। वहां से सिद्धवरकूट। सिद्धवरकूट से दो चक्रवर्तियों और दस कामदेवों ने मुक्तिपद प्राप्त किया है। इसलिये यह सिद्धक्षेत्र है। इसके चारों तरफ रेवा नदी है। यहाँ पर विशाल एवं भव्य जिनमन्दिर है, विशाल-विशाल खड्गासन और पद्मासन १५०० वर्ष प्राचीन जिनबिम्ब हैं। कुछ दूरी पर एक टीले पर एक जगह यक्ष-यक्षिणी की एक खण्डित मूर्ति है जिसके मस्तक पर जिनबिम्ब है। मन्दिरजी का भी कुछ भाग खण्डित पड़ा है। इन स्थलों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय जैन धर्म व्यापक था।

तेईसवाँ वर्षायोग :

कुछ दिन यहां ठहर कर संघ सनावद लौटा। विक्रम संवत् २०२२ का वर्षायोग सनावद में सम्पन्न हुआ। सनावद में तीन विशाल जिनमन्दिर हैं। श्रावकों के लगभग १०० घर हैं। सभी श्रावक धर्मनिष्ठ हैं। सनावद में आर्यिका संघ द्वारा धर्म की विशेष प्रभावना हुई। सनावद से संघ खण्डवा आया। यहां पर विरोधी पक्ष से वाद-विवाद हुआ; धर्म की विशेष प्रभावना हुई। सनावद के श्रावकगण संघ को मुक्तागिरिजी ले गये। सनावद के नवयुवक मण्डल के विमलभाई, मोतीभाई, श्रीचन्द भाई आदि अनेक श्रावक-श्राविकाएँ संघ के साथ थे। कुल चालीस का संघ था। मुक्तागिरिजी पहुँचने के लिए सतपुड़ा पहाड़ को लांघना पड़ता है। पहाड़ी रास्ता अत्यन्त रमणीय तो है परन्तु विकट भी। दस दिनों की यात्रा के बाद मुक्तागिरि पहुँचे।

मुक्तागिरि का अपर नाम मेढ़गिरि है। यहां से साढ़े तीन करोड़ मुनियों ने अविनाशी अचल पद प्राप्त किया है। महापुरुषों की चरण रज से स्पर्शित होने से यह क्षेत्र अतिपावन

आपके नामस्मरण में अपूर्व शक्ति है—जो श्रद्धापूर्वक उच्चारण करता है; उसके कार्य स्वतः सिद्ध हो जाते हैं।

पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी आपके संघ में वहुत दिन रहीं। वे सुनाती हैं कि संघ अनेक वार, विहार करते समय रात्रि में, डाकुओं से व्याप्त स्थानों पर भी ठहर जाता था परन्तु कभी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं आई। गुरुओं की महिमा अगम्य है।

"गुरु की महिमा वरणी न जाय। गुरु नाम जपो मन-वचन-काय।"

गुरुवर चन्द्रसागरजी की महिमा का वर्णन कहां तक किया जाय! वे इस कलिकाल की अन्धकारमय अवस्था में स्थिति प्राप्त प्राणियों को रास्ता दिखाने के लिए सूर्य के तुल्य थे; साधुओं में अद्वितीय रत्न थे, उत्तम निर्भीक वक्ता थे। आपके समक्ष आकर शत्रु भो द्वेष-बुद्धि छोड़ देता था। सिंह के समान पराक्रमी आपको देख कर शत्रु दांतों तले अंगुली दवाने लगते थे।

दिल्ली में यह चर्चा चली कि नग्न दिगम्बर मुनि यहां विहार नहीं कर सकते—आप शान्तिसागरजी महाराज के संघ में थे। सन् १९३१ की वात है। आप निर्भय होकर शहर में जाने लगे—ज्योंही साहव (अंग्रेज अधिकारी) की कोठी के पास पहुँचे, साहब ने आकर आपके चरण-कमलों में भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और कहा—ऐसे साधुओं के मार्ग में रुकावट डालने वाला कौन है।

धन्य है उनकी महिमा, अगम्य है उनका धैर्य! उनके गुणों का कोई क्या वर्णन कर सकता है। उनके लिए हमारा शत-शत वन्दन! ऐसे महामना मुनिराज ने वड़वानी सिद्धक्षेत्र पर अपने भौतिक शरीर का त्याग कर स्वर्गश्री को प्राप्त किया। उनकी चरण रज से यह क्षेत्र और भी पवित्र हो गया। उनके समाधिस्थल के दर्शन कर हृदय गद्गद हो गया। यहां से थोड़ी दूर पर एक गुफा है, वहां अतिशययुक्त एक प्राचीन मनोरम प्रतिमा है। पानी के भीतर होकर जाना पड़ता है परन्तु अभी वहां पर कोई नहीं जा सकता।

१५ दिन यहाँ ठहर कर सिद्धक्षेत्र की वन्दना से आत्मा को पुनीत कर अंजय गाँव होती हुई माताजी अपने संघ सहित पावापुरी (ऊन) सिद्धक्षेत्र में पहुँचीं।

ऊन को देखने से उसकी प्राचीनता ज्ञात होती है। वर्तमान में ऊन में एक मन्दिर नीचे है और दो मन्दिर एक छोटी सी पहाड़ी-टेकड़ी पर हैं। एक मन्दिरजी में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ के खड्गासन विशाल विम्ब हैं। सुवर्णभद्रादि चार मुनियों की जमीन से निकली हुई पुरातन पादुकाएँ हैं। यहां से सुवर्णभद्रादि चार यतियों ने मुक्तिपद प्राप्त किया है। इस क्षेत्र में अनेक

विशाल जिनबिम्ब खण्डित पड़े हुए हैं। खण्डित जिनप्रतिमाओं सहित जो जिनमन्दिर हैं वे सरकार की देख-रेख में हैं।

किंवदन्ती है कि एक समय यहाँ के एक राजा ने एक रात्रि में १०० मन्दिर बनवाने का संकल्प किया था। उसमें ९९ मन्दिर तो बन चुके थे—एक मन्दिर शेष रहा, इतने में किसी ग्रामीण स्त्री ने चक्की चलाना शुरु कर दिया। प्रातः काल हो जाने से एक मन्दिर ऊन (कम, शेष, बाकी) रह जाने से इस ग्राम का नाम ऊन विख्यात हो गया। यहां आज भी खण्डित जिनमन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं। एक खण्डित मन्दिर में सर्प की कुण्डली के आकार का एक यंत्र है, उस पर लिखी हुई लिपि स्पष्ट पढ़ने में नहीं आती है। वहां के जानकारों का कहना है कि इसको समझ लेने पर सम्पूर्ण ज्योतिष का ज्ञान हो जाता है। पुरा काल में ऐसे महान् मांत्रिक-तांत्रिक साधक होते थे; उनके गूढ़ रहस्य को जानना आज कष्ट साध्य है। ऐसे विशाल मन्दिर और यंत्र बनना भी आज दुर्लभ है। जैन समाज में आज घोर अन्धकार व्याप्त है। अपने तीर्थों एवं धर्मायतनों की रक्षा का विशेष लक्ष्य नहीं है।

ऊन से खरगौन, बड़वाह होते हुए संघ सनावद पहुँचा। वहां से सिद्धवरकूट। सिद्धवरकूट से दो चक्रवर्तियों और दस कामदेवों ने मुक्तिपद प्राप्त किया है। इसलिये यह सिद्धक्षेत्र है। इसके चारों तरफ रेवा नदी है। यहाँ पर विशाल एवं भव्य जिनमन्दिर है, विशाल-विशाल खड्गासन और पद्मासन १५०० वर्ष प्राचीन जिनबिम्ब हैं। कुछ दूरी पर एक टीले पर एक जगह यक्ष-यक्षिणी की एक खण्डित मूर्ति है जिसके मस्तक पर जिनबिम्ब है। मन्दिरजी का भी कुछ भाग खण्डित पड़ा है। इन स्थलों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय जैन धर्म व्यापक था।

तेईसवाँ वर्षायोग :

कुछ दिन यहां ठहर कर संघ सनावद लौटा। विक्रम संवत् २०२२ का वर्षायोग सनावद में सम्पन्न हुआ। सनावद में तीन विशाल जिनमन्दिर हैं। श्रावकों के लगभग १०० घर हैं। सभी श्रावक धर्मनिष्ठ हैं। सनावद में आर्यिका संघ द्वारा धर्म की विशेष प्रभावना हुई। सनावद से संघ खण्डवा आया। यहां पर विरोधी पक्ष से वाद-विवाद हुआ; धर्म की विशेष प्रभावना हुई। सनावद के श्रावकगण संघ को मुक्तागिरिजी ले गये। सनावद के नवयुवक मण्डल के विमलभाई, मोतीभाई, श्रीचन्द भाई आदि अनेक श्रावक-श्राविकाएँ संघ के साथ थे। कुल चालीस का संघ था। मुक्तागिरिजी पहुँचने के लिए सतपुड़ा पहाड़ को लांघना पड़ता है। पहाड़ी रास्ता अत्यन्त रमणीय तो है परन्तु विकट भी। दस दिनों की यात्रा के बाद मुक्तागिरि पहुँचे।

मुक्तागिरि का अपर नाम मेढ़गिरि है। यहां से साढ़े तीन करोड़ मुनियों ने अविनाशी अचल पद प्राप्त किया है। महापुरुषों की चरण रज से स्पर्शित होने से यह क्षेत्र अतिपावन

है। यहां एक मन्दिर पर्वत के नीचे है व ५८ मन्दिर पर्वत के ऊपर हैं जहां विशाल-विशाल प्राचीन जिनप्रतिमाएं हैं एवं जिनेन्द्र के चरणों की स्थापना है। पर्वत से पानी का एक नाला गिरता है जिससे पर्वत ऐसा सुशोभित होता है मानो गंगानदी के प्रपात से युक्त हिमवान पर्वत ही हो। वहाँ देवों द्वारा प्रतिदिन केशर-कुसुम की वृष्टि होती है। स्थल-स्थल पर सुगन्धित पुष्पों के वृक्ष हैं। पुष्प-सौरभ से युक्त जल मिश्रित शीतल वायु के मन्द-मन्द संचार से दर्शकों की थकावट दूर हो जाती है एवं तत्रप्रसूत पवित्र भावनाओं से कर्म कालिमा नष्ट हो जाती है। उस पवित्र गिरिवर के दर्शनोपरान्त नीचे आने की भावना नहीं होती। भूख-प्यास की वाधा नहीं सताती। वहाँ की वायु के स्पर्श से अनेक प्रकार के शारीरिक रोग नष्ट हो जाते हैं।

अच्चलपुरवरणयरे, ईसाणे भायमेढ़गिरिसिहरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

इस क्षेत्र की महिमा अतुल है। मुक्तागिरि से ११ मील और परतवाड़ा से तीन मील दूर अचलपुर है। यहाँ पर सात आठ विशाल मन्दिर हैं जिनमें १५०० वर्ष प्राचीन अनेक जिनविम्ब हैं।

यहाँ से विहार कर परतवाड़ा के दर्शन करते हुए संघ आकोट पहुँचा। यहां पर एक मन्दिर में माणिक स्वामी की मूर्ति है। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह प्रतिमा गर्दन से खण्डित हो गई थी परन्तु देवकृत चमत्कार से प्रतिमा की गर्दन अपने आप जुड़ गई। इस समय भी जोड़ का चिन्ह दिखाई देता है। यह प्रतिमा पद्मासनस्थ है।

माणिक स्वामी के दर्शन कर संघ आकोला पहुँचा। यहाँ पर तीन प्राचीन विशाल जिनमन्दिर हैं; नगर भी प्राचीन है, श्रावकों के अनेक घर हैं। यहाँ से पन्द्रह मील दूरी पर अतिशय-क्षेत्र बाका ग्राम है जहाँ भगवान आदिनाथ की अत्यन्त मनमोहक मूर्ति है जिसके दर्शन से अतीव शान्ति प्राप्त होती है।

यहाँ से खासगाँव, मल्कापुर होते हुए संघ जम्बुई ग्राम पहुँचा। यहां एक मन्दिर है, इसका कुछ भाग पत्थर आदि से ढका हुआ है। तत्रस्थ मानव कहते थे कि यह एक अतिशय क्षेत्र है। यहां पर माणिक एवं रत्नों की प्रतिमा है। कुछ कारणवश यहां के देव के अतिशय से द्वार बन्द हो गया है जो बहुत प्रयत्नों के बावजूद भी नहीं खुलता है।

यहां से विहार कर आर्यिका संघ नहरी-जलगांव के दर्शन करता हुआ धरणगाँव पहुँचा। यहां के प्राचीन जिनमन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की विशाल मूर्ति है। जिस पर कर्नाटक भाषा में लेख अंकित है, स्पष्ट पढ़ने में नहीं आता है। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। यहाँ से पारोला, धुलिया, कुसुवा के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ माँगीतुंगी पहुँचा। माँगीतुंगी सिद्धक्षेत्र है—

राम हणू सुग्रीव सुडील, गय-गवाख्य नील महानील ।
कोडि निन्याणव मुक्तिपयान, तुंगीगिरि बन्दौं धरि ध्यान ।।

इस पर्वत से राम, हनुमान, सुग्रीव, सुडील, गय-गवाख्य, नील और महानील आदि ९९ करोड़ मुनियों ने मोक्षपद प्राप्त किया है। यहीं श्रीकृष्ण का भी दाह संस्कार हुआ है। यह क्षेत्र अत्यन्त रमणीय है। नीचे तीन मन्दिर हैं। सुन्दर मानस्तम्भ है। दो मील दूर पर्वत है। पर्वत पर गुफा है, गुफा में मुनिराजों की प्रतिमाएँ हैं जिनके हाथ में माला, पिच्छी और कमण्डलु है। आजकल विद्वान् कहते हैं कि मुनियों की प्रतिमाएँ नहीं होती हैं उनको माँगीतुंगी जाकर देखना चाहिए। यहाँ पर मुनियों की प्रतिमाएं बनी हुई हैं। पर्वत की ओर मुख करती हुई बलभद्र की प्रतिमा है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के दाह-संस्कार के बाद बलभद्र ने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की थी। जब आहार हेतु बलभद्र मुनिराज नगर में पधारते थे तब नागरिक स्त्रियां बलभद्रजी के सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हो जाती थीं अतः बलभद्र मुनिराज ने नगर में जाना छोड़ दिया और नगर की तरफ पीठ एवं पर्वत की ओर मुख करके खड़े हो गए। अभी तक उनका बिम्ब पीठ किए हुए है। ऊपर कुण्ड है। जन-श्रुति है कि यहां पर श्रीकृष्ण का दाह-संस्कार हुआ था। तुंगी पर्वत पर राम, हनुमान आदि की मूर्तियां हैं। पर्वत की शोभा अवर्णनीय है। पुरुषोत्तम रामचन्द्र की चरण-रज से पवित्र तुंगी के दर्शन से भव्यों की कर्म-कालिमा नष्ट हो जाती है। यहां के निवासी कहते हैं कि पर्वतों के शिखरों पर भी चरण चिह्न हैं परन्तु वहां पर जाना अत्यन्त कठिन है।

माँगीतुंगी सिद्धक्षेत्र की वन्दना कर शटाना के दर्शन करता हुआ संघ चांदोड़ पहुँचा। यहाँ एक छोटे से पर्वत पर प्राचीन विशाल मन्दिर है जिसमें पार्श्वनाथ भगवान का मनोज्ञ बिम्ब है। इस पर अन्य मतावलम्बी तैल-सिन्दूर लगाते हैं। मन्दिरजी के द्वार पर यक्ष-यक्षिणी की प्रतिकृति है। मन्दिर का परिवेश भी सुरम्य है। चारों ओर सुगन्धित पुष्पों के वृक्ष हैं शीतल मन्द सुगन्धित पवन-प्रवाह से सारी थकावट दूर हो जाती है तथा परम आह्लाद उत्पन्न होता है।

❖

श्रुताय येषां न शरीरवृद्धिः
श्रुतं चरित्राय च येषु नैव।
तेषां बलित्वं ननु पूर्वकर्म—
व्यापार भारोद्वहनाय मन्ये ।।

—यशस्तिलकचम्पू

८

कुंथगिरिसिहरे

चाँदोड़ से आर्यिका संघ सिद्धक्षेत्र गजपंथा पहुँचा। नौ बलभद्रों में से रामचन्द्र और श्रीकृष्ण के भाई बलदेव को छोड़ कर सात बलभद्रों सहित आठ करोड़ मुनियों ने मुक्तिपद प्राप्त किया है—

सत्तेव य बलभद्दा जदुवरणरिंदाण अट्ठकोडीओ।
गजपंथे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ।।

पर्वत से दो मील दूर पर एक मन्दिर है। पर्वत के नीचे एक मन्दिर है, पर्वत पर अतिशय शोभा से युक्त अनेक मन्दिर हैं। सातों बलभद्रों के चरण-चिह्न हैं तथा पार्श्वनाथ भगवान का विशाल बिम्ब है। शासन रक्षक देव-देवियों सहित जिनप्रतिमाएँ सुशोभित हैं। इनके दर्शन से अकृत्रिम जिनमन्दिरों का स्मरण हो आता है। पर्वत पर चम्पा आदि सुगन्धित पुष्प-वृक्षों से गिरे हुए फूलों से ऐसा प्रतीत होता है मानो देवकृत पुष्पवृष्टि हो।

उस समय आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज विशाल संघ सहित क्षेत्र में विराजमान थे। सिद्धक्षेत्र वन्दन एवं गुरुवर्य के दर्शन-वन्दन से आत्मा विभोर हो उठी। जिस प्रकार मेघों की गर्जना सुन कर मयूर नृत्य करने लगता है उसी प्रकार गुरुवचन रूपी मेघ-घोष सुन कर मन मयूर नाचने लगा—

"दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ।।"

जिस प्रकार छिद्रित हाथों में पानी स्थिर नहीं रह सकता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से एवं साधुओं की वन्दना से पाप स्थिर नहीं रह सकता है। शिष्यों के प्रति आचार्यश्री का परम वात्सल्य भाव था। गुरुवर के वात्सल्य भाव को प्राप्त कर हृदय गद्‌गद हो गया। पर्वत पर महान् तपस्वी गुरुदेव श्री महावीरकीर्तिजी महाराज को सर्प ने काट लिया परन्तु पार्श्वनाथ भगवान के अभिषेक के गन्धोदक से सर्प का विष शीघ्र उतर गया।

गजपंथा में गुरुदेव के सान्निध्य में आर्यिका संघ एक माह तक रहा। महाराजश्री के साथ में चर्चा करने से कठिन विषय भी बहुत सरल हो जाता था। गजपंथा से विहार कर नासिक, लासनगाँव, गोंदेगांव, कोपरगांव, येवका, राजगाँव आदि स्थानों के जिनालयों के दर्शन करते हुए संघ प्रातः स्मरणीय परम तपस्वी १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज, श्रेयांससागरजी महाराज एवं मल्लिसागरजी महाराज के जन्म से पवित्र नगर नाँदगाँव पहुँचा। यहाँ एक विशाल मन्दिर है। प्रत्येक श्रावक के घर में चतुर्थकालीन पद्धति के अनुसार चैत्यालय है। मन्दिरजी में अतिशय चमत्कारी जिनबिम्ब है।

नाँदगाँव से वाकला, वोलठापा, चापानेर, कलड, हथनूर आदि गाँवों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए एवं धर्मोपदेश द्वारा भव्यजीवों को धर्मामृत का पान कराते हुए पूज्य माताजी इन्दुमतीजी संघस्थ आर्यिकाओं एवं अन्य श्रावक-श्राविकाओं के समुदाय सहित अतिशय क्षेत्र एलोरा पहुँचो। यहां पर्वत पर पार्श्वनाथ भगवान का विशाल बिम्ब है। अनेक गुफाएँ हैं जिनमें विशाल-विशाल जिनबिम्ब हैं। कितने ही बिम्ब खण्डित हैं, कितने ही सुरक्षित हैं। शासनदेवों की भी विशाल विशाल प्रतिकृतियां हैं।

एक समय तो वह था जब धर्मनिष्ठ महानुभावों ने विशाल मन्दिर, जिनविम्ब और गुफाओं का निर्माण कर अपने द्रव्य का सदुपयोग किया था। आज की समाज नवीन निर्माण तो दूर रहा, पुरातनों की रक्षा करने में भी असमर्थ हो रही है। यहां पर बौद्ध, वैष्णव आदि मतावलम्बियों की भी गुफायें हैं। एक पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर के सिवाय सारे जिनमन्दिर राज्य सरकार के अधिकार में हैं। यहाँ की प्राकृतिक शोभा अद्‌भुत है; पर्वत एवं गुफाओं की रमणीयता दर्शनीय है। निर्मल जल का प्रपात है, जल बड़े वेग से बहता है। पूज्य समन्तभद्र महाराज के द्वारा स्थापित गुरुकुल है; यहाँ अनेक लड़के विद्यार्जन करते हैं।

एलोरा से कुछ दूर पर कसावखेड़ा नामक गाँव है। गुरुवर्या परम पूज्य इन्दुमती माताजी ने विक्रम संवत् २००० की आसोज शुक्ला एकादशी को क्षुल्लिका दीक्षा यहीं ग्रहण की थी।

चौबीसवाँ वर्षायोग :

कसावखेड़ा से औरंगाबाद गए। विक्रम संवत् २०२३ का वर्षायोग यहां सम्पन्न किया। यहां पर चार प्राचीन मन्दिर हैं और एक मन्दिर नया बना है। औरंगाबाद एक समय औरंगजेब की

राजधानी रहा था। यहां से दो मील पर है वेगमपुरा—वेगमपुरा से दो मील की दूरी पर एक पर्वत है जो नेमगिरि नाम से ख्यात है। पर्वत पर भगवान नेमिनाथ का जिनविम्ब है। एक मन्दिर भी है, कहते हैं कि यह भी कभी जिनमन्दिर था; अभी भी कुछ चिन्ह जैनियों के हैं।

चातुर्मास के बाद वालूज होते हुए अतिशय क्षेत्र कचनेर पहुँचे। यहां चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान की सप्तफणावाली मूर्ति है। किंवदन्ती है कि एक बार इस प्रतिमाजी की गर्दन धड़ से अलग हो गई थी। मूर्ति के खण्डित हो जाने से सारी जनता में शोक-सन्ताप छा गया। समाज ने निर्णय करके मूर्ति को जलाशय में विसर्जित करने का निश्चय किया। एकरात्रि में विस्मयकारी वात हुई। किसी दैवी शक्ति ने एक श्राविका को स्वप्न दिया कि इस जिनबिम्ब को सात दिन तक घृत और चीनी में रख दो और निरन्तर अखण्ड स्तुति-पाठ करो। स्वप्न के अनुसार श्रावकों ने जिनप्रतिमाजी (खण्डित) को घृत और चीनी में रख कर एक आलमारी में रख दिया। सातवें दिन, सबको आश्चर्य पैदा करने वाली बात हुई; कोठरी और आलमारी के ताले स्वतः टूट गए। प्रतिमाजी की गर्दन जुड़ गई। मूर्ति पूर्ववत् दिखाई देने लगी। इस चमत्कार के प्रत्यक्ष दर्शन कर जय-जयकार की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। आज भी इस प्रतिमा का अतिशय है। श्रद्धालु भक्तों की कामना पूर्ण होती है।

कचनेर से अतिशय क्षेत्र पैदल पहुँचे—जहां पर मुनिसुव्रतनाथ का विशाल बिम्ब है। निर्वाण-भक्ति में लिखा है—

पासं तह अहिणंदण, णायद्दहि मंगलाउरे वंदे।
अस्सारम्भे पट्ठणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥

इससे यह प्राचीन अतिशय क्षेत्र प्रसिद्ध है। यहाँ पर पुरातन क्षेत्रपाल है। यहां के मानस्तम्भ व जिनमन्दिर की शोभा वचनातीत है।

यहां से टाकली, ढुढ़राई, गहराई, बीड़ होते हुए देशभूषण कुलभूषण मुनिद्वय की निर्वाण स्थली कुन्थलगिरि पहुँचे।

कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र :

कुन्थलगिरि दक्षिण भारत का अद्वितीय परम पावन सिद्धक्षेत्र है। यद्यपि पर्वत छोटा है तथापि अत्यन्त रमणीय है। दूसरे शिखर पर रमणीय शिखर एवं ध्वजा से सुशोभित नव मन्दिर हैं। वहां के मुख्य मन्दिर में कुलभूषण और देशभूषण भगवान के मनोज्ञ खड्गासन विम्ब एवं चरण चिन्ह हैं, जिनके दर्शन से मन विभोर हो जाता है। आप दोनों ने युवावस्था में ही जिनमुद्रा ग्रहण

की थी। राम और लक्ष्मरण ने आप पर दैत्य द्वारा किए जाने वाले उपसर्ग को दूर किया था। यहां से एक मील दूर पर राम कुण्ड है। जनश्रुति है कि राम ने यहां चातुर्मास किया था, अन्य मतावलम्बी भी यहां आते हैं।

जैन ग्रन्थों में वर्णन है कि क्षेमङ्कर राजा की रानी विमला के गर्भ से कुलभूषरण और देशभूषरण नाम के युगल पुत्र उत्पन्न हुए थे। पाँच वर्ष की अवस्था में दोनों राजपुत्र विद्यार्जन हेतु गुरुकुल में चले गए। दोनों भाइयों में इतना प्रेम था मानो शरीर दो हैं और आत्मा एक ही है। विद्याध्ययन समाप्ति पर दोनों भाई अपनी राजधानी लौट रहे थे। समस्त जनता राजकुमारों को देखने के लिए उत्सुक हो रही थी। मङ्गल वादित्र बज रहे थे। इतने में दोनों भाई परस्पर युद्ध करने लगे। अकस्मात् दोनों भाइयों में संघर्ष होता देखकर जनता विस्मय में पड़ गई। मन्त्रियों ने सोचा—कलह के दो ही कारण हो सकते हैं—स्त्री और राज्य। राज्य तो अभी राजा के हाथ में है; हो सकता है किसी रमरणी पर मुग्ध हुए हों; इसी कारण इनमें वैमनस्यता आई है। साहस करके एक वृद्ध मंत्री ने पूछा—हे राजपुत्रों! आप दोनों किस कारण से परस्पर युद्ध कर रहे हैं? राजपुत्र बोले—हम दोनों में से एक की मृत्यु हुए बिना दूसरे को शान्ति नहीं मिलेगी। मंत्री ने कहा—क्यों?

एक राजपुत्र बोला—देखो! उस राजमहल पर पञ्चरङ्गी साड़ी पहने और हाथ में रत्नों का दीपक लिए जो युवती कन्या खड़ी है, उसे पहले मैंने देखा, वह मेरी है।

दूसरा राजपुत्र बोल उठा—उस कन्या को पहले मैंने देखा इसलिए वह मेरी है। इन दोनों की बात सुन कर मंत्री आश्चर्यपूर्वक कहने लगा—हे राजपुत्रों! जिसके लिए आप एक दूसरे का घात करना चाहते हैं वह विमला रानी की कुक्षि से समुत्पन्न आपकी सहोदरा है। गुरुकुल में विद्यार्जन करके भी आप कामविजयी नहीं बने; आपकी यह अक्षरी विद्या निस्सार है। जिस प्रकार गारुड़ी के मंत्र से सर्प का विष उतर जाता है उसी प्रकार मंत्री के वचनों से राजपुत्रों का काम-ज्वर उतर गया। वे विचार करने लगे—अहो! काम के वशीभूत हुआ प्राणी हेयोपादेय के विचार से शून्य हो जाता है। ऐसा विचार कर तत्काल संसार शरीर और भोगों से विरक्त हो दोनों ने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली तथा सूर्य के प्रकाश से रहित भयानक निर्जन दण्डकारण्य में स्थित वंशस्थल गिरि पर जाकर घोर तपश्चरण करने लगे। तब पूर्व भव की शत्रुता का बदला लेने के लिए कोई दैत्य आकर मुनि द्वय पर घोर उपसर्ग करने लगा। उस दैत्य की घोर गर्जना से पर्वतीय प्रदेश में स्थित सभी नागरिक भयभीत होकर संध्याकाल के समय त्राण हेतु इधर-उधर भागने लगे। उसी समय वहां पर सीता सहित राम और लक्ष्मरण आकर एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। उन्होंने नागरिकों से पूछा कि 'हे नागरिकों! इस समय कहां जा रहे हो?' नागरिकों ने उत्तर दिया—'महाशय! अर्धरात्रि के समय इस पर्वत पर भयानक गर्जना व अट्टहास होते हैं जिसे सुनकर गर्भिणी स्त्रियों का गर्भपात हो

जाता है अतः हम लोग रात्रि में अन्य स्थान पर जाकर विश्राम करते हैं।' नागरिकों की बात सुन कर राम लक्ष्मण ने निश्चय किया कि अवश्य ही पर्वत पर किसी महापुरुष पर घोर उपसर्ग हो रहा है। ऐसा विचार कर राम लक्ष्मण सीता सहित पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पर लावण्य की खान, आत्मध्यान में निरत तरुण मुनि युगल को देख कर उनका शरीर रोमांचित हो उठा; आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे गद्गद स्वर से स्तुति करने लगे—

मिथ्यात्वमन्मथतमोहरणोष्णरश्मिं,
संसारतापपवनाशनवैनतेयम्।
स्वर्गापवर्गसुखदं हतमोहतन्द्रं,
भक्त्या नमामि तव पादयुगं जिनेश॥

तुभ्यं नमोऽस्तु भवनाशक हे जिनेश!
तुभ्यं नमोऽस्तु भवनीरधितारकेश।
तुभ्यं नमोऽस्तु भवतापविनाशकाय,
तुभ्यं नमोऽस्तु भवभूरुहकुञ्जराय॥

इस प्रकार स्तुति कर परम भक्ति से सबने मुनिराज के चरणारविन्द में नमस्कार किया। जलाशय के जल से पाद-प्रक्षालन कर चन्दनलेप किया। राम ने वीणा बजाई; सीता ने नृत्य किया। अर्धरात्रि होने पर भयानक अट्टहास होने लगा, पत्थरों की वर्षा होने लगी, रुण्ड मुण्ड लेकर दैत्य ताण्डव करने लगा। उसे देख कर सीता भयभीत हुई। भयभीत सीता को मुनिराज के चरण सान्निध्य में बैठा कर आप राक्षस के पास गए। चरम शरीरी राम के प्रताप से दैत्य भाग गया और मुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। चतुर्निकाय के देवों ने केवलज्ञान की पूजा की। कुछ दिन भूतल पर विहार कर धर्मोपदेश देते हुए पुनः कुन्थलगिरि पर्वत पर आए और अघातिया कर्मों का नाश कर मुक्तिपद प्राप्त किया—

वंसत्थलम्मि णयरे पच्छिमभायम्मि कुंथगिरिसिहरे।
कुलदेसभूषणमुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

परम पावन कुलभूषण देशभूषण मुनिराज के सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि पर परम पूज्य प्रातः स्मरणीय, योगिराज, पंचम काल के चारित्र चक्रवर्ती १०८ शान्तिसागरजी महाराज ने ३६ दिन की यम सल्लेखना पूर्वक णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हुए परम शान्त मुद्रा से स्वर्गश्री प्राप्त की है। उस परम तपस्वी के चरणरज से पवित्र कुन्थलगिरि की शोभा और भी अधिक बढ़ गई है।

परन्तु सातगौड़ा ने वनिता-वेड़ी से वँधना उपयुक्त नहीं समझा और विवाह-चर्चा से ही पीछा छुड़ाने के लिए आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। यद्यपि आप माता-पिता के आग्रह से घर में ही रहते थे, व्यवसाय भी करते थे परन्तु आपकी रुचि अध्यात्म में ही थी।

पिता के स्वर्गारोहण के वाद विक्रम संवत् १९७० में ४१ वर्ष की उम्र में आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। ७ वर्ष वाद विक्रम संवत् १९७७ फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी के दिन जिन-दीक्षा ग्रहण की और श्रुतिमधुर शान्तिसागर के नाम से जगद्विख्यात हो गए। आपकी निर्मल चर्या एवं सत्संग से प्रभावित होकर अनेक मुमुक्षुओं ने मुनि-दीक्षा ग्रहण कर आपकी शिष्यवृत्ति स्वीकार की। अनेक ने क्षुल्लक, ऐलक, क्षुल्लिका, आर्यिका के व्रत अंगीकार किए। कई ब्रह्मचारी वने। अनेक स्त्रियों ने व्रत अंगीकार कर पराधीन स्त्री पर्याय को पवित्र किया।

सर्प, सिंह जैसे क्रूर प्राणियों ने भी आपके सामने क्रूरता का परित्याग कर दिया। एक वार आपके शरीर पर एक स्थूलकाय विषधर चढ़ गया, बहुत समय तक शरीर से लिपटा रहा परन्तु आपको ध्यान से विचलित नहीं कर सका। सिंह भी आपको अनेक वार मिला परन्तु सदैव विनीत भाव से लौट गया। परम तपस्वी १०८ आचार्यश्री वीरसागरजी; प्रखर वक्ता, निर्भीक मुनिश्री चन्द्रसागरजी; संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के श्रेष्ठ विद्वान् श्री सुधर्मसागरजी महाराज, श्री कुन्थुसागरजी श्री पायसागरजी, श्री नेमिसागरजो, अनेक गुरुकुलों के संस्थापक मुनिराज श्री समन्तभद्रजी; आपके ज्येष्ठ भ्राता मुनिश्री वर्धमानसागर महाराज आदि अनेक भेद विज्ञानियों ने आप सदृश गुरु को पाकर अपनी मनुष्य पर्याय को सार्थक किया है।

आपके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आपने भारत देश के अनेक प्रान्तों में निर्भीकतापूर्वक पैदल विहार किया। श्रवणबेलगोला से लेकर सम्मेदशिखरजी तक आपने भ्रमण किया तथा मिथ्यात्व रूपी अन्धकार का नाश किया। जिस समय आपने दिल्ली में चातुर्मास किया था, उस समय वहां नग्न दिगम्बर साधुओं का अव्याहतविहार वर्जित था। अतः सरकारी नियमानुसार, चर्या के लिए जाते समय श्रावकगण आपको घेर कर चलते थे। जव आपको यह तथ्य ज्ञात हुआ तब एक दिन आप श्रावकों के आने से पूर्व ही शुद्धि करके शहर में आने लगे, सर्वत्र हलचल मच गई। लोग कहने लगे कि सरकारी कानून की अवहेलना करने से आपत्ति आने की सम्भावना है। मेरु के समान अचल, निर्भीक गुरुदेव चर्या करके वापस आ गए और श्रावकों को कहने लगे—भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। मुनि सिंह सदृश निर्भय विहार करता है। दिगम्बर साधुओं पर कोई रोक-टोक नहीं हो सकती।

पूज्य आचार्यश्री के मुखारविन्द से उत्साहवर्द्धक शव्द सुन कर सबका हृदय गद्‌गद हो गया। दूसरे दिन आपने दिल्ली शहर के मुख्य-मुख्य स्थानों पर जाकर फोटो खिंचवाये। जब लोगों

ने इस सम्बन्ध में पूछा तो आपका उत्तर था—इन फोटो से भावी मुनियों के लिए प्रमाण उपस्थित रहेंगे; वे निर्भयता पूर्वक विहार कर सकेंगे। आपके दूरदर्शितापूर्ण वचनों को सुन कर उपस्थित श्रावक समुदाय को बहुत हर्ष हुआ और सबने आपकी धर्म-संरक्षण प्रवृत्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

आचार्यश्री ने अपने जीवन में अनेक धर्म-कार्य किए। १८ महापुरुषों को दिगम्बर दीक्षा प्रदान की, अनेक महिलाओं को आर्यिका पद प्रदान किया, अनेक भव्यों ने ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी पद के व्रत ग्रहण किए। जिनके दर्शन तक दुर्लभ थे ऐसे धवलादि ग्रन्थों को ताम्रपत्र पर खुदवा कर आपने जिनवाणीसंरक्षण का अभूतपूर्व कार्य किया; गुरुकुलों की स्थापना कर धार्मिक शिक्षा का वातावरण तैयार किया; इस प्रकार स्व-कल्याण के साथ-साथ जनता का भी कल्याण किया। अन्त में, ३६ दिन की यम-सल्लेखना व्रत के बाद १८ सितम्बर १९५५ को निर्भयतापूर्वक हँसते-हँसते भौतिक शरीर का परित्याग कर कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र से स्वर्गश्री प्राप्त की।

अपने इस जाज्वल्यमान इंगिनीमरण से (आचार्यश्री ने) केवल जैन समाज का ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष का मस्तक उन्नत किया तथा जड़ पर चेतन के विजय की ध्वजा फहरायी। ऐसी अजेय, अतिमानव-आत्मा की पुण्य स्मृति में करोड़ों भक्त नर-नारियों के साथ हार्दिक भक्तिपूर्वक नतमस्तक होकर विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और आपके गुणों का चिन्तन कर आनन्दविभोर हो जाते हैं। गुरुवर ने हम पर—मानव समाज पर असीम उपकार किए हैं; ऐसे गुरुवर के महोपकारों का वर्णन कहाँ तक किया जाय।

आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज प्राणी-मात्र के प्रति करुणाशील थे, प्रेम, शान्ति, अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह के उच्च आदर्शों की ध्वजा को उन्नत करने वाले विख्यात सन्त थे, सत्यान्वेषियों के वे सच्चे मार्गदर्शक थे।

प्रातर्नमामि तव पादयुगं पवित्रं,
मध्याह्नि नाथ ! तव संस्तवनं करोमि।
सायं च ते मधुरकीर्तनमाचरामि,
नित्यं स्मरामि तव देव ! पवित्र नाम ॥

श्रद्धा से नतमस्तक होकर केवल नमस्कार के सिवाय और हमारे पास क्या है।

कुन्थलगिरि पर आचार्यश्री की समाधि के बाद नातेपूते निवासी उनके अनन्य भक्त गौतम भाई ने १८ फुट ऊँची बाहुबलि स्वामी की मनोज्ञ मूर्ति प्रतिष्ठित करवाई है जो बहुत दूर से ही सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है। समवसरण की रचना भी क्षेत्र का सौन्दर्य बढ़ाने वाली है।

इस क्षेत्र की पवित्रता और अतिशयता प्रभावशाली है। क्षेत्र के चारों ओर सरकार के आदेश से हिंसा करना निषिद्ध है।

१९४७ ई० में रजाकारों के अत्याचारों के भय से क्षेत्ररक्षकों ने क्षेत्र की सुरक्षा हेतु मन्दिरजी में ताले लगा दिए तथा अपनी सुरक्षा हेतु लोग क्षेत्र छोड़ कर दूर स्थानों में चले गए। लेकिन क्षेत्र के विशेष अनुरागी श्री वीड़कर गुरुजी अपने प्राण हथेली पर रख कर अकेले ही मन्दिर की रखवाली करने लगे।

अत्याचारियों ने उन्हें शस्त्र का भय दिखाया, ताला तोड़कर उन्होंने मन्दिर में प्रवेश किया परन्तु वीतराग जिनेन्द्र की धीर, गम्भीर, शान्त मुद्रा देख कर वे भी शान्त हो गए और नमस्कार कर चले गए। इस प्रकार यह क्षेत्र सिद्धक्षेत्र भी है, अतिशय क्षेत्र भी है और समाधि-सम्राट पूज्य शान्तिसागरजी महाराज का समाधि स्थल भी।

ऐसे परम पवित्र क्षेत्र के दर्शन से अपार आनन्द का अनुभव हुआ। जिस समय आर्यिका संघ कुन्थलगिरि पहुँचा उससमय वहां आचार्यश्री १०८ विमलसागरजी महाराज संघ सहित विराज रहे थे। उनके पुनीत दर्शनों का एवं उपदेश-श्रवण का लाभ मिला। वहां से विहार कर संघ ने सोलापुर की ओर प्रस्थान किया।

सोलापुर पहुँचने के दो मार्ग हैं—एक बार्शी दूसरा उस्मानाबाद। उस्मानाबाद से २/४ मील पर पहाड़ है। पहाड़ में ही काटी हुई बहुत सी प्राचीन गुफाएँ हैं। वह 'तेरलेणी' नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं यहां भगवान महावीर का समोशरण आया था।

'तेरलेणी' में मन्दिर के शिखर का काम ईंटों से किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसकी ईंट पानी में डालने के बाद भी डूबती नहीं। काष्ठ खण्ड की तरह पानी पर अभी भी तैर लेती है। गुफा के तलघर में पानी का कुण्ड है। वहां से निकल कर कुन्थलगिरि पहुँचा जा सकता है। ऐसी किंवदन्ती है। बार्शी में भी जिनमन्दिर है।

कुन्थलगिरि से ८० मील पर सोलापुर शहर है जहाँ छह जिनमन्दिर एवं जैनों की काफी संख्या है। बोर्डिंग, गुरुकुल, श्राविकाश्रम, ग्रन्थमाला आदि संस्थाएँ हैं। पूज्यश्री शान्तिसागरजी महाराज के परम भक्त शिष्य श्री हीराचन्द नेमचन्द नाम से अस्पताल, नेत्र चिकित्सालय, ग्रन्थमाला, वाचनालय चल रहे हैं। पूज्यश्री समन्तभद्रजी महाराज की प्रेरणा से ज्ञान-दान केन्द्र खुले हुए हैं जिनमें गुरुकुल प्रणाली से शिक्षा-दीक्षा होती है। व्यावहारिक शिक्षा के साथ-साथ धर्म और अध्यात्म की शिक्षा भी दी जाती है, तात्विक ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता है और त्यागी-जीवन के संस्कार-वपन का कार्य सम्यक् रीति से होता है। ऐसी संस्थाओं की शाखायें आस-पास के स्थानों में भी खुली हैं।

सहस्रों विद्यार्थी ज्ञानार्जन करके सुख-सन्तोष पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हुए आत्मकल्याण हेतु प्रयत्नशील हैं। 'अनेकान्त सोसायटी' के तत्वावधान में वारामती, सोलापुर, जयसिंहपुर आदि स्थानों पर ऐसे आदर्श महाविद्यालय भी चल रहे हैं।

आज से साठ वर्ष पहले श्री निवर्गीकर परिवार ने चतुरबाई श्राविका विद्यालय—(कन्या पाठशाला) खुलवाई। उस समय स्त्री शिक्षा का प्रचार बहुत कम था। बड़ी कठिनाई से चार स्त्रियाँ पढ़ने के लिये आती थीं। उनके बाल-बच्चों को सँभालने की व्यवस्था भी पाठशाला की ओर से थी। आज तो वहां माण्टेसरी विद्यालय, प्राथमिक विद्यालय, हाई स्कूल और महाविद्यालय वन चुका है। ढ़ाई-तीन हजार बालिकाएं संस्था में पढ़ती हैं। बाहर से आने वाली छात्राओं के आवास व शिक्षा का प्रबन्ध राजुमती दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम में है। अनाथ और विधवा स्त्रियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। पूज्य राजुलमती माताजी ने अपनी गृहस्थावस्था में इस संस्था का सम्यक् संचालन किया था। अनन्तर ब्र० सुमतिबाई को सारा उत्तरदायित्व सौंप कर आपने आचार्यश्री शान्तिसागरजी से आर्यिका-दीक्षा धारण कर ली थी। आपके पास यदि कोई भी विधवा स्त्री आती थी तो आप उसे जबरदस्ती अध्ययन करवाके आत्मकल्याण का मार्ग वताती थीं। अनेक वहिनों को आपने सन्मार्ग में प्रवृत्त किया। स्व-पर कल्याणरत पूज्य माताजी ने सल्लेखना-पूर्वक समाधिमरण कर अपना जीवन सफल किया।

सन् १९४७ में पूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज का यहाँ चातुर्मास हुआ था। बोर्डिंग के विशाल मैदान में प्रवचन होता था। महाराजश्री के उपदेशामृत का पान कर अनेक भव्यजीवों ने आत्मकल्याण में प्रवृत्ति की।

सोलापुर से ६० मील दूर पर बीजापुर गाँव है। जिनमन्दिर एक है; श्रावकों के ५-६ घर हैं। इतिहास प्रसिद्ध 'गोल गुम्बद' देखने के लिए देशी-विदेशी पर्यटकों की भीड़ हमेशा वनी रहती है। एक बार किसी भी प्रकार की आवाज करने पर या वोलने पर दीवारों से सात वार प्रति-ध्वनि निकलती है। यहां से ५-७ मील दूर पर 'दुर्गाभाग' में एक मन्दिर है। पार्श्वनाथ भगवान की सहस्रफणा मूर्ति वड़ी रम्य और सुन्दर है। १०-१२ मील पर वावानगर है। यहां के जिनमन्दिर में हरितवर्ण की अतिशययुक्त एक मनोज्ञ प्रतिमा है। कहा जाता है कि मूर्ति में एक दिव्यमणि थी। किसी व्यक्ति ने लोभ में आकर मणि निकाल ली। चमत्कारी होने से जैन-जैनेतर सभी लोग इसे पूजते हैं और 'वावा' नाम से पुकारते हैं, इसी से 'वावानगर' नाम पड़ा है।

वावानगर से आर्यिका संघ हुवली पहुँचा। हुवली वड़ा शहर है। जैनों की संख्या भी काफी है। मन्दिर एवं जैन वोर्डिंग है। हुवली से संघ हावेरी पहुँचा। यहाँ पर तीन विशाल जिन-मन्दिर हैं। परम पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के शिष्य पूज्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज

यहां विराजमान थे। सात वर्ष के बाद आपके दर्शनों का सुयोग मिला। साधुओं के दर्शन जिन-मन्दिर के दर्शन से भी दुर्लभ हैं। महाराजश्री के दर्शन से हृदय प्रफुल्लित हुआ, शरीर रोमाञ्चित हो उठा; इतना आनन्द हुआ मानो रंक को निधि मिल गई हो। सच है—दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति से किसे आनन्द नहीं आता।

हावेरी से हरिहर आदि गाँवों में होते हुए संघ हुम्मच पद्मावती पहुँचा। यहां पर विशाल-विशाल प्राचीन मन्दिर बने हैं। पहाड़ पर कुन्दकुन्द विद्यापीठ निर्माणाधीन है। यहां के मन्दिरों में विशाल रमणीय पुरातन बिम्ब हैं, भट्टारकजी की गद्दी है। अनेक विद्यार्थी विद्याध्ययन निरत हैं। पूज्यपाद स्वामी द्वारा कर्णाटक भाषा में विरचित अनेक हस्तलिखित ताडपत्रीय ग्रन्थ हैं। कतिपय अन्य ग्रन्थ चिकित्सा सम्बन्धी भी हैं जिनमें अद्‌भुत-आश्चर्यकारी औषधियों का वर्णन है। जिनशासनरक्षिका पद्मावती देवी की मूर्ति है, इसी से गाँव का नाम 'हुम्मच पद्मावती' पड़ा है। यहां पद्मावती का विशेष अतिशय है। प्रतिदिन सहस्रों दर्शनार्थी दूर-दूर से आते हैं, पुण्ययोग से उनको मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति भी होती है। सायंकाल के समय मूर्ति को विमान में विराजमान कर गांव में शोभा-यात्रा निकालते हैं।

यहाँ शंका हो सकती है कि क्या पद्मावती की पूजा करना मिथ्यात्व नहीं है? क्या उसकी उपासना करने से सम्यग्दर्शन मलिन नहीं होता? जैन लोग वीतराग के उपासक हैं वे सरागी देव की उपासना कैसे कर सकते हैं।

समाधान: पद्मावती देवी और जिनशासन रक्षक अन्य देव-देवियों को साधर्मी भाई या धर्म के रक्षक समझ कर सत्कार एवं पूजा-उपासना करने में दोष नहीं है। ये शासनदेव धर्म के रक्षक हैं ऐसा समझ कर उनका सत्कार किया जाता है वृन्दावन जी ने 'हंसासनी, पद्मासनी, जिनशासनी माता' आदि लिख कर पद्मावती स्तोत्र बनाया है। उन्होंने टिप्पणी में लिखा है—कि कोई-कोई भाई तर्क करेंगे—पद्मावती सरागी है। इसका स्तोत्र क्यों बनाया। परन्तु साधर्मी भाइयों पर हमारा परम वात्सल्य भाव है। पद्मावती, चक्रेश्वरी आदि शासनदेवताओं ने हमारे धर्म की रक्षा-प्रभावना की है अतः ये सत्कार करने योग्य हैं। इस पंचमकाल में भी शासनदेवता ने समन्त-भद्र की सहायता की, महादेव की पिण्डी फोड़कर उसमें चन्द्रप्रभ भगवान का चतुर्मुखी बिम्ब प्रकटाकर जिनधर्म का माहात्म्य प्रकट किया। पात्रकेसरी के सम्यग्दृष्टि बनने में सहायक बनी। बौद्धों के साथ विवाद कर अकलंक देव की विजय में सहायक बनी। पार्श्वप्रभु पर कमठ द्वारा किए जाने वाले उपसर्ग को दूर करने में निमित्त बनी। इस प्रकार जिनधर्म की रक्षा और प्रभावना करने वाले होने से शासनदेवी-देवता आदरणीय होते हैं क्योंकि सज्जन लोग किए हुए उपकार का विस्मरण नहीं करते। (स्तवनिधि (दक्षिण) के प्राचीन मन्दिर में क्षेत्रपाल है; उसकी उपासना हेतु प्रतिदिन सैंकड़ों यात्री आते हैं और आने वाले की कामना भी पूर्ण होती है)।

वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा मानना मिथ्यात्व नहीं है, विपरीत मानना मिथ्यात्व है। उन शासनदेवताओं को जिनधर्म के रक्षक मान कर साधर्मी के नाते उनका सत्कार करना मिथ्यात्व नहीं है। उनको वीतराग मान कर पूजना मिथ्यात्व है। दूसरी बात यह है कि वे शासनदेव सम्यग्दर्शन के आयतन भी हैं। कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और उनके सेवक अनायतन हैं और देव, शास्त्र, गुरु और उनके सेवक आयतन हैं। सम्यक्त्व के आयतन होने से भी वे सत्कार योग्य हैं।

हुम्मच पद्मावती से प्रस्थान कर कुन्दाद्रि पहुँचे। यहां एक-दो मील चढ़ाई का पर्वत है। पर्वत पर शिखरबंध विशाल प्राचीन भव्य मन्दिर है। बाहर छोटा सा मानस्तम्भ है, कुन्दकुन्द स्वामी के चरण हैं। मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ का खड्गासन मनोज्ञ बिम्ब है जिस पर से दृष्टि अन्यत्र नहीं जाती। यहाँ का प्राकृतिक परिवेश अत्यन्त रमणीय है। सदैव पुष्प सुरभि बिखरी रहती है।

यहां से अनेक गाँवों में विहार करते हुए मूलबद्री (मूड़बद्री) पहुँचे, जिसे जैनों की काशी कहते हैं। यहाँ अनेक विशाल-विशाल जिनमन्दिर हैं। ताड़पत्र पर लिखित अनेक शास्त्र हैं जिन्हें श्रुतसंरक्षणशील परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवा कर जिनवाणी की सुरक्षा की है। यहाँ मूंगा, मोती, प्रवाल, चन्दन, गारुड़मणि, पुखराज, नीलम, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रकान्तमणि, स्फटिकमणि, पारसमणि, रत्न, सोना, चाँदी आदि की अनेक छोटी-बड़ी प्रतिमाएं हैं। कुल २६ जिनमन्दिर हैं जिनमें विशाल-विशाल खड्गासन पद्मासन जिनबिम्ब हैं। उनके दर्शन से असीम सुखशान्ति प्राप्त होती है। कर्म कालिमा का प्रक्षालन होता है। धन्य हैं वे महान् आत्माएँ जिन्होंने ऐसे ऐसे विशाल बिम्ब और ऐसे ऐसे विशाल मन्दिर स्थापित किये हैं।

मूडबद्री से वरांग पहुँचे। यहाँ पर चार विशाल मन्दिर हैं जिनके चारों ओर काजू, दाल-चीनी आदि के झाड़ों की सुगन्ध आती रहती है। अनन्तनाथ भगवान का मन्दिर तालाब के मध्य में है, चतुर्मुखी प्रतिमा है। दर्शन हेतु नौका में बैठ कर जाते हैं। प्रतिमा अत्यन्त सौम्य है और वैराग्य भावों को जगाने वाली है।

यहाँ से कारकल पहुँचे। यहां दो छोटे-छोटे पर्वत हैं, एक पर बाहुबलि भगवान की खड्गासन प्रतिमा है, दूसरे पर विशाल जिनमन्दिर है। इसकी मध्यवेदी में चारों ओर खड्गासन तीन-तीन मूर्तियाँ (कुल १२) हैं। २००० वर्ष प्राचीन होने पर भी ऐसा प्रतीत होता है मानो आज ही बनी हों। पर्वत से दो मील दूर पर गुरुकुल है और भट्टारकजी का स्थान है। मार्ग में कोई १०-१५ विशाल मन्दिर बने हैं। उन सबके दर्शन कर वरांग-वेणूर पहुँचे। यहां भगवान बाहुबलि का खड्गासन विशाल बिम्ब है जो दूर से ही दृष्टिगोचर होने लगता है। एक चतुर्विंशति

मन्दिर है जिसमें खड्गासन चौवीस जिनबिम्ब बहुत पुराने हैं। मार्गस्थ स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए 'आर्यिका संघ' धर्मस्थल पहुँचा।

'धर्मस्थल' वास्तव में धर्मस्थल है; यहां अनेक धर्मायतन बने हैं। किसी समय यहां महान् धार्मिक कार्य सम्पन्न हुए हैं। एक जिनमन्दिर है। रत्नवर्मा हेगड़े नामक राजा है, एक वैष्णव मन्दिर है उसमें करोड़ों की सम्पदा है; इसकी देख-रेख राजा के हाथ में है। यहां प्रतिदिन हजारों यात्रियों को भोजन कराया जाता है। राजा के घर में एक जिन चैत्यालय है, उसमें रत्नों की प्रतिमाएँ हैं। राजा ने भगवान बाहुबलि की ८४ फुट ऊंची प्रतिमा भी बनवाई है।

यहाँ से शान्तिपुर ग्राम के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए 'हासन' पहुँचे। हासन में विशाल मन्दिर हैं। हासन से श्रवण बेलगोला पहुँचे जहाँ विश्वविख्यात, इतिहासप्रसिद्ध भगवान बाहुबलि की मूर्ति है।

जीव और मन का संवाद

भो चेतः किमु जीव तिष्ठसि कथं चिन्तास्थितं सा कुतो,
रागद्वेषवशात्तयोः परिचयः कस्माच्च जातस्तव।
इष्टानिष्टसमागमादिति यदि स्वभ्रं तदावां गतौ,
नोचेन्मुञ्च समस्तमेतदचिरादिष्टादिसङ्कल्पनम् ॥१।१४५॥

—पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका

१

श्रवणबेलगोल

मैसूर राज्य के हासन जिले में भगवान गोमटेश्वर वाहुवली की ५७ फुट ऊँची भव्य तथा विशाल मूर्ति के कारण श्रवणबेलगोल अतिशय प्रभावक एवं आकर्षक तीर्थस्थान है। यह हासन स्टेशन से ३२ मील, मैसूर से ६० मील तथा बैंगलोर से ९० मील दूर है। समस्त मैसूर राज्य में सौन्दर्य और भव्यता का सुन्दर समन्वय देखा जाता है। श्रवणबेलगोल जैन तीर्थ होने के साथ-साथ विश्व के सभी कलाकारों तथा कलाप्रेमियों के लिए दर्शनीय एवं अभिवन्दनीय स्थान है।

उस स्थान पर श्रमण शिरोमणि भगवान बाहुवली का विशाल भव्य बिम्ब है; वहां का वेलगोल सरोवर भी महत्त्वपूर्ण है। श्रमण (बाहुबली) और बेलगोल (सरोवर) से युक्त होने से इस भूमि का श्रवण (श्रमण) वेलगोल नाम सार्थक है। जिस विन्ध्यगिरि पर्वत पर बाहुवली की मूर्ति है, वह भूतल से ४७० फुट ऊँचाई पर है। पर्वत का घेरा दो फर्लांग के लगभग है। पर्वत पर चढ़ने के लिए लगभग ५०० सीढ़ियाँ पहाड़ पर ही उत्कीर्ण हैं। प्रवेशद्वार आकर्षक है। सामने ही वृद्धा गुल्लिकाअज्जी का चित्राम है। कहा जाता है कि महामात्य चामुण्डराय ने अभिमानपूर्वक प्रथम अभिषेक करने का संकल्प किया था किन्तु घड़ों दूध से अभिषेक करने पर भी दूध मूर्ति के मस्तक से नीचे नहीं आ पाया अर्थात् पूरे विम्ब का अभिषेक नहीं हो सका। लोगों को आश्चर्य हुआ। तभी एक वृद्धा ने वनफल की सूखी गुल्लिका के दूध से अभिषेक किया, दूध की धारा अजस्र-रूपेण प्रवाहित होती रही और पूरी मूर्ति का अभिषेक सम्पन्न हुआ। सर्वत्र जय-जयकार की ध्वनि होने लगी। चामुण्डराय के मान की शिला चकचूर हो गई। तभी से भावपूर्ण भक्ति दर्शाने के लिए

बुढ़िया का चित्राम वहां स्थापित है। अन्य पर्वतों की भांति दूर से रम्य और समीप से भीषण-ऐसा विषम रूप इस विन्ध्यगिरि में नहीं है। यह ढाल सहित चिकने और सुन्दर पाषाण वाला है।

पर्वत पर अनेक मनोज्ञ जिनमन्दिर बने हुए हैं जिनमें प्राचीन विशाल जिनविम्ब हैं। सुन्दर जलस्थान भी पर्वत पर ही है। पर्वत के चारों ओर सुगन्धित पुष्पों वाले वृक्ष शोभायमान हैं। मूर्ति के सामने छोटा सा सुन्दर मानस्तम्भ है जो दरवाजे के बाहर है। मन्दिर के भीतर वाहुवली भगवान की मूर्ति के चारों ओर चौवीस तीर्थङ्करों की विशाल-विशाल मूर्तियाँ एवं शासनदेवी पद्मावती और चक्रेश्वरी की भी एक-एक मूर्ति स्थापित है।

बाहुबली भगवान की मूर्ति के चरणों के समीप यक्ष-यक्षिणी की खड्गासन मूर्ति है जो अकृत्रिम जिनमन्दिरों के बिम्ब के समान श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाण्ह यक्ष एवं सनतकुमार यक्ष की प्रतीक प्रतिभासित होती है।

भगवान गोमटेश्वर के विशाल मनोज्ञ बिम्ब के चरणों में पहुँच कर दर्शक जव परम शान्त दिगम्बर जिन मुद्रा का अवलोकन करता है तब वह प्रभावित होकर सोचता है—"अहो! मैं दु:खदावानल से बच कर महान शान्तिस्थल में आ गया हूं।" वह, वचनों के आलम्बन विना ही, वीतराग दिगम्बर मुद्रा से सदुपदेश ग्रहण करता है—"हे भव्य जीवो! यदि तुम समीचीन शाश्वत सुख के इच्छुक हो तो इस मुद्रा को अंगीकार करो, इसे धारण किए विना संसार के दु:खों से छुटकारा नहीं हो सकता।"

सैकड़ों वर्ष प्राचीन यह मूर्ति दर्शक को नवनिर्मित सी प्रतीत होती है। मूर्ति पर किसी प्रकार का आच्छादन नहीं है जो सूर्य, चन्द्र, वर्षा आदि ऋतुओं को प्राकृतिक मुद्राधारी प्रभु के समादर, दर्शन अथवा अभिषेक में अन्तराय उपस्थित करे। अत: समस्त ऋतुएँ इस महान विम्ब का हृदय से स्वागत करती हैं।

सामान्यत: यह कहा जाता है कि अत्यन्त उन्नत आकृति में सौन्दर्य का दर्शन नहीं होता है और जो वस्तु अत्यन्त रमणीय होती है वह अत्यन्त उन्नत आकार वाली नहीं होती, परन्तु प्रभु का यह विशाल सुन्दर बिम्ब इस कथन की सत्यता पर प्रश्नचिह्न लगाता प्रतीत होता है। गोमटेश्वर की यह मूर्ति विश्व का ८वां आश्चर्य मानी जाती है। यह अनुपम सौन्दर्य से विभूपित है। शिल्पकार ने जैनधर्म की 'सम्पूर्ण त्याग' की भावना को अपनी छैनी-हथौड़ी से मूर्ति के अंग-अंग में भरा है। मूर्ति की पूर्ण नग्नता जैनधर्म के सर्वस्व त्याग की भावना का प्रतीक है। सरल और उन्नत मस्तक युक्त प्रतिमा का अंग विन्यास आत्मनिग्रह की सूचना देता है। अधर पल्लवों की दयापूर्ण मुद्रा से स्वानुभूत आनन्द और दीन-दुखियों के साथ सहानुभूति की भावना प्रकट होती है। मूर्ति के दर्शन से यह शीघ्र निर्णय नहीं हो पाता कि यह मूर्ति इसी पर्वत को काट कर वनाई गई है अथवा

अन्य स्थान से यहां लाई गई है। अन्यत्र कहीं भी ऐसी उन्नत और भव्य मूर्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। प्रसिद्धि है कि मूर्ति का निर्माण इतिहास प्रसिद्ध चामुण्डराय ने करवाया था। शिलालेख पर अंकित है "चामुण्डराय ने कलविले" (चामुण्डराय ने बनवाई) परन्तु ऐसी जनश्रुति है और परम्परागत कथानक से भी इस मूर्ति का काल इतिहासातीत बताया जाता है। इसे राम और रावण द्वारा भी पूजित बताया जाता है।

जिन बाहुबली स्वामी का यह बिम्ब है वे आदिनाथ भगवान के पराक्रमी पुत्र, सम्राट भरत चक्रवर्ती के अनुज और पोदनपुर के अनुशासक नरेश थे। उन्होंने मल्लयुद्ध, दृष्टियुद्ध और जलयुद्ध में अपने ज्येष्ठ भ्राता भरत चक्रवर्ती को पराजित किया था परन्तु क्षणिक एवं नश्वर राज्य प्राप्ति के लिए तथा भाई को मारने के लिए भरत के द्वारा चलाये गये सुदर्शनचक्र को देख कर आपने संसार, शरीर और विषय भोगों की निस्सारता का विचार किया और शीघ्र ही दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली। एक वर्ष तक कठोर तपश्चरण करने पर भी आपको केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हुई। कारण जान कर भरत चक्रवर्ती ने जाकर पूजा स्तुति की, तभी शीघ्र ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

आप एक वर्ष तक कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े रहे थे अतः आपके शरीर पर लताएं छा गईं, चरणों में सर्पों ने बाँबियाँ बना लीं, कई छोटे-बड़े जन्तुओं ने आपका आश्रय ले लिया। मूर्ति में भी मागधी लता, सर्प आदि का सद्भाव दिखाया गया है। निश्चय ही, प्रभु जगत्-बन्धु थे। इसीलिए तो सर्प आदि प्राणी उनसे स्नेह व्यक्त करते थे। उनकी मूर्ति में भी उनकी लोकोत्तर तपश्चर्या का भाव तथा आत्मजयीपना पूर्णतया अङ्कित है। मूर्ति की दर्शन-वन्दना हेतु देश विदेश के अनेकानेक यात्री आते हैं और नतमस्तक होकर अपनी विनयाञ्जलि प्रकट करते हैं।

मूर्ति के दर्शन से आत्मा में यह भावना उत्पन्न होती है कि अभय और कल्याण का सच्चामार्ग समस्त बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर ममता के जाल को छेद कर बाहुबली सी मुद्रा को स्वीकार करने में है।

पञ्चेन्द्रिय के विषयों, परिग्रह और हिंसा में आसक्ति विपत्ति का मार्ग है। अन्तर बाह्य परिग्रह का त्याग, अहिंसा, आत्मनिमग्नता एवं समता वृत्ति कल्याण का पथ है। गोमटेश्वर बाहुबली के दर्शनों से उत्पन्न आनन्द अवर्णनीय है।

रूपं ते निरुपाधि सुन्दरमिदं पश्यन् सहस्त्रेक्षणः,
प्रेक्षा कौतुककारी कोऽत्र भगवन् नोपेत्यवस्थान्तरं।
वाणीं गद्गदयन् वपुः पुलकयन् नेत्रद्वयं श्रावयन्,
मूर्धानं नमयन् करौ मुकलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन्॥

इस विशाल बिम्ब को देख कर वाणी गद्गद हो जाती है, आंखों से आनन्द की अश्रु-धारा वहने लगती है। मस्तक अपने आप नत हो जाता है। मन की प्रवृत्ति विलक्षण हो जाती है, दोनों कर-कमल मुकुलित हो जाते हैं।

निर्दोषध्वनिगर्जिते विलसते मुक्त्या तमोभास्वते
सम्मोहं हरतेऽर्हते विकसते ते प्रातिहार्यश्रिया।
सच्चित्ते भ्रमते पयोजसरिते ध्यानाम्बुदोद् विद्युते,
सौतन्देय नमो नमो मम विभो ज्ञानाम्बुधौ मज्जते ॥

कल्याणाम्बुधरो महोदयकरो रोगार्तिगर्त्तीहरो,
मोहोच्छेदकरो जरामर हरो विश्वासकीर्तीश्वरो।
भग्नानङ्गशरो हताहिपगरो विध्वस्तजन्मादरो,
ब्रह्माण्डैकदिवाकरो भवतु मे मित्रं प्रभो! ते गुणः ॥

जगत्प्रसिद्ध वीतरागी बाहुबली भगवान को मेरा शत शत वन्दन! शत शत वन्दन!!

गोमटेश्वर पहाड़ के सम्मुख एक चिकवेट (छोटा पहाड़) जिस पर प्राचीन विशाल-विशाल मनमोहक जिनविम्बों से युक्त लगभग २०-२५ जिनमन्दिर हैं। एक मानस्तम्भ भी है। सम्राट भरत की भी एक खण्डित मूर्ति है। एक गुफा में चन्द्रगुप्त राजा मुनि अवस्था में गुरु-भक्ति से प्रेरित होकर पर्वत पर उत्कीर्ण भद्रबाहु स्वामी के चरण चिह्न हैं। एक शिलालेख है—वारह वर्ष के दुर्भिक्ष के समय भद्रबाहु ने अपने समस्त शिष्यों को अन्यत्र भेज दिया। परन्तु चन्द्रगुप्त मुनि अपने गुरु के समीप ही रहे। भद्रबाहु ने इस पर्वत पर समाधिमरण किया। चन्द्रगुप्त वारह वर्षों तक यहीं रहे। निर्जन वन में देवों ने आ कर गुप्त रूप से चन्द्रगुप्त मुनिराज को आहार दिया।

यहाँ और भी विशाल मन्दिर हैं। परम पूज्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोमट्टसारादि सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना यहीं की थी।

आस-पास के स्थानों के अवलोकन से तो ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व में यहां पर दानी, ज्ञानी, श्रीमन्त महापुरुष हुए हैं जिन्होंने जैनधर्म की प्रभावना के लिए धर्म के महान्-महान् आयतनों का निर्माण किया था एवं काल-दोष से किन्हीं पापियों ने उनका विध्वंस भी किया है। इस समय भी स्थान-स्थान पर खण्डित जिनविम्व अत्याचारियों के विद्वेष को प्रकट करते हैं।

यहाँ बाहुवली के विशाल विम्व का सौन्दर्य तो अद्भुत है ही, पुनः श्रुतकेवली भद्रबाहु का समाधिस्थान और सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य द्वारा सिद्धान्त ग्रन्थ रचना का स्थान होने से यह क्षेत्र और भी पूजनीय हो गया है।

जिस समय आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी संघ सहित श्रवण बेलगोल पहुँची थी, उस अवसर पर चौदह वर्ष के बाद विक्रम संवत् २०२३ चैत्र वदी पंचमी के दिन महामस्तकाभिषेक सम्पन्न होने वाला था। उस शुभ अवसर पर लाखों यात्री सम्मिलित हुए थे। प्रातः स्मरणीय परम पूज्य १०८ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज संघ सहित विराजमान थे। १०८ आचार्यश्री देशभूषणजी महाराज, १०८ आचार्यश्री सन्मतिसागरजी महाराज आदि अनेक विद्वान् साधु सन्त वहां विराजमान थे। विदुषी आर्यिका १०५ श्री विजयमती माताजी आदि अनेक आर्यिकाएँ व क्षुल्लिकाएं थीं। महामस्तकाभिषेक के समय आकाश से विमान द्वारा पुष्पवृष्टि की गई। समस्त साधुगण प्राङ्गण में स्थित थे। उस समय का दृश्य आज भी स्मृति में आता है तो हृदय गद्गद हो जाता है। उस समय के आनन्द का वर्णन करना सम्भव नहीं। डेढ़ मास पर्यन्त यहां रहने का सुयोग मिला था। महान् गुरुओं के दर्शन, उनसे प्राप्त आशीर्वाद एवं वात्सल्य भाव से मन विभोर हो गया, ऐसे पुनीत अवसर जीवन में कम ही मिलते हैं।

फरवरी १९८१ में, इस प्रतिमा का सहस्राब्दी प्रतिष्ठापना महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक वड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ है। लाखों लोगों ने इस विम्ब के दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल किया है।

गोमटेश्वर दर्शन के बाद यहां से हासन होते हुए हलाई विड़ गए। जहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। एक मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ का ९ फुट ऊंचा खड्गासन विम्ब है। आस पास के क्षेत्र में एक विशाल जिनबिम्ब एवं छोटे-छोटे सैकड़ों जिनबिम्ब खण्डित पड़े हैं। एक विशाल वैष्णव मंदिर है जिसमें पत्थर में उत्कीर्ण अनेक चित्राम हैं। उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय यह दिगम्बर जैन मन्दिर था।

जैन मन्दिरों में कसौटी के पाषाण के स्तम्भ बने हुए हैं। उन स्तम्भों में किसी स्तम्भ में देखने से अपना विम्ब उलटा दिखता है, किसी में एक साथ चार विम्व दिखाई देते हैं; इस प्रकार अत्यन्त शोभनीय मन्दिरों की रचना है, आज करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी वैसा ठोस और स्थायी निर्माण अशक्य है। जैन समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी इस गौरवपूर्ण धरोहर की सब प्रकार से रक्षा करे।

यहां से हुबली होकर धारवाड़ पहुँचे। धारवाड़ में इतिहास प्रसिद्ध अनेक जैन मन्दिर हैं। यहां से बेलगांव गए—मार्ग में भी अनेक जिनालय हैं, दक्षिण प्रान्त में गांव-गांव में जैन मन्दिर हैं। उनकी शोभा वचनातीत है। बेलगांव में अनेक जैन मन्दिर हैं। एक मन्दिर किले में है; इस किले का घेरा लगभग एक मील का है परन्तु एक मन्दिर को छोड़ कर सारा स्थान यवनों के हाथ में है वहां से स्तवनिधि पहुँचे।

अतिशयक्षेत्र स्तवनिधि में एक विशाल मन्दिर और एक धर्मशाला है। मन्दिरजी में अनेक प्राचीन जिनबिम्ब हैं और नन्दीश्वर की मूर्ति है। प्राचीन मन्दिर में क्षेत्रपाल का एक विशाल स्थान है। क्षेत्रपाल का अतिशय है यहाँ हजारों यात्री प्रतिदिन आते हैं और पुण्य योग से अपनी मनोकामना की सफलता पर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। इस मन्दिर से कुछ दूरी पर पू० १०८ श्री समन्तभद्र महाराज द्वारा स्थापित गुरुकुल है। गुरुकुल में स्थित जिनमन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की पीले पाषाण की ५-६ फुट ऊंची खड्गासन प्रतिमा है जिसके दर्शन से स्वानुभव की प्राप्ति होती है।

"जय परम शान्त मुद्रा समेत। भविजन को निज अनुभूति हेत।"

यहां ब्रह्मदेव का भी स्थान है जिससे अनेक चमत्कार होते हैं। दो तीन मील दूरी पर नेपाणी नामक गांव है जो अनेक जिनमन्दिरों से सुशोभित है।

दक्षिण में गांव-गांव में विशाल-विशाल जिनमंदिर बने हैं। श्रावकों के भी घर विशेष हैं परन्तु अब शनैः शनैः श्रावक आचरणहीन होते जा रहे हैं। यहाँ से आर्यिका संघ कोल्हापुर आया। कोल्हापुर में भी बड़े श्रीमन्त श्रावकों के घर हैं, अनेक प्राचीन जिनमन्दिर हैं; श्री लक्ष्मीसेन महाराज का मठ है। इसमें बलूंदा निवासी कलकत्ता प्रवासी श्री पारसमलजी कासलीवाल द्वारा स्थापित भगवान आदिनाथ का २० फुट ऊंचा बिम्ब है। जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने वाले अनेक प्राचीन मन्दिर हैं; जिनबिम्ब हैं। अम्बिकादेवी का भी एक मन्दिर है जो अब अन्य मतावलम्बियों के हाथ में है। अम्बिकादेवी भगवान नेमिनाथ की शासनदेवी है। यह मन्दिर मूलतः जैनों का है; आज भी वहां जैन मूर्तियाँ विद्यमान हैं। शास्त्रों में उल्लेख है कि चामुण्डराय ने भगवान नेमिनाथ की नील-मणि की डेढ़ हाथ ऊंची प्रतिमा बनवाई थी। आज कहीं भी वह मूर्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। किंवदन्ती है कि वह मूर्ति इसी मन्दिर में है।

जैन आयतनों पर सदा से कुठाराघात होता चला आ रहा है। विरोधियों ने सदा से जैन आयतनों को नष्ट करने का दुष्प्रयास किया है। जैन गुरुओं पर घोर उपसर्ग किए हैं तथापि जैनधर्म अद्यावधि अक्षुण्ण रूप से चला आ रहा है। जैनधर्म 'वस्तु-स्वभाव' धर्म है। वस्तु का स्वभाव अनादि-निधन है। उसका कभी नाश नहीं हो सकता है। वहां से रुड़की आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ कुम्भोज बाहुबली पहुँचा। वहां पांच दिन रह कर संघ सांगली गया।

❖

१०

कुम्भोज बाहुबली से अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ

सांगली में जैन बोर्डिंग व विशाल मन्दिर है। मुनिभक्त अनेक श्रावकगण हैं। यहां से मिर्ज आदि अनेक ग्रामों के जैन मन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ सेड़वाल पहुँचा। यहां चारित्रचक्रवर्ती परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज द्वारा स्थापित जैनाश्रम है। आश्रम में अत्यन्त मनोज्ञ पद्मासन जिनबिम्ब हैं। सहस्रकूट चैत्यालय की रचना है; बाहुबली भगवान का बिम्ब है। गुरुकुल में अनेक बालक विद्याध्ययन करते हैं जिन्हें क्षुल्लक वासुपूज्य महाराज जैनधर्म का रहस्य बताते हैं। यहां से एक मील दूर सेड़वाल गाँव है। गांव में तीन विशाल मन्दिर हैं। यहां परम पू० १०८ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज को आचार्यपद प्रदान किया गया था। अनेक श्रद्धालु श्रावकों का वास्तव्य है।

सेड़वाल से दो मील दूरी पर कागवाड़ नामक ग्राम है। गांव में एक विशाल मन्दिर है। मन्दिर में स्थित तलघर आधुनिक तलघरों से विलक्षण है। मन्दिर के ऊपरी भाग में ब्रह्मा, विष्णु आदि की प्रतिमाएं हैं क्योंकि आज यह मन्दिर जैनों के हाथ में नहीं है। मन्दिर में नीचे ४० सीढ़ियां उतरने के बाद एक वेदी है जिसमें श्री पार्श्वनाथ भगवान की सफेद पाषाण की पद्मासन मनोज्ञ मूर्ति है, और भी सात आठ प्रतिमाएँ हैं। उससे चालीस सीढ़ियां और नीचे उतरने के बाद शान्तिनाथ भगवान की पांच छह फुट ऊँची अति मनोज्ञ पद्मासन प्रतिमा है। बहुत समय पहले यहां लिंगायतों ने उपद्रव किया था, जिनमन्दिरों एवं जिनप्रतिमाओं का विध्वंस किया था। जिस समय इस प्रतिमा को नष्ट करने लगे, श्रावकों ने आगे बढ़ कर इसकी रक्षा की, जिससे उस बिम्ब का खण्डन तो नहीं किया गया परन्तु यह मन्दिर लिंगायतों के अधिकार में चला गया, कतिपय जैन

श्रावक भी लिंगायत हो गए। आज भी वे ही लिंगायत जैन उस प्रतिमा की पूजन करते हैं। कहा जाता है कि इसी तलघर के समीप स्थित एक मार्ग से आगे जाकर तालाब आता है। उसी तालाब से जल लाकर अभिषेक क्रिया की जाती थी। आज यह रास्ता बन्द है। मन्दिर के तलघर में घोर अन्धकार है। अपरिचित मानव के लिए उसमें प्रवेश दुष्कर है। ऐसे भीषण स्थान पर पहुँच कर जब शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा का दर्शन करते हैं तब सारी वेदना समाप्त हो जाती है, अद्भुत शान्ति की प्राप्ति होती है। शान्तिनाथ भगवान का नाम सार्थक है। उस बिम्बदर्शन से ही जब परम शान्ति मिलती है तो साक्षात् जिनेन्द्र देव के दर्शन से कितनी शान्ति मिलती होगी, वह वचनातीत है।

स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्तिः,
शान्तेर्विधाता शरणं गतानां।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥

जिन्होंने रागद्वेष रूप अपने दोषों को शान्त कर शान्ति प्राप्त की है, जो शरण में आने वालों को शान्ति देने वाले हैं, वे शान्तिनाथ भगवान हमारे सांसारिक क्लेशों को शान्त करें। हे प्रभो! हम आपकी शरण में आए हैं। ऐसी परम शान्त मुद्रा से युक्त जिनबिम्ब की निकटता छोड़ कर दूर जाने, अन्यत्र जाने के भाव नहीं होते। दुःख की बात यह है कि ऐसे-ऐसे विशाल प्राचीन जिनमन्दिर अन्य मतावलम्बियों के हाथ में चले गए हैं। जैन उन्हें अपने अधिकार में नहीं ले सकते। दिगम्बर जैन भाइयों के पास धन की कमी नहीं है, कमी है तो यही कि धर्म और धर्मायतनों के प्रति उनका विशेष अनुराग नहीं है। इसीलिए तो हमारे आयतन नष्ट होते जाते हैं।

तदनन्तर, अनेक ग्रामस्थ जैन मन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ जयसिंहपुर पहुँचा। जयसिंहपुर के आस पास उदगाँव, अंकली, जैनपुरा आदि अनेक जैन ग्राम हैं जिनके मन्दिरों के शिखरों की ध्वजा दूर से ही दृष्टिगोचर होती है। एक गाँव के मंदिर के शिखर की ध्वजा दूसरे गाँव के मन्दिर से दीखती है। शास्त्रों में पढ़ते और सुनते हैं कि मुर्गा एक गाँव से दूसरे गांव में उड़ कर चला जाता है। यह कथन इन गाँवों को देखने से सार्थक सिद्ध होता है।

पच्चीसवाँ वर्षायोग :

इसी प्रान्त में भोज नामक ग्राम में परम पूज्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज का जन्म हुआ था। यहां उदगाँव आदि समीपस्थ ग्रामों में पूज्य आदिसागरजी व अन्य साधुओं के समाधि-स्थल हैं। इचलकरञ्जी, दानापुर आदि गाँवों के दर्शन कर पुनः कुम्भोज वाहुवली आए क्योंकि पूज्य १०८ श्री समन्तभद्रजी महाराज का विशेष आग्रह होने से विक्रम संवत् २०२४ का चातुर्मास कुम्भोज वाहुवली के विद्यापीठ आश्रम में किया था। कुम्भोज से दो मील दूर एक छोटा सा पर्वत है।

उस पर तीन प्राचीन मन्दिर हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस पर्वत पर एक महान तपस्वी ध्यान किया करते थे। उनके चरण-सान्निध्य में सिंह आकर बैठ जाया करता था परन्तु उनका घात नहीं करता था इसलिए सब लोग उन्हें बाहुबली कहते थे। वे इस पर्वत पर रहते थे इसलिए इस पर्वत का नाम बाहुबली और कुम्भोज ग्राम के निकट होने से कुम्भोज बाहुबली ख्यात है।

यहाँ प्रातः स्मरणीय चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री १०८ शान्तिसागर महाराज के आदेश एवं श्री समन्तभद्र मुनिराज की प्रेरणा से सोलापुरनिवासी श्री सेठ गुलाबचन्दजी चण्डक ने श्री बाहुबली भगवान की २८ फुट उन्नत प्रतिमा स्थापित करवाई है। अतः इस क्षेत्र का कुम्भोज बाहुबली नाम सर्वथा सार्थक है। यहां श्री सम्मेदाचल, गिरनार, पावापुर, चम्पापुर आदि सिद्धक्षेत्रों की कला पूर्ण रचना की गई है। नन्दीश्वर द्वीप की भी रम्य रचना है। सीमन्धर भगवान के चरण स्थापित हैं तथा शान्तिसागर भवन में आचार्यश्री शान्तिसागरजी के भी पावन चरण स्थापित हैं।

भगवान आदिनाथ का एक पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन पद्मासन जिनबिम्ब है। तथा नवीन पीले पाषाण का एक खड्गासन बिम्ब है जिसके दर्शनों से मन भावविभोर हो उठता है। यहां श्री समन्तभद्र महाराज की प्रेरणा से गुरुकुल भी चल रहा है जिसमें पाँच सौ विद्यार्थी विद्याध्ययन करते हैं। महाराजश्री वयोवृद्ध हैं तथापि निरन्तर ज्ञान-ध्यान-तप में लीन रहते हैं और अपनी चर्या का निर्दोष रीति से पालन करते हैं। प्रमाद, आलस्य कतई नहीं है उनमें।

श्री शान्तिसागरजी महाराज के शिष्य श्री वर्द्धमानसागरजी दीक्षित हैं। आप अत्यन्त शान्त प्रकृति के हैं। आपने बागेवाड़ी, स्तवनिधि, खुरई, ऐलोरा, कारंजा, सोलपुर आदि स्थानों में गुरुकुलों की स्थापना कराई है। इनमें सैकड़ों छात्र लौकिक ज्ञान के साथ-साथ धार्मिक अध्ययन भी करते हैं।

विक्रम संवत् २०२४ का चातुर्मास श्री समन्तभद्र महाराज एवं आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के शिष्य तपस्वी श्री सन्मतिसागरजी महाराज एवं नमिसागरजी महाराज के साथ में कुम्भोज बाहुबली में हुआ। इसी वर्षायोग में कुरड़वाड़ी निवासी ब्रह्मचारी श्री नेमीचन्दजी गांधी की सुपुत्री सोलापुरआश्रम वासिनी बाल विधवा सुश्री प्रभावतीजी ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामतीजी रखा गया। आप अत्यन्त शीतल स्वभाव की हैं तथा आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी के संघ में हैं।

कुम्भोज में विशेष धर्मप्रभावना हुई। समन्तभद्र महाराज की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी ही कम है। आपका परिश्रम सराहनीय है, ज्ञान के विस्तार-विकास एवं उसकी प्रभावना की आपको बड़ी लगन है। इसीलिए इस क्षेत्र की निरन्तर प्रगति हो रही है। यहां आसपास में जैन

लोगों के कई गाँव हैं और पहले कभी इस पर्वत पर साधुगण भी रहते थे। श्री समन्तभद्र महाराज की पढ़ाने की एवं समझाने की शैली बहुत सुन्दर है। आप संस्कृत प्राकृत के श्रेष्ठ विद्वान हैं।

२६ वाँ वर्षायोग :

यहाँ से विहार करके गाँव-गाँव में धर्म का मर्म बताते हुए आर्यिका संघ ने विक्रम संवत् २०२५ का वर्षायोग अकलूज में किया। यहाँ पर श्रावकों के १०० घर हैं। सबके सब स्त्री पुरुष अत्यन्त धार्मिक प्रकृति के हैं। दो मन्दिर शहर में हैं। एक नया मन्दिर बाहुबली स्वामी का बाहर में है जिसमें भगवान बाहुबली की नौ फुट ऊंची, खड्गासन प्रतिमा है। यह मन्दिर गंगारामजी का बनवाया हुआ है। उस मन्दिर में बारह मास तक रहे। यहां पर एक श्री शान्तिनाथ सोनाज है जिन्होंने तन-मन से संघ की वैयावृत्य की थी। उनकी सेवा-भक्ति सराहनीय है।[1]

२७ वाँ वर्षायोग :

अकलूज से नातेपुते, दहीगाँव, गये। दहीगाँव अतिशयक्षेत्र है। यहाँ विशाल जिन-मन्दिर है। अनेक रमणीय प्राचीन जिनबिम्ब हैं। तलघर में सीमन्धर आदि विद्यमान बीस तीर्थंकरों के बिम्ब हैं। नातेपुते में अत्यन्त धर्मनिष्ठ श्रावक हैं। यहाँ से लासूरण गए। गाँव छोटा है परन्तु यहां के श्रावक बहुत श्रद्धालु हैं, इन्होंने श्री धर्मसागर महाराज की बहुत सेवा की थी। यहां दो मास ठहर कर बारामती गए। वहां आठ मास रहे। बारामती के श्रावक बड़े मुनिभक्त हैं; यहां पर आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने चातुर्मास किया था। श्री चन्दूलाल और उनके भाई हीराचन्द ने बारामती से चार मील दूर पर स्थित अपने उद्यान में चातुर्मास कराया था। वहीं एक चैत्यालय स्थापित किया था जो आज भी विद्यमान है; उसमें पार्श्वनाथ भगवान का बिम्ब प्रतिष्ठित है। बारामती में एक जिनमन्दिर है। विक्रम संवत् २०२६ का वर्षायोग आर्यिका-संघ ने बारामती में रामचन्द्र बोर्डिंग में किया जो नगर से बाहर है।

---

१. यहां आर्यिका सुपार्श्वमतीजी गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गई थीं। माताजी की बीमारी के समाचार ज्ञात कर आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज २०० मील का चक्कर काट कर अकलूज पहुँचे थे। आचार्यश्री का शिष्यों के प्रति अनुपम वात्सल्य भाव था। वे यंत्र-मंत्र-तंत्र-आयुर्वेद के भी महान् ज्ञाता थे। आचार्यश्री ने माताजी के सम्बन्ध में श्रावकों से कहा था कि यह समाज की अपूर्व निधि है। समाज का इससे महान् उपकार होगा, जैनधर्म और संस्कृति का प्रचार प्रसार होगा इसके द्वारा।

माताजी ने असाता के उदय को बड़ी समता से सहन किया था। जीवन की आशा भी नहीं रही थी तब भी आपने धैर्य नहीं छोड़ा। श्री शान्तिनाथ सोनाज ने रात दिन सेवा-सुश्रूषा करके बहुत पुण्योपार्जन किया। —सं०

बारामती से फलटण आए। यहां चार विशाल जिनमन्दिर हैं। आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने यहाँ दो-तीन चातुर्मास किए थे। उन गुरुदेव के तप एवं उपदेश से प्रेरणा पाकर यहां अनेक लोगों ने व्रत धारण किए हैं। कितने ही तो दूसरी प्रतिमाधारी हैं और कितने ही सप्तम प्रतिमाधारी हैं। आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने अथक परिश्रम कर जिनवाणी को जो संरक्षण प्रदान किया है, वह जैन समाज के लिए अत्यन्त गौरव की बात है। जो षट् खण्डागम ताड़पत्र पर लिखित थे; जिनके दर्शन भी अत्यन्त दुर्लभ थे, उन ग्रन्थों को आचार्यश्री ने ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करवा कर श्रुतसंरक्षण का अभूतपूर्व कार्य किया, आचार्यश्री का यह उपकार वचनातीत है। ये ताम्रपत्र फलटण के जैन-मन्दिर में विराजमान हैं। इस कारण इस नगर का महत्त्व बढ़ गया है। कई वर्षों तक इन ग्रन्थों का दर्शन करने के लिए मूलबद्री जाना होता था और वहां पर कुछ भेंट दे कर ही इनके दर्शन किए जा सकते थे अन्यथा नहीं। आज आचार्यश्री के परिश्रम से उन ग्रन्थों का दर्शन और पठन भी सुलभ हो गया है। ग्रन्थों के निमित्त से फलटण भी दर्शनीय हो गया है।

फलटण से दहीगांव, निमगांव, इन्दापुर, टाकली, पिप्पलगांव, कुरुड़वाड़ी, सैन्ध आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए श्री कुलभूषण-देशभूषण के निर्वाण से पवित्र स्थान कुन्थलगिरि पहुँचे। कुन्थलगिरि के दर्शन वन्दन का यह दूसरा अवसर था। यहां से बीड़गह्वराई, अमृतसर, जालना आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन कर चार ठाणा पहुँचे। यहां जैसवाल जाति के श्रावक हैं जिन्होंने अपना आचार-विचार छोड़ दिया है। यहां एक प्राचीन खण्डित जिनालय है। एक खण्डित मांनस्तम्भ भी है जिसके पत्थर की आवाज आश्चर्यकारी है। मन्दिर में तलघर है, वह कितना नीचा है, यह जानना अशक्य है। यहां दो जिनमन्दिर हैं किसी समय यह अतिशय क्षेत्र था। यहां से जितूर गए।

जितूर में बघेरवाल जाति के श्रावकों के ३०-४० घर हैं। किसी समय यहाँ जैनों के हजारों घर और अनेक जैन मन्दिर थे मुस्लिम शासन काल में जैन मन्दिर ध्वंस कर दिए गए, आज भी वहां अनेक बिम्ब खण्डित पड़े हैं। कहते हैं—एक मन्दिर को ध्वंस करने के लिए अत्याचारी उसमें घुसना चाहते थे परन्तु उसमें घुस नहीं सके। ऐसा ही एक मन्दिर और है। कुल दो मन्दिर सुरक्षित रहे शेष सब नष्ट कर दिए गए—खण्डहर और खण्डित बिम्ब आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। मन्दिरों के नीचे बड़े-बड़े तलघर हैं। मुस्लिमशासनकाल में कुछ जिनबिम्बों की रक्षा इन तलघरों में हो सकी थी। गाँव से दो मील दूर पर एक छोटा पहाड़ है। उस पर श्री नेमिनाथ भगवान का विशाल मन्दिर है जिसका प्रवेशद्वार बहुत छोटा है। सात जगहों पर विशाल-विशाल प्रतिमाएँ विराजमान हैं। सात-फुट ऊंची श्री नेमिनाथ भगवान की पद्मासन मूर्ति है। एक अन्य स्थान पर भगवान पार्श्वनाथ की भी सात फुट ऊंची पद्मासन मूर्ति है। मूर्ति पुरातन होते हुए भी ऐसी प्रतीत होती है जैसे आज ही बनी हो। एक स्थान पर भगवान आदिनाथ की चतुर्मुखी प्रतिमा है। यह

मन्दिर पर्वत को फोड़ कर गुफा में बनाया हुआ है। मन्दिर का द्वार बहुत छोटा है। ऐसा जानना अशक्य है कि यह प्रतिमा इस छोटे से द्वार से कैसे लाई गई होगी। मन्दिर अत्यन्त भव्य है। मुस्लिम शासनकाल में इसकी रक्षा हेतु द्वार पर एक शिला खड़ी कर दी गई थी जिससे अत्याचारियों का प्रवेश ही नहीं हो सका था।। पूर्व में श्री पार्श्वनाथ भगवान का बिम्ब एक अंगुल मोटे लम्बे पत्थर के ऊपर था और पूरा विम्व आधार रहित था। कुछ लोगों ने सोचा कि पूरा विम्व आधार रहित रह जाएगा अतः उस एक अंगुल पत्थर को भी निकाल लिया जिससे बिम्ब नीचे जमीन पर लग गया। पर्वत पर एक धर्मशाला है। मन्दिर में छहों ऋतुओं में से किसी का भी प्रकोप नहीं होता। ग्रीष्मकाल में यहां का वातावरण शीतल रहता है और शीतकाल में उष्ण। धन्य है उन महानुभावों की सूझ-बूझ जिन्होंने विशाल पर्वत खोदकर ऐसा रम्य जिनालय बनाया है।

इस पर्वत के सामने एक पर्वत और है। उस पर भी परकोटा बना है। तत्रस्थ महानुभाव कहते हैं कि कभी यहां पर भी मन्दिर था, वर्तमान में तो कुछ भी नहीं है।

जिंतूर से अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। १६-१७ मील दूर पर एक पाठशाला में ठहरे। गर्मी का मौसम था। अत्युष्ण हवा अर्थात् लू चल रही थी। पाठशाला के भीतर बैठने को स्थान नहीं था, बाहर बैठना सम्भव नहीं था। सामने ही एक मकान दृष्टिगोचर हुआ। बाहर से ऐसा प्रतीत होता था कि यह जैन मन्दिर है। मन्दिर पर उत्तुंग शिखर था और इसका निर्माण पहाड़ के बड़े-बड़े पत्थरों से ही हुआ था। यहां जैन श्रावकों के घर नहीं हैं। यह जान कर प्रश्न उपस्थित हुआ कि तब जैनमन्दिर कहाँ से आ सकता है? किसी ने बताया कि यह हिमाड़पन्थी लोगों का मन्दिर है। यह पूछने पर कि क्या हम लोग वहां कुछ देर ठहर सकते हैं? उत्तर मिला कि हां आप ठहर सकते हैं, उसमें दरवाजा बन्द नहीं है; किसी के लिए भी रोक-टोक नहीं है। आतप काल के दो घण्टे वहीं बिताना ठीक रहेगा यह सोच कर उस मन्दिर में चले गये परन्तु मन्दिर का अवलोकन कर हमारे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही।

यद्यपि वर्तमान में मन्दिर में महादेव की पिण्डी स्थापित है परन्तु वहां एक मानस्तम्भ गिरा पड़ा है। उसमें जिनबिम्व हैं। कपाटरहित दरवाजे की भित्ति पर ऐसे यक्ष स्थापित हैं जिनके मस्तकों पर जिनविम्व हैं। मन्दिर में चार स्तम्भ हैं, उन पर जिनविम्व खुदे हैं; शिखर पर जिनेन्द्र देव की मूर्ति विराजमान है; जिधर दृष्टि जाती थी उधर ही जिनविम्व दृष्टिगोचर होते थे। गर्भगृह में जाकर देखा तो जैसे जैनबद्री में लम्बी शिला पर भगवान विराजमान हैं उसी प्रकार यहां एक वेदी बनी है जिसमें अभिषेक का पानी निकालने के लिए दीवाल से मार्ग बना है। बाहर गोमुख आकार का नाला बना है। कितना विशाल और भव्य मन्दिर! वर्तमान में केवल उसके पत्थर लाखों रुपयों के हैं। वहाँ एक अग्रवाल परिवार रहता है; उसने बताया—यहाँ आस-पास के ग्रामों में

ऐसे सैकड़ों मन्दिर हैं जिनमें जिनबिम्ब हैं; विशाल-विशाल चरण स्थापित हैं। एक-एक गांव में दो-दो, तीन-तीन मन्दिर हैं और सब हिमाड़पन्थियों के हाथों में हैं। यह हृदयविदारक वृत्तान्त सुन कर इतना दुःख हुआ कि कुछ कहा नहीं जा सकता परन्तु दुःख होने से क्या हो ? कर तो कुछ सकते नहीं...... वहीं बैठ-बैठे दक्षिण के कागवाड़ के मन्दिर की स्मृति आने लगी। राजस्थान में भी पुष्कर में दत्तात्रेय (भगवान नेमिनाथ) के चरण हैं। नन्दीश्वर की मूर्ति है। श्री नेमिनाथ भगवान की वर यात्रा (बरात) के समान रचना बनी है, पर्वत पर सरस्वती की मूर्ति है परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि अब इन पर हमारा अधिकार नहीं।

यों न जाने कितनी अमूल्य निधियां हमारे जैन समाज ने खो दी हैं। कुछ पर लिंगायतों का अधिकार हो गया है, तो कुछ यवनों ने दबा ली हैं। कुछ हिमाड़पन्थियों के हाथों में चली गई हैं तो कुछ पर श्वेताम्बर समाज ने जबरन कब्जा कर लिया है। परन्तु दिगम्बर जैन समाज कुछ नहीं कर सकता। बद्रीनारायण में भी श्री आदिनाथ भगवान की परम शान्त मूर्ति है जो पर्वत पर मुख्य मन्दिर में विराजमान है। देवघर (वैद्यनाथ धाम) में भी चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति रही थी। जैन आयतनों के विध्वंस की कथा सुनते ही सारा शरीर और मन कांप उठता है; उस जीर्णशीर्ण खण्डित मन्दिर को देखकर आँखों से दो बूंद अश्रु निकल कर रह गई......क्या कर सकते हैं कोई उपाय नहीं।

आज नये मन्दिर बनाने के साधन हमारे पास हैं परन्तु प्राचीन मन्दिरों एवं शास्त्रों की सुरक्षा के साधन नहीं, यह उपेक्षा ठीक नहीं। जैन समाज को इस दिशा में विचार कर कोई महत्त्वपूर्ण कदम अवश्य उठाने चाहिए अन्यथा 'इतिहास की पुनरावृत्ति' फिर-फिर होती रहेगी और इतर समाज की इस कुप्रवृत्ति पर नियंत्रण पाना कठिन होगा।

यहां से पानगाँव, हरियाल आदि गाँवों के जिनालयों के दर्शन करते हुए अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ (शिवपुरी) पहुँचे। यहां प्राचीन और विशाल तीन जिनमन्दिर हैं। मुख्य मन्दिर श्री पार्श्वनाथ भगवान का है जिसमें तीन घण्टे श्वेताम्बर बन्धु और तीन घण्टे दिगम्बर बन्धु अपनी-अपनी आम्नाय के अनुसार बारी-बारी से प्रक्षाल-पूजन करते हैं।

❖

११

पावाए णिव्वुदो महावीरो

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ से विहार कर कारञ्जा पहुँचे। साधु जीवन भी बहते पानी की तरह निरन्तर गमनशील रहता है; जिस तरह पानी एक स्थान पर रुकने से निर्मल-स्वच्छ नहीं रहता उसी तरह साधु भी निरन्तर एक स्थान पर रहे तो मोह, राग द्वेष से आविष्ट हुए विना नहीं रह पाता अतः चातुर्मास (वर्षायोग) के अतिरिक्त वह सदा भ्रमणशील रहता है इसीलिए तो साधु को 'चल तीर्थ' कहा जाता है।

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागमः ।।

२८ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०२७ का वर्षायोग कारंजा में किया। यहां पर विशाल-विशाल तीन मन्दिर हैं। गुरुकुल (आश्रम) में भी अतिमनोज्ञ एवं उन्नत मन्दिर है जिसमें बाहुवली भगवान की खड्गासन सुन्दर प्रतिमा है। तलघर में मणियों की अनेक मूर्तियां हैं। प्रसिद्ध है कि ये मूर्तियां श्री समन्त महाराज गृहस्थावस्था में मान्यखेट से लाये थे। जैन समाज के सौ घर हैं; अधिकांश घरों में जिन-चैत्यालय हैं। श्रावक-श्राविकाएँ सुशिक्षित हैं, धर्म में उनकी प्रगाढ़ रुचि है। काष्ठासंघी जिनमन्दिर विशेषकर काष्ठनिर्मित हैं। शिल्पी द्वारा काष्ठ में निर्मित भगवान नेमिनाथ का वैराग्य एवं विवाह के समय वारात की शोभा यात्रा, हाथी-घोड़े आदि के चित्राम अतीव शोभनीय हैं। इस मन्दिर के तलघर में वड़े-वड़े जिन विम्व हैं। स्फटिक, पुखराज, मूंगा, गौमेद, वैडूर्य आदि अनेक प्रकार के रत्नों की मूर्तियां ऊपरी भाग में विराजमान हैं। एक सेनगण मन्दिर है। इसमें स्थित श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन है। गुरुकुल में लगभग पांच सौ छात्र ज्ञानार्जन करते हैं।

कारञ्जा से अञ्जनगांव आए। यहां से मुक्तागिरि पहुँचे; वहां लगभग पन्द्रह दिन रुके। पूज्य बड़े माताजी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी की अपनी दीक्षा के बाद मुक्तागिरि की यह तीसरी यात्रा थी। सिद्धक्षेत्रों के दर्शन-वन्दन से जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वह वचनातीत है। मुक्तागिरि से भातकुली पहुँचे।

भातकुली में एक प्राचीन मन्दिर है। श्री आदिनाथ भगवान का प्राचीन मनोज्ञ बिम्ब है। किंवदन्ती है कि पहले यहाँ मन्दिरों की संख्या अधिक थी तथा अनेक चमत्कारी घटनायें घटती थीं। यहां आकर निवास करने वाले जीवों के भयानक से भयानक रोग भी दूर हुए हैं। यहां पर यदि कोई ग्वाला दूध में पानी मिला कर बेचता तो उसकी गाय के स्तनों में खून हो जाता, आदि-आदि। भगवान आदिनाथ का यह बिम्ब अत्यन्त प्रभावशाली है, इसके सामने से उठने की भावना नहीं होती। बिम्ब पर अंकित लेख अस्पष्ट है पढ़ने में नहीं आता।

भातकुली से अमरावती गये। अमरावती में भी जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने वाले तीन-चार मन्दिर हैं। यहां से कुंडाल के जिनमन्दिर के दर्शन करते हुए वाजार गांव पहुँचे। यहां पर नौ शिखरों वाला एक विशाल मन्दिर है। सभी वेदियों में विशाल-विशाल प्राचीन मनोज्ञ बिम्ब हैं। परन्तु लिखते हुए खेद होता है कि वहां श्रावकों का एक भी घर नहीं है; पूजा करने वाला पुजारी भी नहीं है। मन्दिरजी की देख-रेख करने वाला कोई नहीं है क्योंकि यह जंगल में स्थित है। कहते हैं कि पहले यहां श्रावकों के भी घर थे परन्तु इस समय तो वहां जैनों का एक भी घर-परिवार नहीं है। उस विशाल मन्दिर के दर्शन कर मन आनन्द से रोमाञ्चित हो उठा। धन्य है जिन महानुभावों ने अपनी चञ्चला लक्ष्मी का सदुपयोग कर जैनधर्म की प्रभावना हेतु इतने सुन्दर-सुन्दर जिन-आयतनों का निर्माण करवाया और अपने जन्म को इस प्रकार सार्थक किया। उस मन्दिर की वर्तमान स्थिति देख कर हृदय में विचार आने लगा—"अहो! आज जैन समाज में कितना घोर अन्धकार व्याप्त है। उसमें जैनधर्म और जैन आयतनों के प्रति अनुराग नहीं है; जैन विद्वानों के प्रति सहानुभूति की भावना नहीं है, शायद इसीलिए प्राचीन जैनायतनों का और जैन विद्वानों का ह्रास होता जा रहा है।

वाजारगांव से नागपुर आए। नागपुर प्राचीन शहर है; बहुत संख्या में जैन समाज है यहां। खण्डेलवाल, अग्रवाल, परवार, श्वेतवाल, तथा बड़ानेरा, नरसिंहपुरा, बघेरवाल, हुमच, चतुर्थ, पञ्चम आदि जातियों के श्रावक रहते हैं। ९-१० विशाल जिनमन्दिर हैं।

इतवारी पैठ में स्थित विशालमन्दिर के तलघर में परम वीतराग मुद्रा समन्वित श्री शान्तिनाथ भगवान का अतिशययुक्त बिम्ब है। काष्ठासंघी मन्दिर भी बहुत प्राचीन है। उसके तलघर में अनेक प्राचीन बिम्ब विद्यमान हैं। परवार जाति के श्रावकों द्वारा निर्मापित विशाल जैन-मंदिर में नौ वेदियां हैं। बाहुबली भगवान की विशाल मूर्ति है, वहां कितने ही अतिशय भी दृष्टिगोचर

होते हैं। नागपुर शहर में संघ लगभग डेढ़ मास रहा। दो बार सार्वजनिक सभाओं में प्रवचन हुए। एक दिन रथयात्रा भी निकाली गई, उस दिन नवयुवकों का उत्साह अत्यन्त प्रशंसनीय था। सारा मार्ग पुष्पवृष्टि से व्याप्त हो गया था; लगभग बीस हजार जनता उस समय उपस्थित थी। केशलोच समारोह भी विशेष प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ। साध्वीसंघ के क्रिया कलापों से महती धर्मप्रभावना हुई। नागपुर से प्रस्थान करते समय दो तीन मील दूर तक हजारों स्त्री पुरुष साथ में आए थे।[1]

नागपुर से विहार करते हुए

नागपुर से बारह मील दूरी पर कामटी ग्राम है। यहां के विशाल प्राचीन जिनमन्दिर में पत्थर पर खुदाई का काम दर्शनीय है। मनोज्ञ जिनबिम्ब हैं। तलघर में भगवान आदिनाथ का विशाल बिम्ब है। धर्मायतन होते हुए भी यहां पर श्रावकों का विशेष सद्भाव नहीं है।

नागपुर में सार्वजनिक भाषण करते हुए

इस प्रान्त में तथा दक्षिण में भी जितने मन्दिर हैं, वे सबके सब प्राचीन एवं विशाल हैं, इससे अनुमान लगता है कि कभी यहाँ दिगम्बर जैन श्रावकों के बहुत घर थे, जो किसी कारण से कालान्तर में धर्मच्युत हो गये। इसका उदाहरण यह है कि वर्तमान में नागपुर में कलालों के सहस्रों घर हैं, वे अपने को जैन कलाल कहते हैं परन्तु जैनधर्म का आचार विचार नहीं पालते, न कभी जिनमन्दिर में प्रवेश करते हैं; शराब का धन्धा करते हैं।

कामटी से विहार कर रामटेक पहुँचे जो कामटी से २७ मील दूर है। रामटेक अतिशय क्षेत्र है। यहां शान्तिनाथ भगवान का प्राचीन, मनोज्ञ, विशाल, खड्गासन बिम्ब है जिसके दर्शनों से

---

१. दैनिक समाचार पत्रों में आपके प्रवचन आदि के समाचार प्रकाशित होते थे अतः आस-पास के स्थानों से अनेक स्त्री-पुरुष अपने-अपने साधनों द्वारा हजारों की संख्या में प्रवचन श्रवण हेतु पहुँचते थे। प्रबुद्ध श्रोता आर्यिकाओं से अपनी शंकाओं का समाधान भी प्राप्त करते थे। समय-समय पर आकाशवाणी के नागपुर केन्द्र से समाचार एवं प्रवचनों का सार भी प्रसारित होता था।

—सम्पादक

परम शान्ति की प्राप्ति होती है। इस मन्दिर में नौ वेदियां हैं, शिखर और परकोटा भी क्रमशः उन्नत और विशाल हैं।

यहां से सिवनी गये। सिवनी में दो मन्दिर हैं। एक मन्दिर बहुत विशाल है; इसमें पांच वेदियां हैं। मन्दिर के उपरिभाग में श्री भगवान बाहुवली का खड्गासन विम्ब है, नीचे वेदी में भगवान आदिनाथ एवं भगवान पार्श्वनाथ के बहुत सुन्दर प्रभावशाली विम्ब हैं।

सिवनी से १६ मील दूर पर स्थित छपारा पहुँचे। यहां के प्राचीन मन्दिरजी में भगवान महावीर का अतिशययुक्त बिम्ब है। जो मानव अपनी भावना लेकर आता है, उसकी भावना पूर्ण होती है। यहां से १५ मील दूर पर लखनादोन पहुँचे। यहां के जिन मन्दिरजी में भगवान महावीर के प्राचीन विम्ब के दर्शनों से अपने नेत्र तृप्त कर धूमाँ गाँव के मन्दिर के दर्शन करते हुए वर्गी पहुँचे। उस समय वहाँ पर पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव था।

वर्गी से २० मील दूर मढ़ैयाजी है। यहाँ एक छोटे से पर्वत पर वहुत से मन्दिर हैं। इनकी शोभा अद्भुत है। पर्वत पर अलग-अलग वेदी में २४ तीर्थङ्करों के २४ जिनविम्व हैं। भगवान वाहुवली की विशाल खड्गासन मूर्ति है। श्री आदिनाथ भगवान और श्री महावीर भगवान के मन्दिर भी काफी वड़े हैं। चार प्राचीन मन्दिर हैं। समवसरण की रचना है। श्री सम्मेदशिखर तीर्थराज की रचना होने की तैयारी है। पर्वत से नीचे मन्दिर, गुरुकुल एवं धर्मशाला हैं। दरवाजे पर चक्की पीसती हुई एक बुढ़िया की मूर्ति बनी है। किंवदन्ती है कि एक पीसने वाली स्त्री ने अपनी कमाई के पैसे बचाकर यह मन्दिर बनवाया था, उस विशाल एवं भव्य मन्दिर के दर्शन कर चित्त अतिशय आह्लाद को प्राप्त होता है। जबलपुर यहां से चार मील दूर पर है।

जबलपुर 'जैनियों की काशी' कहा जाता है। प्राचीन नगर है लगभग तीन-चार हजार घर हैं जैनियों के, जिनमें विशेष परवार जातीय हैं। ६-१० प्राचीन और विशाल जिनमन्दिर हैं, जो इस बात के सूचक हैं कि यहां पुरा काल में जैनों की संख्या थी। 'हनुमान ताल' के पास स्थित विशाल जिनमन्दिर में २४ वेदियाँ हैं। भगवान महावीर का यक्ष यक्षिणी एवं अष्ट प्रातिहार्य सहित प्राचीन बिम्ब है जिसके दर्शनों से हृदय अत्यन्त आनन्दित होता है। अन्य भी जितने मन्दिर हैं सभी अत्यन्त प्राचीन एवं विशाल हैं। सबमें अद्वितीय सौन्दर्य के दर्शन होते हैं।

जबलपुर से साध्वीसंघ पनागर पहुँचा। यहां तीन मंदिर हैं। एक मंदिरजी में श्री शांतिनाथ भगवान का प्राचीन विशाल बिम्ब है। कितनी ही वेदियों में प्राचीन विशाल विम्ब स्थापित हैं।

यहां से मार्ग में अनेक गाँवों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ कटनी पहुँचा। कटनी अमरनाथ होते हुए सतना आए। सतना में श्री शान्तिनाथ भगवान का विशाल बिम्ब है। सतना से रीमा गये।

रीमा में सतना, पनागर के समान श्री शान्तिनाथ भगवान का एक खड्गासन बिम्ब है। यद्यपि इसका शिलालेख जीर्णशीर्ण हो जाने से पढ़ने में नहीं आता, तथापि अनुमान से ऐसा प्रतीत होता है कि सतना, पन्नागू और रीमा इन तीनों गाँवों की प्रतिमाएँ समकालीन हैं। रीमा से मिर्जापुर होते हुए बनारस पहुँचे।

जिस प्रकार अतिशय विशेष के कारण कोई क्षेत्र 'अतिशय क्षेत्र' बन जाता है तथा दर्शनीय और पूजनीय हो जाता है, उसी प्रकार तीर्थङ्करों के गर्भ, जन्म, तपश्चर्या एवं केवलज्ञानोत्पत्ति के स्थान भी दर्शनीय मंगलक्षेत्र बन जाते हैं। काशीनगरी भगवान सुपार्श्वनाथ और भगवान पार्श्वनाथ के जन्म से पवित्र होने के कारण साधकों के लिए पुण्यधाम बन गई है। पं० बनारसीदासजी ने बनारस की प्रशंसा करते हुए अपने जीवनचरित्र में लिखा है—

पाणि जुगल पुट शीश धरि, मानि अपन पौ दास।
आनि भगति चित्त जानि, प्रभु बन्दौं पारसनाथ॥
गंगा मांहि आइ धँसि, द्वै नदी वरुना असी,
बीच बसी बनारसी नगरी बखानी है।
कसिवार देस मध्य गाँऊ तातैं काशी नाऊं,
श्री सुपारस पास की जनमभूमि मानी है॥
तहाँ दुहु जिन शिवमारग प्रकट कीनौ,
तब सेती शिवपुरी, जगत में जानी है।
ऐसी विधि नाम थपे, नगरी बनारसी के,
और भाँति कहैं सो तो मिथ्यामत वानी है॥

महाकवि का 'बनारस' नाम पर बड़ा आदर भाव प्रतीत होता है; उस काशी की महिमा का क्या वर्णन किया जाय।

काशी से आरा होते हुए पटना पहुँचे। यहाँ पांच-छह प्राचीन मन्दिर हैं। सुदर्शन सेठ का निर्वाणक्षेत्र है यह भूमि। गुलजार बाग में सेठ सुदर्शन के चरण चिह्न हैं। यहां से विहार पहुँचे। तीर्थङ्करों ने इस देश में विहार किया था, इसलिए इस क्षेत्र (प्रान्त) को 'विहार' कहते हैं। महावीर प्रभु के जन्म से पवित्र कुण्डलपुर (कुण्डग्राम) इसी प्रान्त में है, उसकी शोभा अद्भुत है। यहाँ भगवान महावीर की अतिशय शोभा सम्पन्न मनोज्ञ मूर्ति है। यहां के दर्शन वन्दनादि करके राजगृही पहुँचे।

जैन संस्कृति के विकास और संवर्द्धन की पुनीत पुण्यभूमि के रूप में राजगृही नगरी का महत्त्व सर्वोपरि है। भगवान वासुपूज्य के अतिरिक्त सभी २३ तीर्थङ्करों ने कैवल्य लाभ के उपरान्त

अपनी धार्मिक-देशना से राजगृही को पवित्र किया था। वीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान के जन्म से यह पञ्चशैलपुर—राजगिरि पवित्र है। 'हरिवंश पुराण' में लिखा है—"पञ्चशैलपुरं पूतं मुनिसुव्रतजन्मना।"

भगवान महावीर प्रभु की धर्मसभा के प्रधान पुरुषरत्न सम्राट् बिम्बसार श्रेणिक की निवासभूमि राजधानी यही राजगृही थी। इसके पूर्व में चतुष्कोण ऋषिशैल, दक्षिण में वैभार और नैऋत्यदिशा में विपुलाचल पर्वत है। पश्चिम, वायव्य और उत्तर दिशा में छिन्न नामका पर्वत है। ईशान दिशा में पाण्डु पर्वत है। 'हरिवंशपुराण' से विदित होता है कि भगवान महावीर ने जृम्भिक ग्राम की ऋजुकूला नदी के तीर पर बैसाख सुदी १० को केवलज्ञान प्राप्त किया था। गणधर का योग न मिलने से ६६ दिन तक प्रभु का मौन विहार हुआ और तब वे राजगृहनगर पधारे।

आचार्य जिनसेन ने राजगृही को 'जगत्ख्यातम्' विशेषण देकर उस पुरी की लोकप्रसिद्धि को प्रकट किया है। अनन्तर, भगवान ने जिस प्रकार सूर्य विश्व के प्रबोधन निमित्त उदयाचल को प्राप्त होता है उसी प्रकार अपरिमित श्रीसम्पन्न विपुलाचल शैल पर आरोहण किया। हरिवंशपुराण-कार ने लिखा है—

षट्षष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन्प्रभुः।
आजगाम जगत्ख्यातं, जिनो राजगृहं पुरं॥
आरुरोह गिरिं तत्र विपुलं विपुलश्रियं।
प्रबोधार्थं स लोकानां भानु भानूदयं यथा॥

६६ दिन तक मौन से विहार करते हुए भगवान महावीर जगत्विख्यात राजगृही नगरी में आए। जिस प्रकार प्रबुद्ध करने के लिए उदयाचल पर सूर्य आरूढ़ होता है, उसी प्रकार भव्यजीवों को प्रवोध प्रदान करने हेतु विपुल शोभासम्पन्न विपुलाचल पर वीरप्रभु आरूढ़ हुए।

भगवान की दिव्यध्वनि के प्रकाशन हेतु योग्य गणधरादि की प्राप्ति होने पर विपुलाचल को ही सर्वप्रथम यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि ६६ दिन के बाद श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के प्रभात में—जब सूर्योदय हो रहा था और अभिजित् नक्षत्र भी उदित था—भगवान के द्वारा धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई। 'तिलोयपण्णत्ति' में आचार्य यतिवृषभ ने श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को युग का आरम्भ होना बताया है—

वासस्स पढममासे सावण णामम्मि बहुल पडवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्तो धम्मतित्थस्स॥
सावणबहुले पाडिवरुद्द मुहुत्ते सुहोदये रविणो।
अभिजिस्स पढमजोए, जुगस्स आदी इमस्य पुढं॥

संसार के महान् ज्ञानी सन्त जन और पुण्यात्मा नर-नारियों के आवागमन से राजगृही का भाग्य चमक उठा। अनेकान्त विद्या के सूर्य ने राजगृही के विपुलाचल के शिखर से मिथ्यात्व अन्धकार निवारिणी किरणें विकीर्ण कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया। अतः राजगृही और विपुलाचल के दर्शन आज भी साधक के हृदय में भगवान महावीर के समवशरण की स्मृति जागृत कर देते हैं। राजगृही का नाम साधकों को स्मरण कराता है उस अतीत की, आध्यात्मिक जागरण सम्पन्न उस काल की जब वनमाली ने आकर मगध सम्राट् श्रेणिक को यह श्रुति सुखद समाचार सुनाया था कि श्री वीर प्रभु विपुलाचल पर पधारे हैं।

वनमाली की वार्ता सुन कर श्रेणिक का सारा शरीर रोमांचित हो उठा, हृदय आनन्द विभोर हो गया। वे तत्काल उठे और जिस दिशा में प्रभु विराजमान थे उस दिशा में सात कदम आगे बढ़कर उन्होंने भक्तिपूर्वक साष्टांग नमस्कार किया, यह शुभसमाचार देने वाले वनमाली को पुरस्कार स्वरूप अपने शरीर के बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान किए। श्रेणिक अपने परिजनों और पुरवासियों के साथ भगवान के समवसरण में पहुँचे। समवसरण के इस प्रधान श्रोता ने जिज्ञासावश साठ हजार (६०,०००) प्रश्न किए; उनका उत्तर पाकर राजा को असीम सन्तोष हुआ। अपने निर्मल परिणामों के कारण श्रेणिक ने वीर प्रभु के चरणसान्निध्य में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध किया तथा अनेक भव्यजीवों को सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हुई। किन्हीं ने चारित्र धारण किया। वीर प्रभु की चरणरज से पवित्र राजगृही की महिमा अगम है; उसके दर्शन से आत्मा पवित्र होती है।

राजगृही से साध्वीसंघ पावापुरी पहुँचा।

पावापुरी :—भगवान महावीर के जीवन का इतिहास और उनके त्याग की अमर कहानी बिहार प्रान्त के पावापुर ग्राम में विद्यमान सरोवरस्थ धवल जिनमन्दिर में मिलती है।

भगवान महावीर :—आज से २५०० सौ वर्ष पूर्व कुण्डलपुर में क्षत्रिय शिरोमणि प्रतापी शान्तिप्रिय नरेश सिद्धार्थ की महिषी प्रियकारिणी की कुक्षि से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन जगदुद्धारक परम तेजस्वी भगवान महावीर ने जन्म लिया था—जिनके जन्म-समय पर नरक में रहने वाले नारकियों को भी कुछ क्षणों के लिये शान्ति मिली थी। जिनके जन्म के प्रभाव से इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ था तथा व्यन्तरदेवों के सदनों में विना बजाये पटहों की ध्वनि, ज्योतिषिदेवों के विमानों में सिंहनाद, भवनवासियों के भवनों में शंखगर्जना एवं कल्पवासियों के विमानों में घण्टों की आवाज गूंजने लगी थी। इन चिह्नों के द्वारा इन्द्र ने भगवान का जन्म जानकर चतुर्निकाय के देवों सहित ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर कुण्डलपुर की तीन प्रदक्षिणा देकर नगर में प्रवेश किया तथा इन्द्राणी को माता के समीप प्रसूतिघर में भेजा। प्रसूतिघर में प्रवेशकर इन्द्राणी ने भगवान को

माता की तीन प्रदक्षिणा देकर शिशु वीर प्रभु को गोद में उठा लिया। भगवान के स्पर्श से इन्द्राणी को वचनातीत आनन्द हुआ था। इन्द्राणी ने श्री वीर प्रभु को इन्द्र की गोद में दिया। इन्द्र ने एक हजार नेत्रों से भगवान के रूप का अवलोकन किया एवं बड़े आमोद-प्रमोद के साथ भगवान को लेकर सुमेरु पर्वत पर पहुँचा। मेरु पर्वत पर विशाल-विशाल एक हजार आठ कलशों के द्वारा क्षीरसमुद्र के जल से भगवान का अभिषेक किया गया। प्रभु का नाम "वर्द्धमान" घोषित कर, उन्हें माता-पिता की गोद में सौंप कर इन्द्र स्वर्ग चले गये। दूज मयंक के समान दिन प्रति दिन (महावीर) वर्द्धमान बढ़ने लगे।

एक समय पराक्रमी वर्द्धमान अपने मित्रों के साथ उद्यान में वृक्ष पर आरूढ़ होकर खेल रहे थे। एक देव ने उनके पराक्रम की परीक्षा करने के लिए महा भुजंग-सर्प का रूप धारण कर वृक्ष को वेष्टित कर दिया। सभी बालक भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये परन्तु साहसी वर्द्धमान निर्भय होकर खेलते हुए, सर्पराज के मस्तक पर पैर रख कर नीचे उतर गये। उनकी निर्भयता से देव नतमस्तक होकर चरणों में झुक गया, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। तभी से आपको "महावीर" कहने लगे।

एक समय, महाबली वीर प्रभु के दर्शन मात्र से संजय और विजय नाम के दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों को पदार्थविषयक शंका दूर हो गई इसलिए उन्होंने अपने अन्तःकरण की भक्तिपूर्वक उनको 'सन्मति' संज्ञा प्रदान की।

"तत्सन्देहगते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्वेष स सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः॥"

ज्ञानी ध्यानी भगवान महावीर ने वनिता की बेड़ी में बँधना योग्य नहीं समझा, इसलिए कुमार अवस्था में ही त्रिलोकविजयी कामदेव को परास्त कर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। वे विवाह के बन्धन में नहीं बँधे।

३२ वर्ष की युवावस्था में मंगसिर कृष्णा दसमी के दिन गृहस्थावस्था रूपी पिंजरे को तोड़कर, कामरूपी हस्ती का मानमर्दन कर वीर रूपी सिंह तपोवन की ओर चला गया, उसने समस्त परिग्रह का परित्याग कर नग्न दिगम्बर मुद्रा धारण की।

अब वे पावस ऋतु में वृक्ष के नीचे खड़े होकर ध्यान करने लगे, ग्रीष्म ऋतु में प्रखर सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत की चोटी पर ध्यानमग्न होते थे। शीतकाल में सरिता के तट पर खड़े होकर ध्यान करते थे। उनके तपो माहात्म्य से सर्व ऋतु के फल-पुष्प एक समय में उत्पन्न हो जाते थे।

सारंगी सिंहशावं स्पर्शति सुतधियानन्दनी व्याघ्रपोते,
मार्जारी हंसबालं प्रणय परवशाकेकिकान्ता भुजंगी।
वैराराय जन्म जातन्यपि गलितमदाजन्तवोऽन्येत्यजन्ति,
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहं ॥

जिसका सान्निध्य पाकर वनके आजन्म शत्रु पशुओं ने बैर छोड़ दिया एवं शान्त भावको प्राप्त होकर उसकी शान्त मुद्रा की तरफ टकटकी लगा कर देखने लगे थे।

एक समय पावन योगी भगवान महावीर उज्जयिनी नगरी की प्रेतभूमि में आत्मध्यान में लीन थे। उस समय बिना कारण कुपित होकर रुद्र ने उन पर अग्नि की ज्वाला, प्रचण्ड वृष्टि, प्रलय काल की वायु के झकोरे, भूत-प्रेतों के नृत्य, भयंकर, विषैले, पशु-पक्षियों के उपसर्ग से उनको योगध्यान से विचलित करने का प्रयत्न किया परन्तु "महामना: यो न चचाल योगत:"—वह महामना अपने ध्येय से विचलित नहीं हुए, योग्य ही है—क्योंकि क्षुद्र पर्वतों को चलायमान करने वाले पवन के झकोरों से सुमेरु पर्वत कभी चलायमान हो सकता है क्या? अर्थात् नहीं हो सकता। १२ वर्ष के कठोर तपश्चरण के बाद घातिया कर्मों का नाश कर बैसाख शुक्ला दसमी के दिन महावीर ने केवलज्ञान प्राप्त किया—जिस ज्ञान में समस्त विश्व के चराचर पदार्थ दर्पण के समान प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। महावीर के जीवन की उदात्त भावनायें, तप: पुनीत ज्ञान एवं उनकी देशना समस्त प्राणियों के कल्याण में सहायक बनी थी। उनके तेजपुंज के समक्ष संसार की समस्त दुर्बलतायें, अहंभावजन्य अज्ञानतायें विलीन हो गई थीं। उनका हितोपदेश प्राणीमात्र के लिए हितकर था। उसने बढ़ती हुई हिंसा की ज्वाला को अहिंसा रूपी जल से शान्त किया। उनके अलौकिक जीवन का सान्निध्य पाकर असंख्यात प्राणियों ने अविनाशी शान्त निराकुल अवस्था प्राप्त की थी। उनके उपदेशों से भूतल का पापाचार समाप्त हुआ था, जग में धर्म, अहिंसा, संयम का ध्वज फहरा था, "स्वयं जीओ और दूसरों को भी जीने दो" सबको यह सन्देश सुनाया था। "सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं। माध्यस्थ्य भावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव: ! ॥"

समस्त जीवों के साथ मैत्री भाव, गुणवानों के प्रति प्रमोद भाव, दीन-दु:खी जीवों पर करुणा भाव एवं क्रूर-कुमार्ग पर चलने वालों पर माध्यस्थ भाव का उपदेश दिया था।

प्रभु महावीर की आयु ७२ वर्ष की थी, सात हाथ ऊंचा पीत वर्ण का शरीर था। उनके ११ गणधर थे—छत्तीस हजार आर्यिकाएँ तीन सौ पूर्वधर, निन्यानवे सौ शिक्षक गण, तेरह सौ अवधिज्ञानी, सात सौ केवलज्ञानी, नौ सौ विक्रिया ऋद्धिधारी, पांच सौ विपुल मती, चार सौ वादी, चौदह हजार ऋषि थे। इस प्रकार असंख्यात देव-देवी सहित ३० वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश देकर अन्त में

छह दिन तक योग निरोधकर व्युपरत क्रिया निवृ'ति शुक्ल ध्यान के द्वारा अघातिया कर्मों का नाश कर भगवान ने अकेले ही पावापुरी से निर्वाण प्राप्त किया।

वीर प्रभु के निर्वाण से परम पवित्र इस पावापुरी की महिमा अगम्य है, जो देवों के द्वारा पूजित है, उस पावापुरी में जल के बीच में विशाल जिनमन्दिर है, एक मुख्य मन्दिर है जिसमें नौ वेदियाँ हैं, महावीर स्वामी का एक विशाल खड्गासन बिम्ब है, प्राचीन बिम्ब भी अतिशय शोभनीय है, जिसके दर्शन से अनादिकालीन कर्म नष्ट हो जाते हैं।

पावापुरी से गुणावा सिद्धक्षेत्र पहुँचे। यह स्थान भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य तपस्वी गौतम गणधर की निर्वाणभूमि है। उनके जीवन की दिव्य स्मृति से आत्म-जागृति होती है।

इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण अन्य दर्शनों के पारगामी पण्डितों सहित महावीर प्रभु के शासन का भयंकर विरोधी बन कर भगवान के साथ शास्त्रार्थ करने की भावना से समवसरण में आया, परन्तु समवसरण के मनोज्ञ मानस्तम्भ की एवं अन्य विभूति को देखकर वह मान रहित हो गया। प्रभु के समीप पहुँचते ही उस एकान्तवादी की आत्मा में अनेकान्तवादरूपी सूर्य को सुनहरी किरणों ने प्रवेश कर हृदय में छिपे हुए मोह-मिथ्यात्व के निविड़ अन्धकार को दूर कर दिया, जिससे वह प्रभु का परम भक्त एवं सम्यग्दृष्टियों में शिरोमणि हो गया। उसने तत्काल ही संसार-शरीर और भोगों से विरक्त होकर समस्त परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर मुद्रा धारण की।

जिनमुद्रा धारण करते ही वे अनेक ऋद्धियों एवं मनःपर्ययज्ञान के स्वामी वन गये, तथा आत्मज्ञान साधकों की श्रेणी में प्रमुख श्रमण संघ के अधिपति भगवान के मुख्य गणधर वन गये। केवलज्ञानोत्पत्ति के ६६ दिन के अनंतर श्रावण प्रतिपदा के दिन वीर भगवान की वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। उसे सुनकर शास्त्ररूप रचना करने का सौभाग्य गौतम गणधर को प्राप्त हुआ। अन्त में, केवलज्ञान प्राप्त कर उन्होंने इस गुणावा क्षेत्र से निर्वाण प्राप्त किया, इसलिये यह क्षेत्र परम पवित्र है। यहां भी पावापुर के समान जल के बीच में मन्दिर है जिसमें गौतम गणधर के चरण चिह्न वने हुए हैं, परन्तु यह मन्दिर एवं विशाल धर्मशाला दिगम्बर समाज के अधिकार में नहीं है। सड़क पर एक अन्य मन्दिर वना है जिसमें अतीव मनोज्ञ जिन बिम्ब है, छोटा सा मानस्तम्भ भी है, छोटी धर्मशाला है परन्तु क्षेत्र अत्यन्त रमणीय है। गौतम गणधर का स्मरण होते ही परिणामों की विचित्रता का भान होता है।

यहां से दो मील दूर पर नवादा शहर है—जहाँ एक मन्दिर है व श्रावकों के १०-१२ घर हैं। लगभग सभी जैन सिद्धक्षेत्रों एवं अतिशय क्षेत्रों में श्रावकों का और वाहनों का भी अभाव है। गुणावा से १५० मील दूर पर नाथनगर है—जो वासुपूज्य भगवान के पांचों कल्याणों से पवित्र है।

आज से कुछ समय पूर्व चम्पानाले के समीप श्री वासुपूज्य भगवान के चरण चिह्न एवं विशाल मन्दिर था जिस पर दिगम्बर समाज का अधिकार था परन्तु वर्तमान में उस पर श्वेताम्बर लोगों का अधिकार है। दिगम्बर जैनों के दो मन्दिर हैं। नाथनगर में मानस्तम्भ निर्माण की योजना चल रही है। वहां से दो मील पर भागलपुर शहर है जिसमें एक मन्दिर, धर्मशाला और श्रावकों के ४०-५० घर हैं।

भागलपुर से ३० मील दूरी पर वासीग्राम है। वहां एक जैन मन्दिर है। यहां से दो मील दूर पर मन्दारगिरि नामक पर्वत है। इस पर्वत से भगवान वासुपूज्य स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया है। वहां पर तीन जगह चरण चिह्न हैं, दो स्थानों पर पर्वत में उत्कीर्ण चरण हैं; पर्वत पर जिनबिम्ब नहीं हैं। पर्वत के निचले भाग में तालाब है, मध्यभाग में पर्वत के झरने का पानी बहता है, उस तालाब के पानी व शुद्ध हवा से यात्रियों की थकावट दूर हो जाती है।

यहाँ से गिरिडीह होते हुए श्रीसम्मेदशिखरजी पहुँचे।

चार कष्ट साध्य

अक्खाण रसणीं कम्माण मोहणीं तह वयाण वम्भं च।
गुत्तीसु य मणगुत्ती चउरो दुक्खेहिं सिज्झन्ति ॥

इन्द्रियों में जीभ, कर्मों में मोहनीय, व्रतों में ब्रह्मचर्य और गुप्तियों में मनोगुप्ति—ये चारों कष्ट से सिद्ध होते हैं।

१२

कलकत्ता वर्षायोग

२९ वाँ वर्षायोग :

साध्वी संघ ने विक्रम संवत् २०२८ का वर्षायोग तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी के पावन सिद्धक्षेत्र पर किया। स्व० प्रात: स्मरणीय आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज के शिष्य श्री पार्श्वसागरजी महाराज ने भी इस वर्ष यहीं वर्षायोग किया था। यह चातुर्मास विशेष आनन्द एवं धर्मप्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ। परम पवित्र तीर्थक्षेत्रों का संयोग महान् पुण्योदय से प्राप्त होता है। किसी सिद्धक्षेत्र पर वर्षायोग का यह हमारा प्रथम अवसर था।

नागौर के वर्षायोग (विक्रम संवत् २०१५) को सम्पन्न करने के वाद सम्पूर्ण यात्राओं में जिनका हमें परिपूर्ण सहयोग मिला है उनमें ब्र० देवकुमारी (१७ वर्ष से); ब्र० हरकी वाई (१३ वर्ष से) सन्तोष वाई (१३ वर्ष से) कुमारी प्रमिला (१० वर्ष से), और ब्र० कैलाशचन्द्र (१० वर्ष से) का नाम सर्वोपरि है।

परम पूज्य माताजी इन्दुमतीजी की सौम्य मूर्ति से प्रभावित होकर कारन्जा में कुमारी कुसुम व कुमारी विद्युल्लता ने आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था; अन्य भी कई वालिकाएँ आपके सान्निध्य में अध्ययन रत रही हैं।

तीर्थराज को छोड़ कर जाने की भावना न होते हुए भी विहार करके साध्वीसंघ ईसरी आया।

सम्वत् २०१२ में यहां महान् तपस्वी योगिराज आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी का चातुर्मास हुआ था। तव से अव में पर्याप्त भौतिक परिवर्तन दृष्टिगत हुआ। श्री वीसपन्थी कोठी में

विशाल मन्दिर एवं धर्मशाला बनी है, आश्रम में भी विशाल भव्य मन्दिर एवं वर्णीजी का स्तूप बना है तथा महिला आश्रम में भी एक अत्यन्त आकर्षक जिनमन्दिर निर्मित हुआ है।

संघ ईसरी से हजारीबाग पहुँचा। यहां दो मन्दिर हैं; श्रावकों के ५०-६० घर हैं। संघ के लगभग दो माह तक यहाँ रुकने से अच्छी धर्मप्रभावना हुई। हजारीबाग से रामगढ़ होते हुए राँची पहुँचे। यहां के जिनमन्दिर में प्राचीन मानभूमि क्षेत्र से निकली हुई आदिनाथ भगवान की दो खड्गासन मूर्तियाँ हैं। मूर्तियों के मस्तक पर लम्बे-लम्बे बाल हैं जिनके अवलोकन से ऐसा अनुमान लगता है कि मूर्तिकार ने उस समय की आकृति को पत्थर में तराशा है जब भगवान ने १२ माह तक ध्यान किया था।

राँची से रामगढ़, पेटरवाल, साढम, गोमियां, सरियादि के मन्दिरों के दर्शन कर तथा विधान-अनुष्ठानादि से धर्मप्रभावना करते हुए संघ पुनः तीर्थराज की वन्दना हेतु सम्मेदाचल पहुँचा।

यहां आचार्यश्री १०८ विमलसागरजी महाराज के संघ के दर्शनों का लाभ मिला। आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज के शिष्य श्री सुपार्श्वसागरजी के आगमन से उनके पुनीत दर्शनों का भी लाभ प्राप्त हुआ। त्यागी व्रतियों के विशाल संघ का सान्निध्य पा कर हृदय में अतिशय मोद हुआ। यहां पर कलकत्ता महानगरी के धर्मप्रेमी श्रद्धालु श्रावकों ने कई बार आ-आ कर कलकत्ता में वर्षायोग सम्पन्न करने की प्रार्थना की। यहाँ २० दिन रुकने के बाद, धर्म के प्रचार-प्रसार एवं श्रावकों की अन्तरंग भावना को लक्ष्य कर कलकत्ता में वर्षायोग सम्पन्न करने हेतु दिनाङ्क २८-६-७२ को विहार किया।

महानगरी–कलकत्ता की ओर :

मार्ग में भव्य जीवों को सम्बोधित करते हुए तथा रानीगंज, अण्डाल, चिन्सुरा, उत्तरपाड़ा, वाली आदि मन्दिरों के दर्शन करते हुए साध्वीसंघ ने विक्रम संवत् २०२९ की आषाढ़ शुक्ला छठ दिनाङ्क १६-७-७२ को भारत की प्रधान औद्योगिक नगरी कलकत्ता में प्रवेश किया। विहार-मार्ग में अनेक बंगाली-परिवारों ने मद्य-मांस का त्याग कर अहिंसा मार्ग का अवलम्बन लिया।

कलकत्ता प्रवेश के समय आर्यिका माताओं के दर्शनार्थ अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था। सड़कों पर, मकानों पर सर्वत्र उमंगित स्त्री-पुरुष ही दिखाई दे रहे थे। नगर प्रवेश की शोभायात्रा में अनेक बैण्ड-पार्टियाँ थीं; रंग-बिरंगी झण्डियां लिये विद्यालयों के बालक-बालिकाएँ थीं, जय-जयकार के निनाद से आकाश को भी गुंजरित करने वाले स्त्री पुरुषों का अपार समुदाय था। बड़े उत्साह पूर्वक शोभा यात्रा बढ़ती थी। मार्ग में पड़ने वाले सभी जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ श्री दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय भवन में पहुँचा। शोभायात्रा का जनसमुदाय सभा में परिवर्तित

हुआ। सामयिक उद्बोधन के अनन्तर सभा विसर्जित हुई। संघ के ठहरने की व्यवस्था इसी विद्यालय भवन में थी। दर्शन-वन्दना हेतु बाहर से पधारने वाले यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था 'विद्यालय भवन' एवं 'जैन भवन' दोनों स्थानों पर की गई थी।

३० वाँ वर्षायोग :

वर्षायोग स्थापना हेतु आर्यिका संघ से श्री नथमलजी सेठी, श्री चाँदमलजी बड़जात्या आदि ने पुनः प्रार्थना की। आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को श्री दिगम्बर जैन बड़े मन्दिरजी में सायं ६.३० बजे वर्षायोग स्थापना समारोह सम्पन्न हुआ। आर्यिकाओं के प्रवचन प्रतिदिन मन्दिरजी में हुआ करते थे। विशेष अवसरों पर विद्यालय में व अन्यत्र हुए प्रवचनों से जैनाजैन जनता लाभ उठाती थी।[1]

समय-समय पर सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय, शान्तिविधान, ऋषिमण्डल, सिद्धचक्र[2] आदि अनेक विधान-अनुष्ठान हुए।

स्वर्गीय आचार्य श्री शान्तिसागरजी, वीरसागरजी, महावीरकीर्तिजी, शिवसागरजी एवं चन्द्रसागरजी महाराज के पुनीत समाधि दिवस ससमारोह मनाये गये।

ब्र० सूरजमलजी, ब्र० शिवकरणजी (लाडनूं), ब्र० हीरालालजी पाटनी (निवाई), पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर (सिवनी), पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य (सागर), पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, (वनारस), पं० छोटेलालजी बरैया (उज्जैन), पं० मनोहरलालजी शास्त्री (रांची), पं० श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री (फिरोजाबाद), पं० तनसुखलालजी काला (बम्बई) आदि विद्वानों के आने से शंका-समाधान एवं ज्ञानचर्चा का विशेष अवसर मिला।

मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी के दिन संघ बेलगछिया उपवन में गया। यहां पर प्रतिदिवस प्रातःकाल प्रवचन होता, अवकाश के दिन मध्याह्न में प्रवचन होता एवं विधानादि होते। २६ जनवरी, ७३ को ब्र० सूरजमलजी के निर्देशन-संयोजन में श्री मिश्रीलाल, धर्मचन्द, गणपतराय काला द्वारा 'वृहत् तीन लोक मण्डलविधान'[3] का आयोजन हुआ। सम्पूर्ण कार्यक्रम निर्विघ्नरीत्या विशेष प्रभावना पूर्वक सम्पन्न हुआ।

---

१. प्रवचनपटु आ. सुपार्श्वमतीजी के व्याख्यानों को श्रोता समुदाय एकाग्रता से मन्त्रमुग्ध हुए सुनते थे। आपकी प्रवचनशैली अतीव रोचक है, शास्त्रीय आधार पर प्रमेयों की व्याख्या सर्वग्राह्य होती है।

२. कार्तिक में श्री चांदमल, नेमीचन्द, पारसमल बड़जात्या द्वारा और फाल्गुन में श्री मदनलाल, पन्नालाल, रतनलाल काला द्वारा आयोजित किये गये।

३. विधान की रचना में तीनलोक का नक्शा, मन्दिरों, ध्वजाओं, पहाड़ों, नदियों आदि का कलात्मक आलेखन अतीव सौन्दर्यशाली था। यह रचना आर्यिका सुप्रभामतीजी व विद्यामतीजी के विशेष प्रयत्नों से दर्शनीय बनी थी। इस जैन कला के फोटो भी लिए गए और फिल्म भी बनी है। —सं०

लगभग ढ़ाई मास के प्रवास के बाद संघ पुनः कलकत्ता स्थित बड़ा बाजार अंचल में आया।

धर्मानुरागी श्रावकों की विशेष भक्ति एवं विशेष कारण से संघ को साढ़े आठ माह तक यहां पर रुकना पड़ा[१]। तीव्र भावना थी खण्डगिरि, उदयगिरि की यात्रा करने की परन्तु भाग्योदय बिना पुरुषार्थ भी नहीं चलता। धुलियान जिला मुर्शिदाबाद के श्रावकों का विशेष आग्रह था कि बंगाल में दिगम्बर जैन साधुओं का सैकड़ों वर्षों से विहार नहीं हुआ है अतः साध्वी संघ एक बार उधर भी पधार कर श्रावकों के आचार-विचार को धर्ममार्ग में प्रवृत्त करे।

संघ की हार्दिक इच्छा उस क्षेत्र में जाने की नहीं थी परन्तु किसी ने बताया कि इधर से भागलपुर का भी मार्ग है। दूरी ज्यादा नहीं कुल २०० मील होगी। मार्ग में जियागंज आदि गावों में श्रावकों के भी घर हैं। इच्छा तो नहीं थी कि विहार के लिए यह मार्ग चुना जाय क्योंकि भावना लगी थी खण्डगिरि, उदयगिरि की यात्रा करने की तथापि भव्यों के पुण्य ने खींचा और अकस्मात् इधर आने का विचार बन गया।

चैत्र कृष्णा द्वादशी दिनाङ्क ३१-३-१९७३ को कलकत्ता से विहार हुआ। श्री दिगम्बर जैन बालिका भवन से विहार करके संघ बड़े मन्दिरजी में आया। विदाई समारोह हेतु मन्दिर का प्रांगण जनसमूह से खचाखच भरा था। लोगों के चेहरों पर चुप्पी छाई थी कतिपय आँखों से अश्रु-विमोचन हो रहा था। धुलियान से समागत श्रावकों का स्वागत करते हुए कलकत्तावासियों ने कहा—"साध्वीसंघ जैन परम्परा की अपूर्व निधि है, इसकी पूर्ण देख-रेख करना हम सबका कर्त्तव्य है, विशेष रूप से तत् तत् स्थान के श्रावकों का जहाँ संघ विराजता है। धुलियान समाज का सौभाग्य है कि संघ का उधर विहार हो रहा है, अब इसकी सार-सँभाल का उत्तरदायित्व आपके कन्धों पर है।"

---

१. आर्यिका सुपार्श्वमतीजी कई वर्षो से 'अलसर' से पीड़ित हैं। यहां भी इस रोग का तीन बार भीषण प्रकोप हुआ, आप गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गई, समाज में चिन्ता व्याप्त हुई, आपके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हुए 'महामंत्र' का अखण्ड जाप किया गया। असाता का उदय मन्द हुआ तब आपकी तबियत ठीक हुई। अस्वस्थ दशा में भी आप अपनी दिनचर्या में पूर्ण सजग एवं सावधान थी।

❀ फाल्गुन शुक्ला नवमी को आपका ४५वां जन्मदिवस ४५ दीपकों व ४५ फलों के पुंज सहित सोल्लास मनाया गया।

❀ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी की प्रेरणा से स्थानीय महिला समाज ने तीर्थरक्षाकोष हेतु करीबन चालीस हजार रुपया संगृहीत कर अनुकरणीय कार्य किया।

—सं०

कलकत्ता से विहार करके संघ शान्तिपुर होकर कृष्णनगर पहुँचा। कलकत्ता से प्रतिदिन हजारों नर-नारी आते जाते थे। बंगवासी भी मार्ग में विहार का दृश्य देखने हेतु उत्सुकतापूर्वक खड़े होकर बातचीत करते थे। मांसभक्षी होने पर भी बंगालियों में भद्रता एवं नम्रता दीखती थी।

भात जांगला (कृष्णनगर) में श्री शान्तिलालजी बड़जात्या, नागौर वालों ने 'श्री ऋषिमण्डल विधान' की पूजा का आयोजन किया तथा दर्शनार्थी यात्रियों की भोजन की व्यवस्था की। कलकत्ता, धुलियान, जियागंज आदि अनेक स्थानों के यात्री दर्शनार्थी आहार दान निमित्त प्रतिदिन आते थे।

संघ बेलडांगा आया। यहां श्री लादूलालजी गंगवाल सुजानगढ़ निवासी ने 'श्री ऋषि मण्डल विधान' पूजा महोत्सव का आयोजन किया। पूज्य बड़े माताजी की प्रेरणा से धर्म क्रियाओं का साधनभूत एवं परिणामविशुद्धि का कारण रूप जिन चैत्यालय स्थापित किया गया। वहां से विहार कर खगड़ा (कासिम बाजार) आए। यहां श्वेताम्बर जैनों के काफी घर हैं। पहले यहां दिगम्बर जैन मन्दिर भी था परन्तु उसकी प्रतिमाएँ आदि तो जियागंज आदि अन्य स्थानों के श्रावक ले गए अब वहां श्री कन्हैयालाल मदनलाल की मिल में जिन चैत्यालय है। मारवाड़ी खण्डेलवाल दिगम्बर जैन श्रावकों के १०-१५ घर हैं। श्रावकों में धर्म के प्रति दृढ़ आस्था है। विहार में, नगरप्रवेश के समय और प्रवचनों में भी काफी लोग इकट्ठे होते थे।

कासिम बाजार से ५ मील की दूरी पर लालसागर है जो कभी नवाब की राजधानी थी। यहां होते हुए जियागंज आए।[1] बीच में नदी होने से जियागंज दो भागों में बँट गया है, एक ओर जियागंज है, दूसरी ओर अजीमगंज; यहां ३०० वर्ष पूर्व नागौर से एक ओसवाल जैन बन्धु आए थे, भाग्य और पुरुषार्थ के सहयोग से वे करोड़पति होकर 'जगतसेठ' कहलाने लगे; उन्होंने यहां कई मन्दिरों का निर्माण करवाया। पूर्व में वे दिगम्बर मत के अनुयायी थे, बाद में दिगम्बर साधुओं का इधर आगमन न होने से उनके मरने के बाद कुटुम्बीजन श्वेताम्बर हो गए; आज भी अजीमगंज में २७-२८ श्वेताम्बर मन्दिर हैं। उनमें दिगम्बर मूर्तियाँ हैं।

साध्वीसंघ जियागंज में लगभग २० दिन ठहरा। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने व्रत-नियम लिये। जियागंज से लालगोला आए। यहां श्रावकों के ३५-४० घर हैं। श्रावकों में साधुओं के प्रति विनय व सम्मान की भावना है। यहां से सन्मतिनगर पहुँचे। यहां पर दो सेठी और एक पाटनी इस तरह कुल तीन परिवार हैं। मन्दिर में भगवान महावीर की विशाल मूर्ति है। किसी

---

१. यहां आर्यिकाजी का केशलोच हुआ। आपके सान्निध्य में पश्चिम बंगाल की भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण समिति की बैठक हुई तथा विविध समितियां गठित की गई। —सं०

समय यहां से १० मील दूर पर काफी जैन लोग रहते थे। वहां एक महानदी है; उसने चार पांच बार कालीटोला ग्राम को काटा है। अतः वहां के लोग एवं श्रावक आगे-आगे गांव वसाते चले गए। आखिर यहां आकर भगवान महावीर के नाम से 'सन्मतिनगर' वसाया है। मन्दिर छोटा है परन्तु सुन्दर है। धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं। यहां से तीन मील पर जंगीपुर है। यहाँ भी एक जिनमन्दिर है। श्रावकों के ५-७ घर हैं। यहां से नदी पार करनी पड़ती है। तीन मील दूरी पर मिर्जापुर (गनकर) है, यहां भी जिनमन्दिर है, श्रावकों के पांच-छह घर हैं।

मिर्जापुर से बीस मील की दूरी पर अडगाबाद है। यहां पर १५-२० घर हैं जैनों के, एक जिनमन्दिर है। यह स्थान इधर के अन्य गाँवों से काफी बड़ा है और प्राचीन भी। यहां से आठ मील दूर धुलियान (मुर्शिदाबाद) बड़ा शहर है। श्रावकों के ३० घर हैं। सुन्दर आकर्षक मन्दिर एवं धर्मशाला हैं।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया, वि० सं० २०३० सोमवार को संघ धुलियान पहुँचा।

स्वदोष दर्शन

अपने दोषों को देख लेना भी साधना की सफलता का प्रतीक है क्योंकि इन्द्रियां वहिर्मुख हैं इसलिए दूसरों के दोष देख लेना आसान है किन्तु अपने दोष देखना कठिन है। जैसे चोर को देख लिया जावे तो चोर नहीं टिकता, वैसे ही अपने दोषों को देख लिया जाए तो दोष नहीं टिकते। दूसरों के दोषों पर विचार न करो। अपनी कमियों को देखो तथा उन्हें निकालने की कोशिश करो।

१३

बंग-बिहार यात्रा

३१ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३० का वर्षायोग धुलियान में सम्पन्न करने हेतु आषाढ़ शुक्ला दूज, सोमवार को संघ ने धुलियान में प्रवेश किया। अपार जन समुदाय ने जय जयकार के निनाद के साथ विशेष उत्साहपूर्वक अगवानी की। स्थान-स्थान पर आरती उतारी गई।

प० बंगाल मुर्शिदाबाद जिले में दिगम्बर जैन साधुओं का पदार्पण और वर्षायोग सैकड़ों वर्षों में प्रथम बार होने से जैन-अजैन नर-नारियों की दर्शन करने, प्रवचन सुनने तथा आहारादि क्रियाओं को देखने में बड़ी भीड़ लगती थी। वर्षायोग में डेह, नागौर, बारसोई, कलकत्ता, कानकी, किशनगञ्ज, तिनसुकिया, बड़पेटा, गौहाटी आदि स्थानों के गुरुभक्त, श्रद्धानी श्रावक आहारादि देकर पुण्योपार्जन करने आते रहते थे।

केशलोच की क्रिया देखकर तो बंगवासी जनता बहुत प्रभावित हुई। कहने लगी कि यह अद्भुत कार्य धीर-वीर पुरुष ही कर सकते हैं।

धुलियान में विशाल गंगा नदी प्रवाहित होती है। वह कटाव करती है। उसके कटाव के कारण तीन बार मन्दिर तथा वहां के निवासियों के घर नदी में बह गए। जैन कालोनी में मन्दिर एवं धर्मशाला बहुत अच्छे बने हैं। आर्यिका संघ इसी स्थान पर ठहरा था। लोग धर्मात्मा, गुरुभक्त और श्रद्धालु हैं।

पूज्य इन्दुमतीजी की पीठ और गर्दन पर एक विषाक्त फोड़ा हो गया जिसमें सैकड़ों छिद्र हो गये। आहार यहाँ तक कि पेय पदार्थ भी लेना मुश्किल हो गया। अत्यन्त शोचनीय

अवस्था हो गई। डाक्टरों, वैद्यों के बाहरी उपचार कारगर नहीं हुए, समाज में गहरी चिन्ता छा गई।[1] महामन्त्र णमोकार का जाप्य और अनेक विधान-अनुष्ठान श्रावकों ने किए। आर्यिका श्री की तपश्चर्या के प्रभाव से विषाक्त फोड़ा शान्त हुआ, एकदम ठीक हो गया।

चातुर्मास में धर्म प्रभावना विशेष हुई थी। श्री शिखरचन्द जी गंगवाल ने 'वृहत् तीन लोक मण्डल विधान' कराया। जैन सिद्धान्त की मान्यता के अनुरूप तीन लोक का नक्शा, विवरण एवं कला देखकर सब विस्मय विमुग्ध हुए। मण्डन कला का विशेष श्रेय आर्यिका श्री सुप्रभामतीजी, विद्यामतीजी को है। ये दोनों इस कला में विशेष निपुण हैं।

एक दिन नदी का कटाव जोर से हो रहा था। गाँव का वातावरण अशान्त हो गया था। लोगों ने आकर माताजी से प्रार्थना की तब आर्यिकासंघ जहां कटाव हो रहा था उस स्थान पर पहुँचा। मंत्रोच्चारण करने पर नदी का कटाव होना रुक गया। धर्म की महिमा महान् एवं अपूर्व है। विश्वास करने से पूर्ण सफलता मिलती है। "विश्वासो फलदायकः।"[2]

वर्षायोग के बाद संघ धुलियान से १० मील दूर पाकोड़ गया। वहां पर श्रावकों के ७-८ घर हैं एवं एक चैत्यालय है। यहां माताजी की प्रेरणा से मन्दिर का निर्माण होकर बिम्ब प्रतिष्ठा भी हुई। पाकोड़ से लौट कर पुनः धुलियान आये।

जब से बंगाल में संघ ने विहार किया था तब से ही वारसोई, रायगंज, कानकी, किशनगंज आदि स्थानों के श्रावकों की यह भावना रही कि संघ का विहार हमारे स्थानों पर भी हो ताकि धार्मिक जाग्रति हो, जनता धर्म का महत्त्व समझे अतः श्रावक बन्धु अनेक स्थानों पर प्रार्थना करने आते थे।

धुलियान में संघ करीबन आठ मास तक रुका। संघ के सान्निध्य से लोगों के हृदयों में धर्म के प्रति विशेष अनुराग बढ़ा। आस्थाशील स्त्री पुरुषों ने सामर्थ्यानुसार विविध व्रत नियम अंगीकार किये।

---

१. पू० वड़े माताजी की ऐसी अवस्था से संघ को महान् चिन्ता हो रही थी। तव आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी ने अपने अमोघ अस्त्र—मंत्र, यंत्र, को गर्दन और पीठ के फोड़ों पर लिखकर, मंत्रों के द्वारा विषाक्त फोड़े का निवारण करके जैनाजैन जनता को विस्मय विमुग्ध कर दिया। जैन यंत्रों मंत्रों में महान् शक्ति है। लोग कहने लगे कि आर्यिका सुपार्श्वमतीजी में दैवीशक्ति है। जनता विशेष श्रद्धालु होने से दर्शनार्थ आने वालों का तांता लगा रहता था।

२. आर्यिका सुपार्श्वमतीजी ने मंत्रोच्चारण कर कहा कि अब नदी का कटाव नहीं होगा। विधिपूर्वक क्रिया सम्पादन करो तो हमेशा के लिये कटाव होना वन्द हो जाएगा। लोगों के हामी भरने पर माताजी ने सर्व विधि वताई। —सं०

२ फरवरी, १९७४ को संघ ने धुलियान से बारसोई की ओर विहार किया। धुलियान से बारसोई ८० मील है। विहार में संघ के साथ बारसोई, कानकी, किशनगंज, धुलियान आदि स्थानों के अनेक स्त्री पुरुष थे।

अर्जुनपुरा, नयनसुख, कलचुरी, मालदा, पाण्डु, गाजोल, इटहार आदि गांवों में विहार करते हुए संघ रायगंज पहुँचा।

रायगंज में श्रावकों के ५ घर हैं, एक चैत्यालय है। श्वेताम्बर बन्धुओं के ४०-५० घर हैं। वे भी संघ की दर्शन-वन्दना हेतु तथा उपदेश श्रवण करने हेतु बराबर आते थे। दिगम्बर जैन साध्वियों की अनुशासित चर्या देखकर समस्त नगरवासी प्रभावित होते थे। संघ यहां सात दिन ठहरा, धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई क्योंकि इस क्षेत्र में दिगम्बर साधुओं का यह प्रथम पदार्पण था।

रायगंज से बारसोई १५० मील है। रास्ते में सभी गांवों में कुछ समय रुक-रुक कर उपदेश दिया जिससे अनेक बंगालियों व बिहारियों ने एक मास, दो मास, किसी ने आजन्म भी मांस-मदिरा का त्याग किया।

दोगछा ग्राम में एक बंगाली परिवार के मकान में रात्रि विश्राम किया। उसने भयंकर सर्दी की रात्रि में भी आर्यिकाओं को बिना ओढ़े बिछाये सोते देखकर बहुत आश्चर्य किया कि हम भी मानव हैं और ये भी मानव हैं। आर्यिकाओं को शीतपरीषह शान्त भाव से सहन करते देख कर उस परिवार ने उसी दिन से आजन्म मांस-मछली भक्षण का त्याग कर दिया।

संघ बारसोई की ओर बढ़ रहा था। यह बारसोई (पूर्णिया) वही स्थान है जहाँ अब से ६० वर्ष पूर्व, संघ संचालिका आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का गृहस्थावस्था में विवाह और अनन्तर पतिवियोग हुआ था। आपके गृहस्थावस्था के भाई एवं पाटनीपरिवार के अन्य भी कई सदस्य यहां निवास करते हैं।

बारसोई

विक्रम संवत् २०३०, फागण वदी दसमी दिनाङ्क १६-२-७४ शनिवार को आर्यिका संघ बारसोई पहुँचा। बारसोई का मन्दिर दर्शनीय है। भगवान पार्श्वनाथ की दिव्याभा युक्त चमत्कारी प्रतिमा है। पाषाण व सर्वधातु की अन्य प्रतिमाएँ भी हैं। धर्मशाला आदि का स्थान भी सुन्दर है। धर्मप्राण गुरुभक्त श्रावकों के

३० घर हैं। संघ के वहां विराजने से शान्तिविधान, ऋषिमण्डल विधान, रविव्रतविधान, नवग्रह विधान आदि विधान हुए तथा णमोकार मन्त्र, भक्तामर स्तोत्र, ऋषिमण्डल स्तोत्रादि के जाप व अखण्ड पाठ किये गए। शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पंचामृताभिषेक पूजन प्रतिदिन सोत्साह सम्पन्न होते थे।

मातेश्वरी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी की विशेष प्रेरणा से 'महावीर जयन्ती' दिवस पर पहली बार श्रीजी की पालकी निकाली गई। समारोह में भगवान महावीर के जीवन के विविध पक्षों पर अनेक वक्ताओं ने प्रकाश डाला। भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट अहिंसा अनेकान्त और अपरिग्रह के सिद्धान्तों को अपनाने से ही सुख और शान्ति हो सकती है।

बैसाख कृष्णा चतुर्दशी दिनाङ्क २१-४-७४ को मेरा (सुपार्श्वमती का) और आर्यिका सुप्रभामतीजी का केशलोच हुआ। इस अवसर पर किशनगंज, कानकी, धुवड़ी, डेह, रायगंज, धुलियान आदि स्थानों के अनेक नर-नारी सम्मिलित हुए। केशलोच की क्रिया देखकर स्थानीय लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे—"जिस प्रकार किसान खेत में उगी फालतू घास को उखाड़ फेंकता है उसी प्रकार माताजी निर्भय होकर केशों को उखाड़ रहे हैं। वास्तव में सच्चे त्यागी तपस्वी साधु तो ये ही हैं। ये जगत की माता हैं।" अनेक वक्ताओं के सामयिक भाषण हुए।

आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी बालक-बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा देती थीं, बालक-बालिकाओं की परीक्षा भी ली गई। बच्चों का उत्साह बढ़ाने के लिए पारितोषिक भी दिये गए।

संघ के उपदेश से जैनाजैन जनता पर काफी प्रभाव पड़ा। मद्य, मांस, रात्रिभोजन त्याग तथा पानी छान कर पीने की प्रतिज्ञायें कई लोगों ने की।

श्री पूनमचन्दजी पाटनी ने दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। श्री कँवरीलालजी पाटनी की धर्मपत्नी टीकी बाई ने पाँचवीं प्रतिमा के व्रत लिये।

संघ के अपने यहाँ पधारने के लिये कानकी, किशनगंज आदि स्थानों के धर्मबन्धु आते रहते थे, बाहर से पधारने वालों के लिये समाज की ओर से भोजन और आवास की सुन्दर व्यवस्था थी। संघ यहां ७५ दिन ठहरा, कुछ आश्चर्य भी घटित होने से धर्म की विशेष प्रभावना हुई।[1]

---

१. ❀ मन्दिर के प्रांगण में जहां आर्यिका संघ ठहरा था, समीप ही एक आम का पेड़ था जो कई वर्षों से फलहीन था परन्तु दिगम्बर साधुओं के प्रभाव से वह निष्फल आम्रवृक्ष भी सफल हो गया। वह खूब फला।

❀ श्री सम्पतलाल पाटनी के मकान में आग लग गई, भीषण लपटें उठने लगीं। हवा बहुत तेज चल रही थी, गांव में हाहा कार मच गया परन्तु आर्यिका सुपार्श्वमतीजी द्वारा दिया हुआ मंत्रित जल छिड़कने पर अग्नि सहसा शान्त हो गई। —सं०

बैसाख शुक्ला चतुर्दशी दिनाङ्क ५–४–७४ को प्रात:काल विदाई समारोह में अनेक स्त्रीपुरुषों के नेत्रों से जलधारा प्रवाहित हो चली। आबाल वृद्ध संघ को पहुँचाने के लिये बारसोई घाट (स्टेशन) तक आये। यहां से सुदानी, दिलखोला गये। वहां पर प्रवचन आयोजित हुआ। अग्रवाल ओसवाल समाज भी काफी संख्या में एकत्र हुआ था। आहार की क्रिया देखकर एवं प्रवचन सुनकर सभी प्रभावित हुए। संघ को यहां रोकने का बहुत प्रयास किया गया परन्तु कानकी पहुँचने का निश्चय पहले ही कर चुके थे अत: वहां से विहार किया। ओसवाल बंधु भी काफी दूर तक साथ २ आए।

कानकी प्रवेश से पूर्व—आर्यिका संघ

ज्येष्ठ कृष्णा दूज दिनाङ्क ८–५–७४ को प्रात:काल कानकी ग्राम में प्रवेश हुआ। प्रवेश के समय किशनगंज, बारसोई, रायगंज, दिलखोला आदि स्थानों के श्रावक-श्राविकाओं के आगमन से बहुत भीड़ हो गई थी। जय जयकारों से आकाश गुंजित हो रहा था। कहीं पुष्पों की वर्षा हुई तो कहीं आरती उतारी गई। जनता में मानो उत्साह का समुद्र हिलोरें ले रहा था। मन्दिर के प्रांगण में अनेक वक्ताओं ने चारों आर्यिकाओं का परिचय दिया, दिगम्बर जैन साधु-साध्वियों की क्रियाओं का विवेचन हुआ। आर्यिकाओं के भी भाषण हुए।

सैकड़ों वर्षों में दिगम्बर जैन साधुओं का पहली वार आगमन होने से जैनाजैन जनता काफी प्रभावित हुई और अधिकांश ने यथाशक्ति व्रत नियम ग्रहण किये। श्री दिगम्बर जैन मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ की काले पाषाण की प्राचीन मूर्ति है। सप्तधातु की अन्य मूर्तियां भी हैं। श्री दिगम्बर जैन समाज के ३६ घर हैं। सभी गुरुभक्त और धर्मप्रेमी हैं।
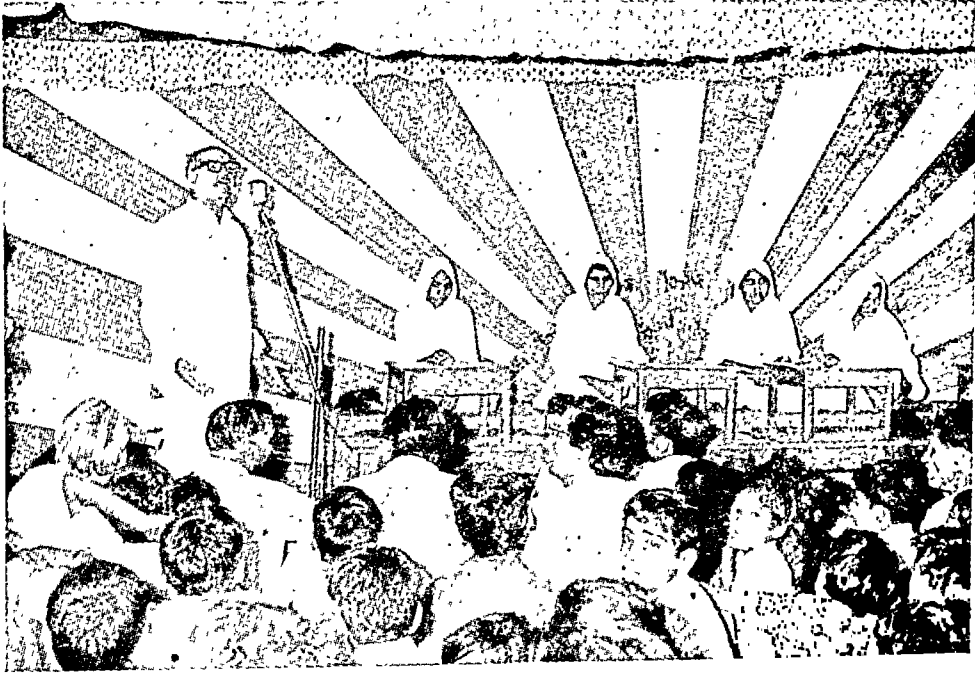
कानकी स्वागत समारोह
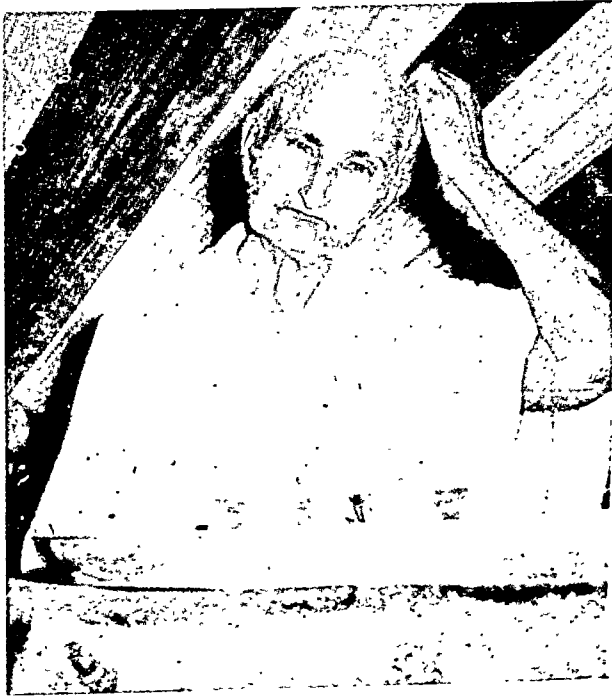
आर्यिका इन्दुमतीजी केशलोच करते हुए

ज्येष्ठ कृष्णा छठ दिनाङ्क १२-५-७४ को मन्दिरजी के पण्डाल में पूज्य श्री १०५ इन्दुमतीजी और आर्यिका विद्यामतीजी का केशलोच समारोह आयोजित हुआ। समीप के स्थानों के सहस्रों जैन अजैन नर-नारी सम्मिलित हुए। आर्यिकाओं की केशलोच क्रिया को देख कर दर्शनार्थी बन्धु चकित-विस्मित हुए। सबके चेहरों पर यही भाव था—"कि अपना तो एक बाल उखड़ जाए तो रूं (बाल) तोड़ हो जाता है एवं कितना दर्द होता है परन्तु ये तपस्विनियां तो केशों को जल्दी-जल्दी उखाड़ फेंक रही हैं और

इनके मन में और चेहरे पर भी कहीं कोई शिकन तक नहीं। धन्य है ऐसे साधुओं को।"[1]

श्रुतपञ्चमी विधान, २४ घण्टे तक अखण्ड भक्तामर स्तोत्र पाठ, शान्ति-विधान आदि अनुष्ठान भी हुए। डेह निवासी श्री गिरधारीमलजी पाटनी के गुरुभक्त, दृढ़ श्रद्धानी सुपुत्र श्री धन्नालालजी ने णमोकार महामन्त्र के ६१ लाख जाप किए, २४ घण्टे तक अखण्ड पाठ भी किया उनके घर पर ही पंच परमेष्ठी विधान भी हुआ—पूजन हवन में २८ स्त्री-पुरुषों ने सम्मिलित हो कर आर्यिका संघ के सान्निध्य में अतिशय पुण्यार्जन किया।[2]

आर्यिका विद्यामतीजी केशलोच करते हुए

साध्वी संघ लगभग डेढ़ माह तक यहाँ रुका। जैन धर्म की प्रभावना हुई। जैनाजैन नर नारियों ने तरह-तरह के व्रत नियम ग्रहण कर धर्म के प्रति विशेष रुचि दर्शाई एवं गुरुभक्ति का परिचय दिया।

३२ वाँ वर्षायोग :

किशनगंज में वर्षायोग करने हेतु श्रावकों ने कई बार आग्रह किया। श्रीमान् चाँदमलजी पाण्ड्या, गुलाबचन्दजी चान्दुवाड, प्रेमसुखजी पाण्ड्या, कुन्थीलालजी आदि के विशेष आग्रह से और श्री डूंगरमलजी सबलावत की प्रेरणा से धर्मसाधन का उपयुक्त क्षेत्र जान कर किशनगंज में वर्षायोग सम्पन्न करने की स्वीकृति पूज्य बड़े माताजी द्वारा दी गई।

---

१. इस अवसर पर आर्यिका सुपार्श्वमतीजी का 'ॐ' व 'केशलोच' विषय पर अतिशय प्रभावशाली ओजस्वी प्रवचन हुआ। लगभग दो घण्टे तक कार्यक्रम चला। श्रोता मन्त्रमुग्ध हो देखते-सुनते रहे। सबने आर्यिकाओं की तपश्चर्या, निर्भीकता और विद्वत्ता की प्रशंसा की।

२. आर्यिकाओं के परिचय पूजन आरती की लघु पुस्तक भी इस अवसर पर प्रकाशित हुई थी। —सं०

दिनाङ्क २२–६–७४ आषाढ़ शुक्ला एकम् को कानकी से आर्यिका संघ का विहार हुआ। विदावेला नर नारियों के अश्रुओं से स्नात थी। नदी का पानी और धर्म का प्रवाह तो निरन्तर आगे बढ़ता ही रहता है, एक स्थान पर ठहरने में गन्दा हो जाता है। आबालवृद्ध सभी किशनगंज तक साथ आए।

प्रान्त के अन्य स्थानों की भांति यहां भी नगर प्रवेश के समय उत्साहित अपार भीड़ ने साध्वी संघ का स्वागत किया। अपने नगर में प्रथम बार दिगम्बर साधुओं के आगमन से जन-मन में विशेष हर्षोल्लास था।

विक्रम संवत् २०३१ भाद्रपद कृष्णा पंचमी दिनाङ्क ८–८–७४ को चारों आर्यिकाओं का एक साथ केश लोच हुआ। विशाल पण्डाल में विराट जनसमुदाय के बीच साध्वियों के केशलोच की क्रिया देखकर सब चकित थे। साधुओं के वैराग्य, तप-त्याग और संयम की चर्चा जन-जन के मुख पर थी। विशेष धर्मप्रभावना हुई। अनेक स्त्री पुरुषों ने व्रत नियम ग्रहण कर आत्मकल्याण में रुचि दर्शाई।[1]

वर्षायोग के दौरान अनेक प्रकार के विधान, अनुष्ठान, वर्णी जयन्ती, आचार्य वीरसागर समाधिदिवस, आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का दीक्षा दिवस, महावीर निर्वाण महोत्सव आदि विविध समारोह भी समय समय पर आयोजित हुए।

गौहाटी के धर्मप्रेमी गुरुभक्त श्रावकों ने साध्वी संघ का चातुर्मास गौहाटी में कराने का मानस बनाया। राय साहब श्री चाँदमलजी पाण्ड्या व मिश्रीलालजी बाकलीवाल ने किशनगंज से गौहाटी तक संघ को पहुँचाने का दायित्व अपने ऊपर लिया। सबकी यह भावना थी कि आसाम में सैकड़ों वर्षों से दिगम्बर साधुओं का आगमन नहीं हुआ है, अब पुण्ययोग से साध्वी संघ का विहार हो रहा है, यदि एक चातुर्मास गौहाटी शहर में हो जाए तो अहिंसा धर्म की महती प्रभावना होगी। इसी मानस के साथ अनेक श्रावक-श्राविकाएँ कार्तिक मास में यहां आगामी चातुर्मास के सम्बन्ध में निवेदन करने आए। सबने विशेष आग्रह के साथ प्रार्थना की।

पूज्य माताजी ने विविध परिस्थितियों को देखते हुए विचार-विमर्श करके (वास्तव में, इस प्रान्त में जैनधर्म का व अहिंसा का प्रचार होगा, अनेक लोग सत्पथ पर लगेंगे, आत्मकल्याण की रुचि जाग्रत होगी आदि-आदि) गौहाटी में वर्षायोग करने का आश्वासन दिया।

---

१. आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी दशलक्षण व्रत करते हुए भी प्रतिदिन प्रवचन देती थीं और श्रोताओं की शंकाओं का समाधान करती थीं। बोलती हुई माताजी साक्षात् [illegible] प्रतीत होती थीं।

कवल चन्द्रायण व्रत :

अवमौदर्य तप में 'कवलचन्द्रायण व्रत' भी है। इस व्रत को किसी भी माह में किया जा सकता है परन्तु माह तीस दिन का होना चाहिए। यह व्रत अमावस्या से प्रारम्भ किया जाता है। अमावस्या के दिन उपवास करना चाहिए। प्रतिपदा को एक ग्रास, द्वितीया को दो ग्रास इस तरह वृद्धि करते करते चतुर्दशी के दिन चौदह ग्रास और पूर्णिमा को उपवास करना चाहिए। पुनः प्रतिपदा के चौदह ग्रास, द्वितीया के दिन तेरह ग्रास आदि क्रमशः एक-एक ग्रास कम करते-करते चतुर्दशी के दिन एक ग्रास, फिर अमावश्या को उपवास करना चाहिए। यह व्रत अवमौदर्य तप (भूख से कम खाना) में महान् है। क्रिया कोश, हरिवंश पुराण आदि में इस व्रत का विस्तृत वर्णन मिलता है। जैन व्रत कथाकोश में भी कथा का वर्णन एवं व्रत का फल लिखा है।

इस व्रत का प्रचार दक्षिण प्रान्त में बहुत है। मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका सभी इसे करते हैं तथा मण्डल विधानादि उत्सव करके धर्म की प्रभावना करते हैं। उत्तर प्रान्त में कुछ कारण वश क्रियाओं का लोप हो गया है। वृहत् विधि विधान कवलचन्द्रायण व्रत आदि का नाम सुनकर भी आश्चर्य करते हैं। सर्व प्रथम यह व्रत बाहुवली स्वामी तथा ब्राह्मी सुन्दरी ने किया था।

कई वर्षों से मेरी भावना यह व्रत करने की थी परन्तु पू० बड़े माताजी स्वीकृति नहीं देती थीं। विशेष आग्रह करने पर कृपालु माताजी ने आसोज कृष्णा १५ से 'कवलचन्द्रायण' व्रत करने की स्वीकृति मुझे प्रदान की तो मेरा मन प्रफुल्लित हो उठा। जब इस व्रत की महिमा का भान हुआ तो हमारे साथ ही श्रीमती सरस्वती देवी, (धर्मपत्नी श्री मोतीलालजी पाण्ड्या, कानकी), श्री टीकी बाई (मातेश्वरी महावीर प्रसाद पाटनी, बारसोई), श्रीमती चनादेवी (धर्मपत्नी भंवरीलालजी पाटनी, किशनगंज), श्रीमती विमला देवी (धर्मपत्नी मूलचन्दजी चूड़ीवाल, कानकी), सुश्री हेमाकुमारी (सुपुत्री श्री लालचन्दजी काला, धुलियान) ने भी व्रत करके पुण्योपार्जन किया।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या—भगवान महावीर के निर्वाण दिवस पर यह व्रत पूर्ण हुआ। विधान आदि मांड कर विधिपूर्वक पूजन की गई, पूजा में अनेक स्त्रीपुरुष सम्मिलित हुए। व्रत का माहात्म्य बताया गया जिससे धर्म की काफी प्रभावना हुई।

कुछ दिनों बाद आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी के गृहस्थावस्था के पिता श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल सुजानगढ़ निवासी अपने पुत्रों और पुत्रवधुओं के साथ आए। माताजी इन्दुमतीजी की विशेष प्रेरणा से अष्टाह्निका में 'श्री वृहत् सिद्धचक्र विधान' करने के भाव हुए। श्री चाँदमलजी पाण्ड्या, श्री गुलाबचन्दजी चाँदुवाड, श्री कुन्थुलालजी आदि ने 'वृहत् सिद्धचक्र विधान' में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया। सभी के सहयोग से 'विधान' की तैयारियाँ प्रारम्भ हुईं। आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामाताजी ने कलापूर्ण मण्डल की रचना की। इस कलापूर्ण अलंकृत रचना को देखकर सभी ने माताजी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

पूजन विधान में ५१ नर नारियों ने सम्मिलित होकर विशेष पुण्यार्जन किया। सारी क्रियायें शास्त्रोक्त विधिविधान पूर्वक सम्पन्न हुई। माताजी का उपदेश प्रतिदिन होता था। साढ़े तीन लाख से भी अधिक जाप हुए; अन्त में हवन हुआ जिसमें ८१ नर-नारियों ने भाग लिया। इस शान्ति यज्ञ के दर्शनार्थ अजैन जनता भी काफी आई।

भगवान की सवारी हाथी पर निकाली गई। इन्द्र इन्द्राणियां भी सेवा रत थे। आस-पास के गांवों से सैकड़ों लोग सम्मिलित हुए। शान्ति यज्ञ समारोह के दिनों में दरिद्र भाई बहनों को भोजन भी कराया गया। किशनगंज में आर्यिका संघ का वर्षायोग बंगाल बिहार की सीमा होने से तथा आसाम जाने के लिए प्रमुख मार्ग होने के कारण विशेष प्रभावक रहा। अनेक लोगों ने धर्मोपदेश सुना तथा जैनाजैन भाई बहनों ने सामर्थ्यानुसार व्रत नियम लिये।

इसी बीच चारों आर्यिकाओं का केशलोच एक साथ होने से एक विशेष समारोह हुआ।

वासनानुदये भोग्ये, वैराग्यस्य परोऽवधिः।
अहंभावोदयाभावो, वोधस्य परमोऽवधिः॥

❀ भोग्य वस्तुओं के प्रति वासना का उदय न होना वैराग्य की चरमसीमा है तथा अहंभाव के उदय का अभाव होना ज्ञान की परम अवधि है।

१४

आसाम की ओर

किशनगंज वर्षायोग के बाद वि० सं० २०३१ मंगसर कृष्णा दसमी दिनाङ्क ८–१२–७४ रविवार को आर्यिका संघ ने आसाम की ओर विहार किया। गौहाटी से अनेक स्त्री पुरुष संघ को ले जाने के लिए आये। राय सा० श्री चाँदमलजी पाण्ड्या का अकस्मात् ही स्वर्गवास हो जाने से संघ संचालक श्री मिश्रीलालजी बाकलीवाल अपनी धर्मपत्नी सहित गौहाटी की टोली का नेतृत्व कर रहे थे। साथ में किशनगंज, कानकी, बारसोई आदि के लोग भी थे जिससे विशाल संघ के कारण धर्म की प्रभावना होती थी क्योंकि दिगम्बर साधुओं का इस क्षेत्र में यह विहार पहला ही था।

किशनगंज से विहार करके संघ ने सैकड़ों नर-नारियों के साथ डेह निवासी श्री नूत्र-चन्दजी मानकचन्दजी पाटनी के मकान व गोदाम में रात्रि विश्राम किया। प्रातः काल आहार लेकर सैकड़ों भक्तों के साथ विहार करके सात मील दूर पर कालीमाई गाँव में रात्रि विश्राम किया। सुबह तड़के ही वहां से विहार कर सात मील पर स्थित खरखरी गाँव में आहार लिया। आहार के बाद विहार कर सायंकाल छत्रगाँव में पहुँचे। दूसरे दिन डांगावस्ती पहुँच कर आहार लिया। मंगसर कृष्णा चतुर्दशी दिनाङ्क १२–१२–७४ बुधवार को प्रातः संघ ने ठाकुरगंज में प्रवेश किया। यहां पर दिगम्बर जैन समाज के २० घर हैं और एक चैत्यालय है। लोगों ने अपूर्व स्वागत किया, प्रवचन के समय जैनाजैन जनता अच्छी संख्या में उपस्थित होती थी। कई भद्रजनों ने व्रत नियम ग्रहण किए।

ठाकुरगंज से मगसर शुक्ला तीज दिनाङ्क १६–१२–७४ सोमवार को आहार के बाद चल कर रात्रि विश्राम बंगाल बोर्डर पर किया। प्रातः काल विहार करके अधिकारी में आहार लिया

रात्रि विश्राम हेतु हाथीघीसा पहुँचे। दूसरे दिन वहां से चल कर सिलीगुड़ी के बाहर एक धान्य गोदाम में रात्रि विश्राम किया।

सिलीगुड़ी में सुजानगढ़ निवासी श्री प्रसन्न कुमारजी पाण्डया का घर एवं परिवार है। श्वेताम्बर समाज के लगभग १०० घर हैं; अग्रवाल महेश्वरी समाज भी काफी है। सभी लोग भक्तिमान हैं। सबने सैकड़ों की संख्या में आकर मगसर शुक्ला छठ दिनाङ्क १६-१२-७४ गुरुवार को प्रातः काल संघ की अगवानी की। हर्षोल्लास पूर्वक संघ का अपूर्व स्वागत हुआ। सारे समाज की एकता मन को हर्षित कर रही थी।

दिनाङ्क २२-१२-७४ रविवार को भव्य रथयात्रा निकाली गई जिसमें वीरप्रभु विराजमान थे। उत्तरी बंगाल जैन परिषद् का विशेष सहयोग रहा। ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी आदि समस्त स्थानीय जैनेतर समाज तथा किशनगंज, कानकी, वारसोई, ठाकुरगंज, चगड़ावादा, जलपाईगुड़ी, मैनागुड़ी, माथाभागा, दीनहट्टा, वरपेटा, गौहाटी आदि स्थानों के करीब ८०० स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए। कुल मिला कर लगभग ५००० लोग रथयात्रा में थे। श्रीजी की इस शोभायात्रा को नगर के इतिहास में उल्लेखनीय कहा जाना चाहिए। जनता में अनुपम उल्लास था, नभमण्डल जय जयकारों से निनादित। पण्डाल में प्रतिदिन दोनों समय प्रवचन होता था। जनता ने विशेष रुचि दिखा कर यथाशक्ति व्रत नियम अंगीकार किये।

दिनाङ्क २३-१२-७४ सोमवार को आहार के वाद सामायिक करके मध्याह्न में विहार किया। रात्रिविश्राम दोमंजिला में करके दूसरे दिन का आहार फालाकाटा में हुआ। दिनाङ्क २५ दिसम्बर को जलपाइगुड़ी में प्रवेश किया। यहाँ एक दिगम्बर भाई का परिवार है; श्वेताम्बर समाज के ६० घर हैं। उन्होंने संघ का भारी स्वागत किया, दो दिन प्रवचन भी सुने और अनेक स्त्रीपुरुषों ने रात्रिभोजन का त्याग किया, पानी छान कर पीने का नियम लिया।

दिनाङ्क २६-१२-७४ गुरुवार को संध्या समय मैनागुड़ी पहुँचे। यहाँ गुरुभक्त उत्साही युवक सुजानगढ़ निवासी श्री इन्द्रचन्दजी पाटनी (फर्म चाँदमल धन्नालाल, कलकत्ता) रहते हैं; ओसवाल व महेश्वरी समाज के २०-२५ घर हैं। स्थानीय व वाहर से आए हुए स्त्रीपुरुषों ने प्रवेश के समय संघ का परम्परागत ढंग से भव्य स्वागत किया। अगवानी हेतु अनेक स्त्री पुरुष तीन मील पैदल चल कर पहुँचे थे। स्थानीय लोगों के विशेष आग्रह से संघ यहाँ तीन दिन ठहरा। प्रवचन भी हुए।

मैनागुड़ी से दिनाङ्क २९-१२-७४ रविवार को आहार के वाद विहार हुआ। २२ किलोमीटर चल कर चंगड़ावादा पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों का एक भी घर नहीं है। श्वेताम्बर समाज ने तथा अन्य जैनेतर जनता ने चार मील तक पैदल आकर संघ की अगवानी की। स्थानक में

३५०-४०० स्त्री पुरुष बच्चे एकत्र थे। स्थानीय महानुभावों की भक्ति व विशेष आग्रह के कारण वहां से विहार करना कठिन हो गया। साध्वियों के उपदेश हुए, अनेक छोटी-बड़ी व्यावहारिक शंकाओं का समाधान किया गया। समाधानों से सन्तुष्ट होने पर सामर्थ्यानुसार नियम भी लिये।

दिनाङ्क १–१–७५ को संघ जमालदा पहुँचा। यहां श्वेताम्बर भाइयों के सात घर हैं। उन्होंने भाव भीना स्वागत किया। यहां से चल कर रात्रिविश्राम मोहनपुरा में किया। ३ जनवरी को संघ माथाभागा पहुँचा। दीनहट्टा, कूचविहार आदि गाँवों के लोग भी स्वागत समारोह में सम्मिलित हुए यहां एक जैन मन्दिर है, दिगम्बर समाज के चार घर हैं, श्वेताम्बर भाई भी अच्छी संख्या में है। संघ के साथ-साथ गौहाटी, कानकी, बारसोई, किशनगंज आदि स्थानों के भी कई स्त्री-पुरुष बच्चे थे। डेह (आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी की जन्मभूमि) के इन्द्रचन्द जी पाटनी और मूलचन्दजी गंगवाल के परिवार यहां थे। 'णमोकार मन्त्र' का अखण्ड जाप्य, ऋषिमण्डलविधान तथा पंच परमेष्ठी विधानादि होने से काफी प्रभावना हुई। माताजी के उपदेशामृत से अनेक ने अशुद्ध जल का त्याग किया। श्वेताम्बर भाई बहनों ने रात्रि भोजन त्याग के नियम लिये। संघ यहां १५ दिन ठहरा। १७–१–७५ को विहार करके खूटी, सुक्तावाड़ी, दीवानहाट होते हुए संघ ने २०–१–७५ सोमवार को प्रातः ६ बजे दीनहट्टा में प्रवेश किया। संघ के आगमन से लोगों में भारी उत्साह था, आस पास के स्थानों से काफी लोग सम्मिलित हुए थे। यहां पर एक मन्दिर है और एक चैत्यालय भी। श्रावकों के २२ घर हैं। मन्दिर के प्रांगण में ही पण्डाल बना था। वहीं संघ ठहरा था। माताजी का प्रवचन होता था। मन्दिरजी में 'ऋषि मण्डल विधान' हुआ, णमोकार मंत्र का अखण्ड जाप्य भी। पण्डाल में 'पंच परमेष्ठी विधान' हुआ। सेठी चैत्यालय में नवग्रह विधान की पूजन हुई। मेरा (आ० सुपार्श्वमती) और आर्यिका सुप्रभामतीजी का केशलोच होने से जैनाजैन जनता पर दिगम्बर साधुओं की कठिन चर्या का प्रभाव पड़ा। सबने जैन साधुओं के तप त्याग चारित्र की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। अनेक स्त्री पुरुषों ने अशुद्ध जल का त्याग किया और व्रत नियम लिये।

यहां से विहार कर २१-२-७५ को रात्रि विश्राम दीवानहाट में किया। दूसरे दिन प्रातः ६ बजे संघ कूच विहार पहुँचा। जैनाजैन समाज स्वागत के लिए लालायित थी। सबकी ओर से एस० डी० ओ० (उपजिलाधीश) साहब ने साध्वीसंघ का अभिनन्दन किया। माताजी का सार-गर्भित भाषण सुनकर जनता गद्‌गद हो गई। श्री गणेशमलजी पाण्ड्या के यहां गृह चैत्यालय है। कूच विहार से २८-२-७५ को विहार कर शाम को चीला खाना पहुँचे। रात्रिविश्राम किया। यहां से तूफानगंज पहुँचे। आहार करने के बाद विहार करने की इच्छा थी परन्तु श्वेताम्बर भाइयों के विशेष आग्रह से रुकना पड़ा, दूसरे दिन विहार कर संघ बक्सीहाट पहुँचा। यहां दिगम्बर जैन एक ही परिवार है, घर में चैत्यालय भी है। यहां से कालडोबा, गोलकगंज के मार्ग से चल कर संघ ५-३-७५ को गौरीपुर पहुँचा।

गौरीपुर में दिगम्बर जैनों के सात घर हैं। माताजी के उपदेशामृत से प्रेरणा पाकर श्री कन्हैयालालजी कासलीवाल ने अपने घर पर 'महावीर चैत्यालय' बनाने की भावना व्यक्त की। चैत्यालय की स्थापना माताजी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। शान्तिविधान, नवग्रहविधान, पंच-परमेष्ठी विधान की पूजन ठाट-बाट से हुई। णमोकारमंत्र का अखण्ड जाप्य भी किया गया। आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी का केशलोच होने से विशेष प्रभावना हुई।

गौरीपुर से ता० १५-३-७५ को प्रातः काल विहार कर संघ ९ बजे धुवड़ी पहुँचा। श्रावकों ने सोत्साह अगवानी की। यहाँ पर एक मन्दिर है तथा ३०-३५ घर दिगम्बर भाइयों के हैं। पण्डाल बनाया गया था। माताजी मधुर वाणी में प्रवचन करती थीं। पण्डाल में सिद्धचक्र विधान तथा मन्दिरजी में श्री शान्तिविधान की पूजन हुई। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का केश-लोच हुआ जिससे अजैन जनता आश्चर्य करने लगी। दिगम्बर साधुओं की निर्मोहता और त्याग तपस्या सबकी चर्चा का विषय बनी। समाज की ओर से 'कंगला भोजन' का भी आयोजन हुआ। अनेक स्त्रीपुरुषों ने व्रत नियम ग्रहण किये।

दिनाङ्क २-४-७५ को संघ यहां से गौरीपुर लौटा। गौरीपुर से आलमगंज, मैनपुरी, नयाहाट होते हुए विलासीपाड़ा पहुँचे। यहां दो दिगम्बर जैन परिवार रहते हैं। ५-४-७५ को आहार लेकर संघ दोपहर में रवाना हुआ। पुरकीमारी स्कूल में रात को ठहरा; प्रातः काल ६-४-७५ को विहार कर ८ बजे कोकराझाड़ पहुँचा। यहाँ श्रावकों के तीन घर हैं। माताजी ने श्रावकों का प्राथमिक कर्त्तव्य देवदर्शन करना वताया। तत्काल ही श्री कंवरीलालजी पाण्ड्या ने अपने मकान पर चैत्यालय की स्थापना माताजी के कर कमलों द्वारा करवाई; शान्तिविधान हुआ।

दिनाङ्क ७-४-७५ को आहार के वाद कोकराझाड़ से संघ का विहार हुआ। वागुगांव पहुँच कर रात्रि को विश्राम किया। यहां ओसवाल समाज के आग्रह से संघ दिन भर रुका। सरावगियों का एक भी घर नहीं है। संध्या समय ५ वजे संघ वोगाई गाँव पहुँचा। यहां पर श्रावकों के चार घर हैं।

दिनाङ्क १०-४-७५ को वोगाई गाँव से चल कर विजनीरोड, माणिकपुर और गरभोग होते हुए १२-४-७५ की प्रातः ६ वजे वडपेटारोड़ पहुँचे। यहाँ ऋषिमण्डलविधान, नवग्रह विधान, शान्तिविधान आयोजित हुए। वेदी प्रतिष्ठा समारोह भी हुआ जिसका अंकुरारोपण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष एवं भगवान महावीर २५०० वां निर्वाण महोत्सव समिति के महामंत्री श्री लखमीचन्दजी जैन के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस प्रतिष्ठा पर आसाम के गांवों के अनेक नर नारियों ने सम्मिलित होकर असीम पुण्यार्जन किया। गौहाटी के

वड़पेटा रोड में जुलूस के साथ आर्यिका संघ

'श्री महावीर छात्र परिषद्' द्वारा जैनचित्रों की विशाल प्रदर्शनी लगाई गई जिसका उद्‌घाटन संघ संचालिका आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी माताजी ने किया। संघ का यहां कई दिनों तक प्रवास रहा। जैनाजैन जनता में धर्म की प्रभावना हुई।

१-५-७५ को संघ ने यहां से विहार किया। भवानीपुर व पाठशाला होता हुआ संघ टीहू पहुँचा। यहां मेरा केशलोच हुआ। जनता आश्चर्य करती रही, त्यागतपस्या की महिमा गाने लगी कि वास्तविक साधु तो दिगम्बर साधु-सन्त ही हैं। आसामियों और बंगालियों में से कुछ ने उपदेश सुनकर मांसभक्षण, मदिरापान और हिंसा करने का त्याग किया। 'अहिंसा सप्ताह' मनाया गया। विशाल रथयात्रा समारोह हुआ। चैत्यालय में 'शान्तिविधान' पूजन किया गया। यहां से संघ का विहार ६-५-७५ को हुआ। दूसरे दिन नलवाड़ी पहुँचा।

नलवाड़ी नगरपालिका के अध्यक्ष श्री लोहितचन्द्रदास ने आर्यिका संघ का स्वागत किया। प्रख्यात साहित्यकार व आसाम साहित्य सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री त्रिलोकीनाथ गोस्वामी ने उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए आर्यिका संघ के आगमन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में सारगर्भित भाषण दिया। संघ का स्वागत करने के लिए जैनाजैन जनता काफी संख्या में उपस्थित थी। यहाँ पंचपरमेष्ठी मण्डल विधान, ऋषिमण्डलविधान, शान्तिविधान, नवग्रहविधान एवं तीन-लोकमण्डल विधान सम्पन्न किये गए। श्री लखमीचन्दजी जैन ने तीन लोक मण्डल विधान का अंकुरारोपण किया था।

आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी तथा आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामतीजी का केश लोंच होने से विशेष धर्मप्रभावना हुई। साध्वियों के व्याख्यान सुनकर राष्ट्रभाषा विद्यापीठ के अध्यक्ष श्री प्रफुल्लकुमारशर्मा काफी प्रभावित हुए। उपस्थित समुदाय में से ८० प्रतिशत ने मद्य, मांस का त्याग करने का संकल्प लिया।

नलवाड़ी से गांगरापाड़ा होकर रंगिया पहुँचे। पूज्य माताजी के उपदेश से प्रेरणा प्राप्त कर पंच परमेष्ठी विधान, श्रुतपंचमी विधान, रथयात्रा एवं जलयात्रा आदि धार्मिक कार्य सम्पन्न हुए। प्रधान आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का केशलोच हुआ। जनता बहुत प्रभावित हुई।

रंगिया से १९-६-७५ को विहार कर संघ गौरेश्वर पहुँचा। यहां पर माताजी की प्रेरणा से 'श्री महावीर चैत्यालय' की स्थापना बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न हुई। यहां से २१-६-७५ को खारूपेटिया के लिए प्रस्थान किया।

दिनांक २३-६-७५ को खारूपेटिया पहुँचे। यहां ढाई द्वीप मण्डलविधान का अंकुरारोपण एवं महावीर सुपर मार्केट का शिलान्यास श्री लखमीचन्दजी जैन के कर कमलों द्वारा हुआ। यहां से ५-७-७५ को संघ ने विहार किया। टांगनी बागान, वाईहाटा, चारआली, भालुकवाड़ी होते हुए गौहाटी के उपनगर माली गाँव में पहुँचा। यहां हजारों नर-नारियों ने साध्वीसंघ का स्वागत किया। जगह-जगह स्वागतद्वार, तोरण द्वार बनाये गए थे। १०-७-७५ को गौहाटी में प्रवेश हुआ। सोनाराम हाई स्कूल के मैदान से एक विशाल शोभायात्रा निकली जिसमें हजारों जैनाजैन सम्मिलित थे। यह शोभायात्रा नगर के सभी प्रमुख मार्गों से होकर निकली जगह-जगह आर्यिकाओं का अभिनन्दन हुआ। संघ श्री दिगम्बर जैन मन्दिर के दर्शन कर ए० टी० रोड स्थित दिगम्बर जैन महावीर भवन पहुँचा। सभी नागरिकों ने संघ का हार्दिक अभिनन्दन किया।

किशनगंज से गौहाटी तक संघ को लाने का उत्तरदायित्व श्री चाँदमलजी पाण्ड्या एवं श्री मिश्रीलालजी वाकलीवाल ने स्वेच्छा से वहन किया था। रायसाहव श्री चांदमलजी पाण्ड्या का आकस्मिक निधन होने के वाद उनके परिवार के सदस्यों ने एवं विशेपतः श्री मिश्रीलालजी ने इस गरुतर उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। तन-मन-धन से की गई यह गुरुभक्ति प्रशंसनीय है।

३३ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३२ का वर्षायोग गौहाटी में सम्पन्न हुआ। विशेष धर्मप्रभावना हुई क्योंकि दिगम्बर जैन साध्वियों के आगमन का यह पहला अवसर था। जैनाजैन जनता के हृदय में परम भक्तिपूर्ण उल्लास था।

साध्वी संघ की प्रेरणा से एवं त्याग तपस्या के प्रभाव से पर्युषण पर्व पर ६५ स्त्री-पुरुषों ने दशलक्षण व्रत किए; इस तरह आत्मशुद्धि के इस महान् पर्व पर असीम पुण्योपार्जन किया।

दिनाङ्क २४-९-७५ को 'भगवान महावीर उद्यान में' आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी, आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी, आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामतीजी—तीनों का 'केशलोच' समारोह

आयोजित हुआ। लगभग दस हजार जनता ने यह वैराग्यपूर्ण दृश्य देखा। साधुओं के निर्ममत्व भाव ने, स्वदेह से भी इतनी विरक्ति ने सबको आश्चर्य चकित कर दिया।

आसाम के शिक्षामन्त्री हरेन्द्रनाथ तालुकदार, स्वास्थ्य मन्त्री गिरिन चौधरी, मूर्धन्य साहित्यकार डा० महेश्वर नियोग और शरद गोस्वामी तथा अन्य कई वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। सबका भाव यही था कि जैनधर्म के शाश्वत सिद्धान्तों—अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त-स्याद्वाद, वीतरागता, अनासक्ति को अपनाने पर ही विश्वशान्ति सम्भव है। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्रीमान् लखमीचन्दजी छाबड़ा ने साध्वियों का परिचय देते हुए दिगम्बर जैन साधुओं एवं आर्यिकाओं की चर्या एवं तपश्चर्या पर प्रकाश डाला।[1]

'भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव' का समापन समारोह भी इसी उद्यान में मनाया गया। समारोह की अध्यक्षता कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाले 'विश्वमित्र' के सम्पादक मालिक श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल ने की थी। मुख्य अतिथि थे आसाम के राज्यपाल श्री एल० पी० सिंह। महामंत्री श्री लखमीचन्द छाबड़ा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि भगवान महावीर के नाम पर सरकार द्वारा ऐसे ठोस कार्य होने चाहिए जिनकी स्मृति हजारों वर्षों तक बनी रहे।

कार्याध्यक्ष श्री भँवरलाल सरावगी ने महोत्सव वर्ष में हुए कार्यों का व्यौरा दिया और बताया कि ये सब ठोस कार्य हैं जो जनता के काम आयेंगे। उन्होंने आशा प्रकट की कि अगले वर्ष तक सरकार के सहयोग से 'भगवान महावीर कामर्स कालेज' भी प्रारम्भ हो सकेगा।

मुख्य अतिथि राज्यपाल श्री एल० पी० सिंह ने कहा कि जैनधर्म एक प्राचीन धर्म है। सभी धर्मों से पुराना है। उन्होंने भगवान महावीर और महात्मा गाँधी की चर्चा करते हुए कहा कि भगवान महावीर के उपदेशों को गाँधीजी ने अपने जीवन में उतारा था। वस्तुतः सत्य और अहिंसा पर चल कर ही मनुष्य कल्याण प्राप्त कर सकता है।

आसाम सरकार की प्रादेशिक समिति के कार्याध्यक्ष शिक्षामंत्री श्री हरेन्द्रनाथ तालुकदार ने कहा कि निर्वाण महोत्सव अभी समाप्त नहीं हुआ है। हमें अभी और भी कई ठोस एवं रचनात्मक कार्य करने हैं। सूर्य पहाड़ पर प्राप्त जैन प्रतिमाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने सरकार द्वारा वहाँ जमीन आदि दिए जाने तथा धार्मिक कार्य में हरसम्भव सहायता देने का आश्वासन दिया। तत्पश्चात् मेरा (सुपार्श्वमती) भाषण हुआ। मैंने जैनधर्म की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए भगवान महावीर के उपदेशों को जीवन में ढालना चाहिए इस बात पर बल दिया।

---

१. इस अवसर पर विदुषी आर्यारत्न १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी का "जैन धर्म की महत्ता" विषय पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण भी हुआ था।

—सं०

समारोह के अध्यक्ष कृष्णचन्द्रजी ने अपार जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा कि निर्वाणशताब्दी वर्ष में सूर्य पहाड़ पर जैन मूर्तियों का मिलना एक ऐतिहासिक घटना है; यह आसाम के जैन समाज के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वर्षायोग के काल में अनेक मण्डलविधान, अनुष्ठान हुए। 'अढ़ाई द्वीप का विधान' वृहत् रूप में होने से अच्छी प्रभावना हुई अजैन समुदाय में। रथयात्रामहोत्सव, आर्यिका माताओं का केशलोच समारोह, भगवान महावीर का २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव समारोह तथा समय-समय पर आयोजित सार्वजनिक सभाओं के माध्यम से आज जैनेतर समाज भी जिन धर्म की प्राचीनता, महत्ता और उपादेयता को समझने लगा है। शाश्वत सुखशान्ति का मार्गदर्शक, जिनेन्द्र प्रणीत यह धर्म है जो मंगल स्वरूप है—

केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

❀ **लोभी** : जो मन से चाहे, मुख से माँगे।

❀ **सन्तोषी** : जो मन में और की माँग रखते हुए भी मुख से न माँगे, वह सन्तोषी है।

❀ **तृप्त** : जिसे न मन से माँग है, न मुख से माँगता है अथवा मन व मुख दोनों से माँग रहित है, वह तृप्त है।

१५

अपूर्व प्रभावना

गौहाटी से १२५ मील दूर पर स्थित सूर्य पहाड़ पर अनेक खण्डित प्रतिमाएँ, चरण आदि बिखरे हुए हैं। पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तिका के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि सूर्य-पहाड़ पर जिन प्रतिमायें भी हैं। पुस्तिका को देख कर मन में उमंग हुई कि इस क्षेत्र का दर्शन किया जाए। वर्षायोग के बाद विहार कर पहले सूर्य पहाड़ को देखने गये।

सूर्य पहाड़ एक रमणीय स्थान है। पर्वत की गुफा में दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। एक प्रतिमा पर बैल का चिह्न है और दूसरी पर चक्र का चिह्न है। पर्वत पर इधर उधर देवियों की अनेक खण्डित मूर्तियां एवं विशाल काय पत्थर पड़े हुए हैं। सूर्य पहाड़ के समीप ही एक दूसरा पर्वत और है। इस पर एक देवी की काले पाषाण की खड्गासन मूर्ति है जिसके मस्तक पर सात फण हैं। मूर्ति मनोज्ञ है। उसी पहाड़ के पत्थर की बनी है। चार हाथ भी दिखाई देते हैं, कोई उन पर उपसर्ग कर रहा है ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव में क्या है, इसका कुछ निर्णय नहीं कर सके। यहां लगभग दो मील के घेरे में बहुत से चरण चिह्न, पत्थर, स्तूप आदि पड़े हैं देव-देवियों की खण्डित प्रतिमाएँ भी बिखरी पड़ी हैं। ऐसा लगता है कि पहले यहां कभी कोई विशेष रचना रही होगी।

किंवदन्ती है कि यहां पर कोई लेंगटा (नग्न) साधु रहता था। उनकी चरण रज से अनेक रोग शान्त हो जाते थे। वे साधु यहीं पर विलीन हो गए। यहां पर चरणपीठिका नामक शिला आज भी विद्यमान है। इसका इतिहास आसामी भाषा में है। समीप के गांवों में भी ऊँचे-ऊँचे दरवाजों के बड़े-बड़े पत्थर पड़े हैं, अनेक वापिकाएँ भी हैं।

इस क्षेत्र पर चार दिन रुके। आस-पास के सभी पर्वतों का सूक्ष्म अवलोकन भी किया। ऐसा लगा कि किसी समय यह जैन लोगों का स्थान रहा होगा। कारण विशेष से भग्न हुआ होगा, बिखरी हुई खण्डित मूर्तियां यही सोचने को प्रेरित करती हैं।

सूर्य पहाड़ से ग्वाल पाड़ा गए। यहां का जैन मन्दिर पहले दिगम्बर जैनों के अधिकार में था, अब श्वेताम्बर समाज के हाथ में है। यहाँ से विहार कर संघ विजयनगर पहुँचा।

विजयनगर के स्थान पर पहले पलासवाड़ी कस्बा था। पापकर्म के उदय से पलासवाड़ी ब्रह्मपुत्र की गोद में समा गया। पलासवाड़ी नष्ट हो गई; दिगम्बर जैनों के काफी घर थे। कुछ लोग गौहाटी चले गए, शेष ने विजयनगर नामक शहर बसाया। अधुना यहां दिगम्बर भाइयों के १०० घर हैं। जैन समाज ने यहां शिखरबंध नवीन जिनमन्दिर का निर्माण किया है, जो अतिशय भव्य है; आस-पास के क्षेत्रों में इस जैसा सुन्दर मन्दिर नहीं है।

मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ की अतिमनोज्ञ विशालकाय पद्मासन प्रतिमा है जिसके दर्शन करने से अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है, शरीर पुलकायमान हो जाता है और आनन्दातिरेक से आँखें अश्रु विमोचित करने लगती हैं। अभी तक इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्पन्न नहीं हुई थी; श्री जी को वेदी में विराजमान नहीं किया गया था अतः वहां के लोगों की तीव्र भावना हुई कि आर्यिका संघ के सान्निध्य में वेदीप्रतिष्ठा समारोह आयोजित करके भगवान को अवश्य विराजमान कर देना चाहिए। स्थानीय समाज ने एकत्र होकर प्रार्थना की कि मातेश्वरी हमें यहाँ वेदीप्रतिष्ठा करवानी है, आप इस सम्वन्ध में हमें मार्ग-दर्शन दीजिए। तव पूज्य वड़े माताजी ने कहा कि वेदी प्रतिष्ठा की अपेक्षा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवाओ तो वहुत अच्छा होगा। माताजी की प्रेरणा से समाज ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने का निश्चय किया। माघ शुक्ला नवमी से त्रयोदशी पर्यन्त (सं० २०३२) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। भगवान पार्श्वनाथ के विशाल विम्व को वेदी में विराजमान किया गया।

विजयनगर से डीमापुर :

दिनांक १७-२-७६ को विजयनगर से मंगल विहार हुआ। आंगमीया, कालुरवाड़ी, लक्ष्मीसर, खानापाड़ा, जोरावट, सोनाय, नेतड़ी होकर जागीरोड़ पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के तीन घर हैं, परन्तु चैत्यालय नहीं था। माताजी के उपदेशों से प्रभावित होकर वड़जात्या भवन में दिनांक २२-२-७६ को चैत्यालय की स्थापना की गई। यहां से विहार कर मुकन्दिया, धर्मतुल, अवधगुड़ी के मार्ग से रोहा पहुँचे। श्री पूनमचन्दजी कोठारी, डेहवालों के यहां रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन आहार के वाद विहार कर सेनमुवा, फुलोगुड़ी होकर २६-२-७६ को नौगांव पहुँचे। नौगांव में दिगम्बर जैनों के तीन-चार घर हैं, एक चैत्यालय है। श्वेताम्बर समाज के घर काफी हैं।

इस क्षेत्र पर चार दिन रुके। आस-पास के सभी पर्वतों का सूक्ष्म अवलोकन भी किया। ऐसा लगा कि किसी समय यह जैन लोगों का स्थान रहा होगा। कारण विशेष से भग्न हुआ होगा, बिखरी हुई खण्डित मूर्तियां यही सोचने को प्रेरित करती हैं।

सूर्य पहाड़ से ग्वाल पाड़ा गए। यहां का जैन मन्दिर पहले दिगम्बर जैनों के अधिकार में था, अव श्वेताम्वर समाज के हाथ में है। यहाँ से विहार कर संघ विजयनगर पहुँचा।

विजयनगर के स्थान पर पहले पलासवाड़ी कस्बा था। पापकर्म के उदय से पलासवाड़ी ब्रह्मपुत्र की गोद में समा गया। पलासवाड़ी नष्ट हो गई; दिगम्बर जैनों के काफी घर थे। कुछ लोग गौहाटी चले गए, शेष ने विजयनगर नामक शहर बसाया। अधुना यहां दिगम्बर भाइयों के १०० घर हैं। जैन समाज ने यहां शिखरबंध नवीन जिनमन्दिर का निर्माण किया है, जो अतिशय भव्य है; आस-पास के क्षेत्रों में इस जैसा सुन्दर मन्दिर नहीं है।

मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ की अतिमनोज्ञ विशालकाय पद्मासन प्रतिमा है जिसके दर्शन करने से अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है, शरीर पुलकायमान हो जाता है और आनन्दातिरेक से आँखें अश्रु विमोचित करने लगती हैं। अभी तक इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्पन्न नहीं हुई थी; श्री जी को वेदी में विराजमान नहीं किया गया था अत: वहां के लोगों की तीव्र भावना हुई कि आर्यिका संघ के सान्निध्य में वेदीप्रतिष्ठा समारोह आयोजित करके भगवान को अवश्य विराजमान कर देना चाहिए। स्थानीय समाज ने एकत्र होकर प्रार्थना की कि मातेश्वरी हमें यहाँ वेदीप्रतिष्ठा करवानी है, आप इस सम्वन्ध में हमें मार्ग-दर्शन दीजिए। तब पूज्य बड़े माताजी ने कहा कि वेदी प्रतिष्ठा की अपेक्षा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवाओ तो बहुत अच्छा होगा। माताजी की प्रेरणा से समाज ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने का निश्चय किया। माघ शुक्ला नवमी से त्रयोदशी पर्यन्त (सं० २०३२) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। भगवान पार्श्वनाथ के विशाल बिम्ब को वेदी में विराजमान किया गया।

विजयनगर से डीमापुर :

दिनांक १७-२-७६ को विजयनगर से मंगल विहार हुआ। आंगसीया, झालुकवाड़ी, लक्ष्मीसर, खानापाड़ा, जोरावट, सोनाय, खेतड़ी होकर जागीरोड़ पहुँचे। यहां दिगम्वर जैनों के तीन घर हैं, परन्तु चैत्यालय नहीं था। माताजी के उपदेशों से प्रभावित होकर वड़जात्या भवन में दिनांक २२-२-७६ को चैत्यालय की स्थापना की गई। यहां से विहार कर मुकरिया, धर्मतुला, अवधगुड़ी के मार्ग से रोहा पहुँचे। श्री पूनमचन्दजी कोठारी, डेहवालों के यहां रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन आहार के बाद विहार कर सेनसुवा, फुलोगुड़ी होकर २६-२-७६ को नौगांव पहुँचे। दिगम्बर जैनों के तीन-चार घर हैं, एक चैत्यालय है। श्वेताम्वर समाज के घर काफी हैं। नौगाँव से

भी आयोजित हुआ । भव्य रथ यात्रा निकली जिसमें अपर आसाम के बहुत लोग आए; अपूर्व धर्मप्रभावना हुई ।

जोरहाट से चलकर शिवसागर पहुँचे । यहाँ पर श्री नेमीचन्द जी[1] बाकलीवाल के घर में जिन चैत्यालय है । सारी व्यवस्था श्री नेमीचन्दजी व उनके पुत्रों की ओर से की गई थी । विशाल मण्डप बनाया गया था । प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं रात्रि में संघस्थ माताओं, ब्रह्मचारी आदि का भाषण होता था । जैन समाज व राजकीय सेवा रत लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा । अनेक लोगों ने मांस मदिरा आदि का त्याग किया दिगम्बर साध्वियों की चर्या देखकर अजैन लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था ।

यहाँ शिवसागर नामक विशाल जलाशय है; शिव का मन्दिर है । इसी स्थान पर आर्यिका इन्दुमती माताजी का केश लोच हुआ । रथयात्रा निकाली गई । धर्म की काफी प्रभावना हुई । संघ यहां एक सप्ताह रुका । यहां से फिर मुकटी पहुँचा । चाय बागान में दिगम्बर जैन भाई हैं; चैत्यालय भी है, यहां शान्तिविधान हुआ । यहाँ से संघ डिब्रूगढ़ पहुँचा । जैनाजैन जनता ने सोत्साह स्वागत किया । यहां दो जिनमन्दिर हैं । श्रावकों के ६० घर हैं । अच्छा उत्साह है सबमें । यहां केशलोच हुआ, रथयात्रा निकाली गई, जिससे धर्मप्रभावना अच्छी हुई । डिब्रूगढ़ में एक मास तक ठहर कर संघ ६-५-७६ को तिनसुकिया आया । स्वागत समारोह आयोजित हुआ । मारवाड़ी धर्मशाला में लगभग २००० नर-नारियों के समक्ष संघ का अभिनन्दन करते हुए तिनसुकिया नगरपालिका के अध्यक्ष श्री महानन्द हातीकाकती ने कहा कि आज का यह दिन हमारे लिए सदैव अविस्मरणीय रहेगा । आज आर्यिका संघ को अपने बीच पा कर हम गौरवान्वित हुए हैं हमारे हृदय इन पुनीत आत्माओं के आगमन से अत्यन्त प्रमुदित हो रहे हैं । मैं अपनी ओर से और सम्पूर्ण नगर की ओर से आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ ।

तिनसुकिया में श्रावकों के ३० घर हैं, जिनमन्दिर भी सुन्दर बना है । श्री हरकचन्दजी सेठी ने धर्मशाला में 'सिद्धचक्र विधान' सारे समाज के सहयोग से आयोजित किया जिससे अजैन लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा । माताजी के उपदेशों से आकृष्ट होकर अनेक भाई बहनों ने व्रत नियम ग्रहण किए । संघ यहां एक माह ठहर कर नाहरकटिया आदि अनेक गाँवों में भ्रमण करता सुनारी आया । श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल के तेल डिपो में ठहर कर वहां से संघ मडियानी पहुँचा । यहां पर दिगम्बर जैनों के ५ घर होने से चैत्यालय की स्थापना हुई । यहां से टिटफार के मार्ग से गोलाघाट पहुँचे ।

१: श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल आर्यिका विद्यामतीजी के गृहस्थावस्था के पिता हैं । धनाढ्य पिता की पुत्री समस्त परिग्रह का त्याग कर साध्वी बनी है, यह जानकर लोगों को बहुत विस्मय हुआ । —सं०

गौरीपुर में दिगम्बर जैनों के सात घर हैं। माताजी के उपदेशामृत से प्रेरणा पाकर श्री कन्हैयालालजी कासलीवाल ने अपने घर पर 'महावीर चैत्यालय' बनाने की भावना व्यक्त की। चैत्यालय की स्थापना माताजी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। शान्तिविधान, नवग्रहविधान, पंच-परमेष्ठी विधान की पूजन ठाट-बाट से हुई। णमोकारमंत्र का अखण्ड जाप्य भी किया गया। आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी का केशलोच होने से विशेष प्रभावना हुई।

गौरीपुर से ता० १५-३-७५ को प्रातः काल विहार कर संघ ९ बजे धुवड़ी पहुंचा। श्रावकों ने सोत्साह अगवानी की। यहाँ पर एक मन्दिर है तथा ३०-३५ घर दिगम्बर भाइयों के हैं। पण्डाल बनाया गया था। माताजी मधुर वाणी में प्रवचन करती थीं। पण्डाल में सिद्धचक्र विधान तथा मन्दिरजी में श्री शान्तिविधान की पूजन हुई। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का केश-लोच हुआ जिससे अजैन जनता आश्चर्य करने लगी। दिगम्बर साधुओं की निर्मोहता और त्याग तपस्या सबकी चर्चा का विषय बनी। समाज की ओर से 'कंगला भोजन' का भी आयोजन हुआ। अनेक स्त्रीपुरुषों ने व्रत नियम ग्रहण किये।

दिनाङ्क २-४-७५ को संघ यहां से गौरीपुर लौटा। गौरीपुर से आलमगंज, मैनपुरी, नयाहाट होते हुए विलासीपाड़ा पहुँचे। यहां दो दिगम्बर जैन परिवार रहते हैं। ५-४-७५ को आहार लेकर संघ दोपहर में रवाना हुआ। पुरकीमारी स्कूल में रात को ठहरा; प्रातः काल ६-४-७५ को विहार कर ८ बजे कोकराझाड़ पहुँचा। यहाँ श्रावकों के तीन घर हैं। माताजी ने श्रावकों का प्राथमिक कर्त्तव्य देवदर्शन करना बताया। तत्काल ही श्री कंवरीलालजी पाण्ड्या ने अपने मकान पर चैत्यालय की स्थापना माताजी के कर कमलों द्वारा करवाई; शान्तिविधान हुआ।

दिनाङ्क ७-४-७५ को आहार के बाद कोकराझाड़ से संघ का विहार हुआ। बासुगांव पहुँच कर रात्रि को विश्राम किया। यहां ओसवाल समाज के आग्रह से संघ दिन भर रुका। सरावगियों का एक भी घर नहीं है। संध्या समय ५ बजे संघ बोगाई गाँव पहुँचा। यहां पर श्रावकों के चार घर हैं।

दिनाङ्क १०-४-७५ को बोगाई गाँव से चल कर बिजनीरोड, माणिकपुर और गरभांग होते हुए १२-४-७५ की प्रातः ९ बजे बडपेटारोड़ पहुँचे। यहाँ ऋषिमण्डलविधान, नवग्रह विधान, शान्तिविधान आयोजित हुए। वेदी प्रतिष्ठा समारोह भी हुआ जिसका अंकुरारोपण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष एवं भगवान महावीर २५०० वां निर्वाण महोत्सव समिति के महामंत्री श्री लखमीचन्दजी जैन के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस प्रतिष्ठा पर आसाम के गांवों के अनेक नर नारियों ने सम्मिलित होकर असीम पुण्यार्जन किया। गौहाटी के

वड़पेटा रोड में जुलूस के साथ आर्यिका संघ

'श्री महावीर छात्र परिषद्' द्वारा जैनचित्रों की विशाल प्रदर्शनी लगाई गई जिसका उद्घाटन संघ संचालिका आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी माताजी ने किया। संघ का यहां कई दिनों तक प्रवास रहा। जैनाजैन जनता में धर्म की प्रभावना हुई।

१-५-७५ को संघ ने यहां से विहार किया। भवानीपुर व पाठशाला होता हुआ संघ टीहू पहुँचा। यहां मेरा केशलोच हुआ। जनता आश्चर्य करती रही, त्यागतपस्या की महिमा गाने लगी कि वास्तविक साधु तो दिगम्बर साधु-सन्त ही हैं। आसामियों और वंगालियों में से कुछ ने उपदेश सुनकर मांसभक्षण, मदिरापान और हिंसा करने का त्याग किया। 'अंहिसा सप्ताह' मनाया गया। विशाल रथयात्रा समारोह हुआ। चैत्यालय में 'शान्तिविधान' पूजन किया गया। यहां से संघ का विहार ९-५-७५ को हुआ। दूसरे दिन नलवाड़ी पहुँचा।

नलवाड़ी नगरपालिका के अध्यक्ष श्री लोहितचन्द्रदास ने आर्यिका संघ का स्वागत किया। प्रख्यात साहित्यकार व आसाम साहित्य सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री त्रिलोकीनाथ गोस्वामी ने उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए आर्यिका संघ के आगमन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में सारगर्भित भाषण दिया। संघ का स्वागत करने के लिए जैनाजैन जनता काफी संख्या में उपस्थित थी। यहाँ पंचपरमेष्ठी मण्डल विधान, ऋषिमण्डलविधान, शान्तिविधान, नवग्रहविधान एवं तीनलोकमण्डल विधान सम्पन्न किये गए। श्री लखमीचन्दजी जैन ने तीन लोक मण्डल विधान का अंकुरारोपण किया था।

आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी तथा आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामतीजी का केश लोंच होने से विशेष धर्मप्रभावना हुई। साध्वियों के व्याख्यान सुनकर राष्ट्रभाषा विद्यापीठ के प्रचारक श्री प्रफुल्लकुमारशर्मा काफी प्रभावित हुए। उपस्थित समुदाय में से ८० प्रतिशत ने मद्य, मांस का त्याग करने का संकल्प लिया।

नलवाड़ी से गांगरापाड़ा होकर रंगिया पहुँचे। पूज्य माताजी के उपदेश से प्रेरणा प्राप्त कर पंच परमेष्ठी विधान, श्रुतपंचमी विधान, रथयात्रा एवं जलयात्रा आदि धार्मिक कार्य सम्पन्न हुए। प्रधान आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का केशलोच हुआ। जनता बहुत प्रभावित हुई।

रंगिया से १९-६-७५ को विहार कर संघ गौरेश्वर पहुँचा। यहां पर माताजी की प्रेरणा से 'श्री महावीर चैत्यालय' की स्थापना बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न हुई। यहां से २१-६-७५ को खारूपेटिया के लिए प्रस्थान किया।

दिनांक २३-६-७५ को खारूपेटिया पहुँचे। यहां ढाई द्वीप मण्डलविधान का अंकुरारोपण एवं महावीर सुपर मार्केट का शिलान्यास श्री लखमीचन्दजी जैन के कर कमलों द्वारा हुआ। यहां से ५-७-७५ को संघ ने विहार किया। टांगनी बागान, बाईहाटा, चारआली, झालुकवाड़ी होते हुए गौहाटी के उपनगर माली गाँव में पहुँचा। यहां हजारों नर-नारियों ने साध्वीसंघ का स्वागत किया। जगह-जगह स्वागतद्वार, तोरण द्वार बनाये गए थे। १०-७-७५ को गौहाटी में प्रवेश हुआ। सोनाराम हाई स्कूल के मैदान से एक विशाल शोभायात्रा निकली जिसमें हजारों जैनाजैन सम्मिलित थे। यह शोभायात्रा नगर के सभी प्रमुख मार्गों से होकर निकली जगह-जगह आर्यिकाओं का अभिनन्दन हुआ। संघ श्री दिगम्बर जैन मन्दिर के दर्शन कर ए० टी० रोड स्थित दिगम्बर जैन महावीर भवन पहुँचा। सभी नागरिकों ने संघ का हार्दिक अभिनन्दन किया।

किशनगंज से गौहाटी तक संघ को लाने का उत्तरदायित्व श्री चाँदमलजी पाण्ड्या एवं श्री मिश्रीलालजी वाकलीवाल ने स्वेच्छा से वहन किया था। रायसाहब श्री चांदमलजी पाण्ड्या का आकस्मिक निधन होने के बाद उनके परिवार के सदस्यों ने एवं विशेषत: श्री मिश्रीलालजी ने इस गुरुतर उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। तन-मन-धन से की गई यह गुरुभक्ति प्रशंसनीय है।

३३ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३२ का वर्षायोग गौहाटी में सम्पन्न हुआ। विशेष धर्मप्रभावना हुई क्योंकि दिगम्बर जैन साध्वियों के आगमन का यह पहला अवसर था। जैनाजैन जनता के हृदय में परम भक्तिपूर्ण उल्लास था।

साध्वी संघ की प्रेरणा से एवं त्याग तपस्या के प्रभाव से पर्युषण पर्व पर ६५ स्त्री-पुरुषों ने दशलक्षण व्रत किए; इस तरह आत्मशुद्धि के इस महान् पर्व पर असीम पुण्योपार्जन किया।

दिनाङ्क २४-९-७५ को 'भगवान महावीर उद्यान में' आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी, आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी, आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामतीजी–तीनों का 'केशलोच' समारोह

आयोजित हुआ। लगभग दस हजार जनता ने यह वैराग्यपूर्ण दृश्य देखा। साधुओं के निर्ममत्व भाव ने, स्वदेह से भी इतनी विरक्ति ने सबको आश्चर्य चकित कर दिया।

आसाम के शिक्षामन्त्री हरेन्द्रनाथ तालुकदार, स्वास्थ्य मन्त्री गिरिन चौधरी, मूर्धन्य साहित्यकार डा० महेश्वर नियोग और शरद गोस्वामी तथा अन्य कई वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। सबका भाव यही था कि जैनधर्म के शाश्वत सिद्धान्तों—अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त-स्याद्वाद, वीतरागता, अनासक्ति को अपनाने पर ही विश्वशान्ति सम्भव है। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्रीमान् लखमीचन्दजी छाबड़ा ने साध्वियों का परिचय देते हुए दिगम्बर जैन साधुओं एवं आर्यिकाओं की चर्या एवं तपश्चर्या पर प्रकाश डाला।[1]

'भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव' का समापन समारोह भी इसी उद्यान में मनाया गया। समारोह की अध्यक्षता कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाले 'विश्वमित्र' के सम्पादक मालिक श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल ने की थी। मुख्य अतिथि थे आसाम के राज्यपाल श्री एल० पी० सिंह। महामंत्री श्री लखमीचन्द छाबड़ा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि भगवान महावीर के नाम पर सरकार द्वारा ऐसे ठोस कार्य होने चाहिए जिनकी स्मृति हजारों वर्षों तक बनी रहे।

कार्याध्यक्ष श्री भँवरलाल सरावगी ने महोत्सव वर्ष में हुए कार्यों का व्यौरा दिया और बताया कि ये सब ठोस कार्य हैं जो जनता के काम आयेंगे। उन्होंने आशा प्रकट की कि अगले वर्ष तक सरकार के सहयोग से 'भगवान महावीर कामर्स कालेज' भी प्रारम्भ हो सकेगा।

मुख्य अतिथि राज्यपाल श्री एल० पी० सिंह ने कहा कि जैनधर्म एक प्राचीन धर्म है। सभी धर्मों से पुराना है। उन्होंने भगवान महावीर और महात्मा गाँधी की चर्चा करते हुए कहा कि भगवान महावीर के उपदेशों को गाँधीजी ने अपने जीवन में उतारा था। वस्तुतः सत्य और अहिंसा पर चल कर ही मनुष्य कल्याण प्राप्त कर सकता है।

आसाम सरकार की प्रादेशिक समिति के कार्याध्यक्ष शिक्षामंत्री श्री हरेन्द्रनाथ तालुकदार ने कहा कि निर्वाण महोत्सव अभी समाप्त नहीं हुआ है। हमें अभी और भी कई ठोस एवं रचनात्मक कार्य करने हैं। सूर्य पहाड़ पर प्राप्त जैन प्रतिमाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने सरकार द्वारा वहाँ जमीन आदि दिए जाने तथा धार्मिक कार्य में हरसम्भव सहायता देने का आश्वासन दिया। तत्पश्चात् मेरा (सुपार्श्वमती) भाषण हुआ। मैंने जैनधर्म की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए भगवान महावीर के उपदेशों को जीवन में ढालना चाहिए इस बात पर बल दिया।

---

१. इस अवसर पर विदुषी आर्यारत्न १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी का "जैन धर्म की महत्ता" विषय पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण भी हुआ था।

—सं०

समारोह के अध्यक्ष कृष्णचन्द्रजी ने अपार जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा कि निर्वाणशताब्दी वर्ष में सूर्य पहाड़ पर जैन मूर्तियों का मिलना एक ऐतिहासिक घटना है; यह आसाम के जैन समाज के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वर्षायोग के काल में अनेक मण्डलविधान, अनुष्ठान हुए। 'अढ़ाई द्वीप का विधान' वृहत् रूप में होने से अच्छी प्रभावना हुई अजैन समुदाय में। रथयात्रामहोत्सव, आर्यिका माताओं का केशलोच समारोह, भगवान महावीर का २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव समारोह तथा समय-समय पर आयोजित सार्वजनिक सभाओं के माध्यम से आज जैनेतर समाज भी जिन धर्म की प्राचीनता, महत्ता और उपादेयता को समझने लगा है। शाश्वत सुखशान्ति का मार्गदर्शक, जिनेन्द्र प्रणीत यह धर्म है जो मंगल स्वरूप है—

केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

❀ **लोभी** : जो मन से चाहे, मुख से माँगे।

❀ **सन्तोषी** : जो मन में और की माँग रखते हुए भी मुख से न माँगे, वह सन्तोषी है।

❀ **तृप्त** : जिसे न मन से माँग है, न मुख से माँगता है अथवा मन व मुख दोनों से माँग रहित है, वह तृप्त है।

१५

अपूर्व प्रभावना

गौहाटी से १२५ मील दूर पर स्थित सूर्य पहाड़ पर अनेक खण्डित प्रतिमाएँ, चरण आदि बिखरे हुए हैं। पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तिका के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि सूर्य-पहाड़ पर जिन प्रतिमायें भी हैं। पुस्तिका को देख कर मन में उमंग हुई कि इस क्षेत्र का दर्शन किया जाए। वर्षायोग के बाद विहार कर पहले सूर्य पहाड़ को देखने गये।

सूर्य पहाड़ एक रमणीय स्थान है। पर्वत की गुफा में दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। एक प्रतिमा पर बैल का चिह्न है और दूसरी पर चक्र का चिह्न है। पर्वत पर इधर उधर देवियों की अनेक खण्डित मूर्तियां एवं विशाल काय पत्थर पड़े हुए हैं। सूर्य पहाड़ के समीप ही एक दूसरा पर्वत और है। इस पर एक देवी की काले पाषाण की खड्गासन मूर्ति है जिसके मस्तक पर सात फण हैं। मूर्ति मनोज्ञ है। उसी पहाड़ के पत्थर की बनी है। चार हाथ भी दिखाई देते हैं, कोई उन पर उपसर्ग कर रहा है ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव में क्या है, इसका कुछ निर्णय नहीं कर सके। यहां लगभग दो मील के घेरे में बहुत से चरण चिह्न, पत्थर, स्तूप आदि पड़े हैं देव-देवियां की खण्डित प्रतिमाएँ भी बिखरी पड़ी हैं। ऐसा लगता है कि पहले यहां कभी कोई विशेष रचना रही होगी।

किंवदन्ती है कि यहां पर कोई लेगटा (नग्न) साधु रहता था। उनकी चरण रज से अनेक रोग शान्त हो जाते थे। वे साधु यहीं पर विलीन हो गए। यहां पर चरणपीठिका नामक शिला आज भी विद्यमान है। इसका इतिहास आसामी भाषा में है। समीप के गांवों में भी ऊँचे-ऊँचे दरवाजों के बड़े-बड़े पत्थर पड़े हैं, अनेक वापिकाएँ भी हैं।

इस क्षेत्र पर चार दिन रुके। आस-पास के सभी पर्वतों का सूक्ष्म अवलोकन भी किया। ऐसा लगा कि किसी समय यह जैन लोगों का स्थान रहा होगा। कारण विशेष से भग्न हुआ होगा, बिखरी हुई खण्डित मूर्तियां यही सोचने को प्रेरित करती हैं।

सूर्य पहाड़ से ग्वाल पाड़ा गए। यहां का जैन मन्दिर पहले दिगम्बर जैनों के अधिकार में था, अब श्वेताम्बर समाज के हाथ में है। यहाँ से विहार कर संघ विजयनगर पहुँचा।

विजयनगर के स्थान पर पहले पलासवाड़ी कस्वा था। पापकर्म के उदय से पलासवाड़ी ब्रह्मपुत्र की गोद में समा गया। पलासवाड़ी नष्ट हो गई; दिगम्बर जैनों के काफी घर थे। कुछ लोग गौहाटी चले गए, शेष ने विजयनगर नामक शहर वसाया। अधुना यहां दिगम्बर भाइयों के १०० घर हैं। जैन समाज ने यहां शिखरबंध नवीन जिनमन्दिर का निर्माण किया है, जो अतिशय भव्य है; आस-पास के क्षेत्रों में इस जैसा सुन्दर मन्दिर नहीं है।

मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ की अतिमनोज्ञ विशालकाय पद्मासन प्रतिमा है जिसके दर्शन करने से अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है, शरीर पुलकायमान हो जाता है और आनन्दातिरेक से आँखें अश्रु विमोचित करने लगती हैं। अभी तक इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्पन्न नहीं हुई थी; श्री जी को वेदी में विराजमान नहीं किया गया था अतः वहां के लोगों की तीव्र भावना हुई कि आर्यिका संघ के सान्निध्य में वेदीप्रतिष्ठा समारोह आयोजित करके भगवान को अवश्य विराजमान कर देना चाहिए। स्थानीय समाज ने एकत्र होकर प्रार्थना की कि मातेश्वरी हमें यहाँ वेदीप्रतिष्ठा करवानी है, आप इस सम्वन्ध में हमें मार्ग-दर्शन दीजिए। तव पूज्य वड़े माताजी ने कहा कि वेदी प्रतिष्ठा की अपेक्षा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवाओ तो वहुत अच्छा होगा। माताजी की प्रेरणा से समाज ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने का निश्चय किया। माघ शुक्ला नवमी से त्रयोदशी पर्यन्त (सं० २०३२) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। भगवान पार्श्वनाथ के विशाल विम्ब को वेदी में विराजमान किया गया।

विजयनगर से डीमापुर :

दिनांक १७-२-७६ को विजयनगर से मंगल विहार हुआ। आंगमीया, कालुरवाड़ी, लक्ष्मीसर, खानापाड़ा, जोरावट, सोनाय, नेतड़ी होकर जागीरोड़ पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के तीन घर हैं, परन्तु चैत्यालय नहीं था। माताजी के उपदेशों से प्रभावित होकर बड़जात्या भवन में दिनांक २२-२-७६ को चैत्यालय की स्थापना की गई। यहां से विहार कर मुकन्दिया, धर्मतुल, अवधगुड़ी के मार्ग से रोहा पहुँचे। श्री पूनमचन्दजी कोठारी, डेहवान्नों के यहां रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन आहार के वाद विहार कर सेनमुवा, फुलोगुड़ी होकर २६-२-७६ को नौगांव पहुँचे। नौगांव में श्वेताम्बर समाज के घर काफी हैं। नौगांव में दिगम्बर जैनों के तीन-चार घर हैं, एक चैत्यालय है।

इस क्षेत्र पर चार दिन रुके। आस-पास के सभी पर्वतों का सूक्ष्म अवलोकन भी किया। ऐसा लगा कि किसी समय यह जैन लोगों का स्थान रहा होगा। कारण विशेष से भग्न हुआ होगा, बिखरी हुई खण्डित मूर्तियां यही सोचने को प्रेरित करती हैं।

सूर्य पहाड़ से ग्वाल पाड़ा गए। यहां का जैन मन्दिर पहले दिगम्बर जैनों के अधिकार में था, अब श्वेताम्बर समाज के हाथ में है। यहाँ से विहार कर संघ विजयनगर पहुँचा।

विजयनगर के स्थान पर पहले पलासवाड़ी कस्बा था। पापकर्म के उदय से पलासवाड़ी ब्रह्मपुत्र की गोद में समा गया। पलासवाड़ी नष्ट हो गई; दिगम्बर जैनों के काफी घर थे। कुछ लोग गौहाटी चले गए, शेष ने विजयनगर नामक शहर बसाया। अधुना यहां दिगम्बर भाइयों के १०० घर हैं। जैन समाज ने यहां शिखरबंध नवीन जिनमन्दिर का निर्माण किया है, जो अतिशय भव्य है; आस-पास के क्षेत्रों में इस जैसा सुन्दर मन्दिर नहीं है।

मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ की अतिमनोज्ञ विशालकाय पद्मासन प्रतिमा है जिसके दर्शन करने से अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है, शरीर पुलकायमान हो जाता है और आनन्दातिरेक से आँखें अश्रु विमोचित करने लगती हैं। अभी तक इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्पन्न नहीं हुई थी; श्री जी को वेदी में विराजमान नहीं किया गया था अतः वहां के लोगों की तीव्र भावना हुई कि आर्यिका संघ के सान्निध्य में वेदीप्रतिष्ठा समारोह आयोजित करके भगवान को अवश्य विराजमान कर देना चाहिए। स्थानीय समाज ने एकत्र होकर प्रार्थना की कि मातेश्वरी हमें यहाँ वेदीप्रतिष्ठा करवानी है, आप इस सम्बन्ध में हमें मार्ग-दर्शन दीजिए। तब पूज्य बड़े माताजी ने कहा कि वेदी प्रतिष्ठा की अपेक्षा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवाओ तो बहुत अच्छा होगा। माताजी की प्रेरणा से समाज ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने का निश्चय किया। माघ शुक्ला नवमी से त्रयोदशी पर्यन्त (सं० २०३२) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। भगवान पार्श्वनाथ के विशाल बिम्ब को वेदी में विराजमान किया गया।

विजयनगर से डीमापुर :

दिनांक १७-२-७६ को विजयनगर से मंगल विहार हुआ। आंगसीया, झालुकवाड़ी, लक्ष्मीसर, खानापाड़ा, जोरावट, सोनाय, खेतड़ी होकर जागीरोड़ पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के तीन घर हैं, परन्तु चैत्यालय नहीं था। माताजी के उपदेशों से प्रभावित होकर बड़जात्या भवन में दिनांक २२-२-७६ को चैत्यालय की स्थापना की गई। यहां से विहार कर मुकरिया, धर्मतुला, अवधगुड़ी के मार्ग से रोहा पहुँचे। श्री पूनमचन्दजी कोठारी, डेहवालों के यहां रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन आहार के बाद विहार कर सेनसुवा, फुलोगुड़ी होकर २६-२-७६ को नौगांव पहुँचे। नौगाँव से दिगम्बर जैनों के तीन-चार घर हैं, एक चैत्यालय है। श्वेताम्बर समाज के घर काफी हैं। नौगाँव से

भी आयोजित हुआ। भव्य रथ यात्रा निकली जिसमें अपर आसाम के बहुत लोग आए; अपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

जोरहाट से चलकर शिवसागर पहुँचे। यहाँ पर श्री नेमीचन्द जी[1] बाकलीवाल के घर में जिन चैत्यालय है। सारी व्यवस्था श्री नेमीचन्दजी व उनके पुत्रों की ओर से की गई थी। विशाल मण्डप बनाया गया था। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं रात्रि में संघस्थ माताओं, ब्रह्मचारी आदि का भाषण होता था। जैन समाज व राजकीय सेवा रत लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा। अनेक लोगों ने मांस मदिरा आदि का त्याग किया दिगम्बर साध्वियों की चर्या देखकर अजैन लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था।

यहाँ शिवसागर नामक विशाल जलाशय है; शिव का मन्दिर है। इसी स्थान पर आर्यिका इन्दुमती माताजी का केश लोच हुआ। रथयात्रा निकाली गई। धर्म की काफी प्रभावना हुई। संघ यहां एक सप्ताह रुका। यहां से फिर मुकटी पहुँचा। चाय बागान में दिगम्बर जैन भाई हैं; चैत्यालय भी है, यहां शान्तिविधान हुआ। यहाँ से संघ डिब्रूगढ़ पहुँचा। जैनाजैन जनता ने सोत्साह स्वागत किया। यहां दो जिनमन्दिर हैं। श्रावकों के ६० घर हैं। अच्छा उत्साह है सबमें। यहां केशलोच हुआ, रथयात्रा निकाली गई, जिससे धर्मप्रभावना अच्छी हुई। डिब्रूगढ़ में एक मास तक ठहर कर संघ ६-५-७६ को तिनसुकिया आया। स्वागत समारोह आयोजित हुआ। मारवाड़ी धर्मशाला में लगभग २००० नर-नारियों के समक्ष संघ का अभिनन्दन करते हुए तिनसुकिया नगरपालिका के अध्यक्ष श्री महानन्द हातीकाकती ने कहा कि आज का यह दिन हमारे लिए सदैव अविस्मरणीय रहेगा। आज आर्यिका संघ को अपने बीच पा कर हम गौरवान्वित हुए हैं हमारे हृदय इन पुनीत आत्माओं के आगमन से अत्यन्त प्रमुदित हो रहे हैं। मैं अपनी ओर से और सम्पूर्ण नगर की ओर से आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

तिनसुकिया में श्रावकों के ३० घर हैं, जिनमन्दिर भी सुन्दर बना है। श्री हरकचन्दजी सेठी ने धर्मशाला में 'सिद्धचक्र विधान' सारे समाज के सहयोग से आयोजित किया जिससे अजैन लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा। माताजी के उपदेशों से आकृष्ट होकर अनेक भाई बहनों ने व्रत नियम ग्रहण किए। संघ यहां एक माह ठहर कर नाहरकटिया आदि अनेक गाँवों में भ्रमण करता सुनारी आया। श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल के तेल डिपो में ठहर कर वहां से संघ मडियानी पहुँचा। यहां पर दिगम्बर जैनों के ५ घर होने से चैत्यालय की स्थापना हुई। यहां से टिटफार के मार्ग से गोलाघाट पहुँचे।

१: श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल आर्यिका विद्यामतीजी के गृहस्थावस्था के पिता हैं। धनाढ्य पिता की पुत्री समस्त परिग्रह का त्याग कर साध्वी बनी है, यह जानकर लोगों को बहुत विस्मय हुआ। —सं०

सदुपदेश से प्रभावित होकर नागालैंड के भूतपूर्व मन्त्री और कांग्रेस अध्यक्ष श्री होकिशे सेमा ने एक मास में सात दिन मांस खाने का त्याग करने का नियम लिया। इधर की अधिकांश जनता आमिष-भोजी है। अष्टाह्निका पर्व में विशेष प्रभावना पूर्वक श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान सम्पन्न हुआ। इसी बीच श्री शशि मेरिन योजना आयुक्त, नागालैंड के मुख्य आतिथ्य में आ० १०५ श्री विद्यामतीजी का केश लोच अपार जन समुदाय के समक्ष हुआ। सभी दर्शक जैन साधुओं की इस प्रवृत्ति से बड़े प्रभावित होते हैं, यहां भी दर्शकों ने अपार आश्चर्य व्यक्त करते हुए साध्वी श्री की निर्ममता और कष्ट सहिष्णुता की भरपूर प्रशंसा की। सबके मुँह से 'धन्य! धन्य!' शब्द निस्सृत हुए।

अनेक सार्वजनिक प्रवचन हुए जिनमें प्रान्त के गणमान्य व्यक्ति, सरकारी पदाधिकारी एवं मंत्रिगण सम्मिलित होते थे और कुछ-न-कुछ त्याग रूप नियम अवश्य लेते थे।

पर्वाधिराज दशलक्षण के पुनीत अवसर पर नाँदगाँव (नासिक) से पण्डित तेजपालजी काला, साहित्यरत्न; सहायक सम्पादक जैनदर्शन के पधारने से विशेष धर्मप्रभावना हुई। २७ भाई-बहनों ने अष्टाह्निका एवं दशलक्षण व्रत किए। भव्य रथ यात्रा का आयोजन हुआ। जैन समाज में विशेष जागृति हुई।

कार्तिक मास के अष्टाह्निका पर्व में 'त्रिलोक मण्डल विधान' की रचना होकर विधि-विधानपूर्वक पूजा हुई। कलात्मक विधान को देखने वालों का तांता लगा रहता था। सभी क्रियायें आगमोक्त रीत्या निर्विघ्नतया सम्पादित हुईं। अन्तिम दिन भगवान की सवारी निकाली गई।

विक्रम संवत् २०३३ के डीमापुर वर्षायोग में उस प्रतिकूल क्षेत्र में भी जैनधर्म, दर्शन और संस्कृति की अमिट छाप जन मानस पर पड़ी है। रुचिशील जीव आत्मकल्याण के मार्ग को समझने लगे हैं। समय-समय पर उन्हें ऐसा समागम और प्रेरणा प्राप्त होती रहे तो श्रमण संस्कृति अक्षुण्ण बनी रहेगी।

दिनांक २५-११-७६ को पूज्य १०८ श्री इन्दुमती माताजी आहार शुरु करते ही अकस्मात् अस्वस्थ हो गई। किन्तु श्रावकों ने माताजी के स्वास्थ्य लाभ हेतु णमोकार मंत्र का अखण्ड जाप चालू रखा, शान्तिविधानादि भी हुए। शनैः शनैः माताजी स्वस्थ हुईं। असाता कर्म क्षीण होकर साता का उदय आया।

वर्षायोग पूर्ण होने के बाद भी अनेक मण्डल विधान अनुष्ठानादि होते रहे। माताजी ने श्रावकों के कर्त्तव्यों पर विशेष प्रवचन दिए। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर श्री किशनलालजी सेठी ने गृह चैत्यालय की स्थापना की, श्री पन्नालालजी सेठी ने भी अपने घर पर चैत्यालय बनवाया।

संघ डीमापुर से विहार कर गौहाटी लौटा। इस यात्रा में २० दिन लगे। गुरुभक्त धर्मप्रेमी श्रावक सैकड़ों की संख्या में साथ थे। वृहत् सिद्धचक्र विधान हुआ। श्री सोहनलालजी

पाटनी ने अपने घर में चैत्यालय की स्थापना की। गौहाटी से विहार कर संघ विजयनगर आया। यहाँ विशाल दर्शनीय समोसरण की रचना की गई थी।

३५ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३४ का चातुर्मास यहीं विजयनगर में हुआ। चातुर्मास के बाद माघ माह के शुक्ल पक्ष में यहां एक और बिम्ब प्रतिष्ठा हुई। दो वर्षों में एक ही नगर में एक ही चबूतरे पर उसी ध्वज-रोपण स्थान में प्रतिष्ठा होने का यह प्रथम अवसर था। वहाँ की व्यवस्था देखकर लोग यह कहते थे कि ऐसा पंच कल्याणक महोत्सव कभी नहीं हुआ और न देखा। विपुल संख्या में लोग सम्मिलित हुए, धर्म की प्रभावना काफी हुई। सैकड़ों लोगों ने यथाशक्ति व्रतनियम ग्रहण किए।

विजयनगर से विहार कर रंगिया, नलबाड़ी, टिहू, पाठशाला आदि गाँवों के मार्ग से संघ बरपेटा पहुँचा। यहां वृहत् सिद्धचक्र विधान हुआ।

बरपेटा से बंगाई गांव आए। यहां जिनचैत्यालय की स्थापना हुई। फिर विलासपाड़ा, धुवड़ी, गौरीपुर, कूचबिहार, दीनहट्टा, माथाभागा आदि के मार्ग से मैनागुड़ी आए। श्री इन्द्रचन्दजी पाटनी के घर में चैत्यालय की स्थापना हुई। यहाँ से सिलीगुड़ी, ठाकुरगंज, किशनगंज होते हुए संघ कानकी पहुँचा।

३६ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३५ का वर्षायोग कानकी में सम्पूर्ण किया। अनेक विधानादि का आयोजन हुआ। श्रावकों के चालीस घर हैं। सभी घरों में आहारदान की प्रवृत्ति है, सभी नियम व्रत पालने वाले हैं। स्वेच्छाचारी नहीं हैं।

ठाकुरगंज में जैन मन्दिर नहीं था। आसाम जाते समय संघ के समक्ष मन्दिरजी का शिलान्यास हुआ था, अब यहां लौटने पर मन्दिर पूरा बन कर तैयार हो गया था। समाज की भावना रही कि माताजी के सान्निध्य में प्रतिष्ठा हो अतः इनके आग्रह से संघ कानकी से ठाकुरगंज आया। प्रतिष्ठा महोत्सव अच्छा रहा, धर्म की महती प्रभावना हुई।

ठाकुरगंज से विहार कर पुनः किशनगंज, कानकी, वारसोई, कटिहार आदि गाँवों में देशना करता हुआ संघ भागलपुर आया। भागलपुर चम्पापुर (नाथनगर) के नाम से प्रसिद्ध है। यहां पर भगवान वासुपूज्य के पाँचों कल्याणक सम्पन्न हुए हैं।

इस परम पुनीत स्थान पर विक्रम संवत् २०३५ माघ शुक्ला ५ से १० तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई, जिसमें समस्त भारत के विद्वान्, श्रीमन्त मुनिभक्त सम्मिलित हुए। विहार प्रान्त के

❖ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

विजयपताका

जिस प्रकार णमोकार महामंत्र में समस्त द्वादशाङ्ग वाणी गर्भित है, स्वर और ७५ से समस्त शास्त्र बनते हैं, णमोकार मंत्र में समस्त स्वर और व्यञ्जन गर्भित हैं उसी प्रकार विजयपताका यंत्र में समस्त द्वादशांग गर्भित है। जिस प्रकार सारे मंत्र णमोकार मंत्र से बनते हैं प्रकार सारे यन्त्र विजयपताका यंत्र से बनते हैं।

१ अंक—यह परमात्मा का द्योतक है।

२ अंक—द्रव्यार्थिक नय/परमार्थिक नय; राग-द्वेष; भावहिंसा द्रव्यहिंसा; प्रमाण/नय विशेष, संसारी/मुक्त आदि का द्योतक है।

३ अंक—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र; तीन शल्य, तीन गारव, तीन मूढ़ता, तीन गु आदि का द्योतक है।

४ अंक—चार शिक्षाव्रत, चार आराधना, चार अनन्त चतुष्टय, चार प्रकार के दान का द्योतक है

५ अंक—पंच परमेष्ठी, पंच महाव्रत, पंच समिति, पंच ज्ञान, पंच गति, पंच अणुव्रत, पांच पांच भावना, पंचास्तिकाय, पांच अतिचार, पंच मिथ्यात्व का द्योतक है।

६ अंक—षट् द्रव्य, षट् अनायतन, षट् आवश्यक कर्त्तव्य, षट् काय, षट् लेश्या, असिमसि आदि कर्म जाने जाते हैं।

७ अंक—सप्त तत्त्व, सप्त परम स्थान आदि का द्योतक है।

८ अंक—अष्ट कर्म, सिद्धों के ८ गुण, शंकादि आठ दोष, निःशंकितादि आठ गुण, आठ मद, ज्ञानोपयोग, इस अंक से जाने जाते हैं।

९ अंक—नव पदार्थ, नव बलभद्र, नव प्रतिनारायण, नव नारायण का द्योतक है।

१० अंक—दस धर्म, दस प्रकार का धर्मध्यान आदि का द्योतक है।

११ अंक—से ग्यारह प्रतिमा जानी जाती है।

१२ अंक—बारह व्रत, उपयोग आदि जाने जाते हैं।

१३ अंक—तेरह प्रकार के चारित्र आदि का द्योतक है।

१४ अंक—यह अंक १४ जीव समास; मार्गणा, गुणस्थान आदि का द्योतक है।

१५ अंक—प्रमाद, योग आदि का द्योतक है।

सोलह भावना, सोलह कारण आदि रूप जितना द्वादशाङ्ग है वह सब इस यंत्र के अंक गणित से जाना जाता है। इन अंकों से स्वर और व्यंजन भी निकाल कर श्लोक बनाया जाता है; जैसे—

१ अंक का अर्थ क अ ट प य होता है।

२ ,, ,, आ ख ठ फ र होता है।

३ ,, ,, ग ड ब ल इ होता है।

४ ,, ,, घ ढ भ व ई होता है।

५ ,, ,, ङ ण म श उ होता है।

६ ,, ,, च त ष ऊ होता है।

७ ,, ,, छ थ स ऋ होता है।

८ ,, ,, ज द ह ॠ होता है।

९ ,, ,, झ, ध, होता है।

ए, ऐ, ओ औ संध्यक्षर हैं। बिन्दु से अनुस्वार और विसर्ग लिया जाता है। इन अंकों से स्वर और व्यञ्जन बना कर श्लोक बनाये जाते हैं, जैसे—'भूवलय ग्रन्थ' में।[1]

यह 'विजयपताका यंत्र' (हस्तलिखित) नागौर के प्राचीन विशाल शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित है। ग्रन्थ भण्डार का अन्वेषण करने पर सम्भवतः इसके महत्व, विधि आदि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी भी मिल सकती है।

विजयपताका यंत्र में मूल (खास) १५ का यंत्र है जिससे समस्त कार्यों की सिद्धि होती है। इसका प्रभाव अचिन्त्य है तथा गोप्य भी है। विशेष जानकारी किसी विशिष्ट ज्ञानी से ही प्राप्त हो सकती है—

८	१	६
३	५	७
४	९	२

१५ इसका अन्योन्य योग (१+५) करने से छह स्थान में दो का अंक लिख कर परस्पर गुणा करें तो ६४ होगा जैसे—

२×२×२×२×२×२=६४ इसे अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। अन्योन्याभ्यस्त राशि प्रमाण दो का अंक लिख कर परस्पर गुणा करने से जो राशि आयेगी उसमें एक कम करने पर समस्त द्वादशांग के अक्षरों की संख्या निकल आयेगी।

चौबीस तीर्थंकरों की पञ्च-कल्याणक तिथियां

श्रावकों को नीचे लिखी तिथियों में पूजन और स्वाध्याय करना चाहिये, ऐसा करने से पुण्यबंध होता है।

सं०	नाम तीर्थंकर	गर्भ	जन्म	तप	ज्ञान	मोक्ष
१	आदिनाथजी	आषाढ़ कृष्णा २	चैत्र वदी ९	चैत्र वदी ९	फाल्गुन वदी ११	माघ वदी १४
२	अजितनाथजी	ज्येष्ठ वदी १५	माघ सुदी १०	माघ सुदी १०	पौष सुदी ४	चैत्र सुदी ५
३	सम्भवनाथजी	फाल्गुन सुदी ८	कार्तिक सुदी १५	मंगसिर सुदी १५	कार्तिक वदी ४	चैत्र सुदी ६
४	अभिनंदननाथजी	वैशाख सुदी ६	माघ वदी १२	माघ सुदी १२	पौष सुदी १४	वैशाख सुदी ६
५	सुमतिनाथजी	श्रावण सुदी २	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११
६	पद्मप्रभुजी	माघ वदी ६	कार्तिक सुदी १३	कार्तिक सुदी १३	चैत्र सुदी १५	फाल्गुन वदी ४
७	सुपार्श्वनाथजी	भादो सुदी ६	ज्येष्ठ सुदी १२	ज्येष्ठ सुदी १२	फाल्गुन वदी ६	फाल्गुन वदी ७
८	चन्द्रप्रभुजी	चैत्र वदी ५	पौष वदी ११	पौष वदी ११	फाल्गुन वदी ७	फाल्गुन सुदी ७
९	पुष्पदन्तजी	फाल्गुन वदी ९	मंगसिर सुदी १	मंगसिर सुदी १	कार्तिक सुदी २	आसोज सुदी ८
१०	शीतलनाथजी	चैत्र वदी ८	माघ वदी १२	माघ वदी १२	पौष वदी १४	आसोज सुदी ८
११	श्रेयांसनाथजी	ज्येष्ठ वदी ८	फाल्गुन वदी ११	फाल्गुन वदी ११	माघ वदी १	श्रावण सुदी १५
१२	वासुपूज्यजी	आषाढ़ वदी ६	फाल्गुन वदी ११	फाल्गुन वदी १४	भादो वदी २	भादो सुदी १४
१३	विमलनाथजी	ज्येष्ठ वदी १०	माघ सुदी १४	माघ सुदी १४	माघ सुदी ६	आषाढ़ वदी ८
१४	अनन्तनाथजी	कार्तिक वदी १	ज्येष्ठ वदी १२	ज्येष्ठ वदी १२	चैत्र वदी १५	चैत्र वदी ४
१५	धर्मनाथजी	वैशाख सुदी ८	माघ सुदी १३	माघ सुदी १३	पौष सुदी १५	ज्येष्ठ सुदी १४
१६	शांतिनाथजी	भादो वदी ७	ज्येष्ठ वदी ४	ज्येष्ठ वदी १४	पौष सुदी १०	ज्येष्ठ वदी १४
१७	कुन्थुनाथजी	श्रावण वदी १०	वैशाख सुदी १	वैशाख सुदी १	चैत्र सुदी ३	वैशाख सुदी १
१८	अरहनाथजी	फाल्गुन सुदी ३	मंगसिर सुदी १४	मंगसिर सुदी १४	कार्तिक सुदी १२	चैत्र सुदी ११
१९	मल्लिनाथजी	चैत्र सुदी १	मंगसिर सुदी ११	मंगसिर सुदी ११	पौष वदी २	फाल्गुन सुदी ५
२०	मुनिसुव्रतनाथजी	श्रावण वदी २	वैशाख वदी १०	वैशाख वदी १०	वैशाख वदी ९	फाल्गुन वदी १२
२१	नमिनाथजी	आसोज वदी २	आषाढ़ वदी १०	आषाढ़ वदी १०	मंगसिर सुदी ११	वैशाख वदी १४
२२	नेमिनाथजी	कार्तिक सुदी ६	श्रावण सुदी ६	श्रावण सुदी ६	आसोज सुदी १	आषाढ़ सुदी ८
२३	पार्श्वनाथजी	वैशाख वदी २	पौष वदी ११	पौष वदी ११	चैत्र वदी ४	श्रावण सुदी १
२४	महावीरजी	आषाढ़ सुदी ६	चैत्र सुदी १३	मंगसिर वदी १०	वैशाख सुदी १०	कार्तिक वदी १५

श्रावक के मुख्य आठ चिन्ह :

सब अन्याय अभक्ष्य त्याग कर, तजो अहितकारी मिथ्यात्व ।
निशिका भोजन बिन छाना जल, हरो व्यसन दुःखकारी सात ॥
जीवों की करुणा मन धारो, कर जिन दर्शन संध्या प्रातः ।
मुख्य चिन्ह ये जैनी के हैं, इन बिन जैनी को धिक्कार ॥

श्रावक के सत्रह यम नियम :

कुगुरु कुदेव कुवृषकी सेवा, अनर्थदण्ड अघमय व्यापार ।
द्यूत मांस मधु वेश्या चोरी, परतिय हिंसादान शिकार ॥
त्रस की हिंसा स्थूल असत्य, बिन छाना जल निशि आहार ।
ये सत्रह अनर्थ जग माहीं यावज्जीव करो परिहार ॥

श्रावक के सत्रह नियम :

भोजन वाहन शयन विलेपन, आसन भूषण अरु अस्नान ।
ब्रह्मचर्य ताम्बूल पेय सब संचित वस्तु का ही परिमाण ॥
पुष्प नृत्य गीतादिक षट्रस वस्त्र देशव्रत गायन मान ।
नियम सप्तदश ये प्रति दिन सब धारण करो सदा मतिमान ॥

श्रावक के त्यागने योग्य बाईस अभक्ष्य :

ओला घोर बड़ा निशि भोजन, बहुबीजक बैंगन संधान ।
बड़ पीपल ऊमर कठ ऊमर, पाकर फल जो होय अजान ॥
कन्दमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरा पान ।
फल अति तुच्छ तुषार चलित रस जिनमत ये बाईस बखान ॥

आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन में

विशेष सहयोगी

श्री निर्मलकुमार सेठी डेह निवासी—प्रवासी—लखनऊ	सीतापुर
,, राय० चांदमल गनपतराय पाण्ड्या	गौहाटी
,, पूनमचन्द गंगवाल	झरिया
,, किशनलाल सेठी	डीमापुर
,, अमरचन्द पहाड़्या	कलकत्ता
,, तिलोकचन्द कोठारी	कोटा
,, उम्मेदमल पाण्ड्या	दिल्ली
,, मांगीलाल छावड़ा	डीमापुर
,, मदनलाल सेठी	डीमापुर
,, डूंगरमल वाकलीवाल	खारुपेटिया
,, पन्नालाल सेठी	डीमापुर
,, चैनरूप वाकलीवाल	डीमापुर
,, मंगलचन्द मेघराज पाटनी	इम्फाल
,, मन्नालाल वाकलीवाल	इम्फाल
,, खूबचन्द नेमचन्द पाटनी	कलकत्ता
,, किशनलाल सरावगी एण्ड कं०	डीमापुर
,, चांदमल पारसमल वड़जात्या	कलकत्ता
,, सोहनसिंह कानुगा	नागौर
,, भँवरीलाल सरावगी	गौहाटी
,, निर्मलकुमार सबलावत	कलकत्ता
,, पूसराज वाकलीवाल	गोलाघाट
,, सेठी फ्लोर मिल्स प्रा० लि०	गोरखपुर
,, जयचन्दलाल सबलावत	डेह
,, लादूलाल वाकलीवाल	गोलाघाट
,, पूनमचन्द पाटनी	[illegible]

श्री दिगम्बर जैन महिला समाज प्रेरणा ब्र० मदीबाई	डेह
,, बा० इन्द्रचन्द पाटनी	मैनागुड़ी
,, फूलचन्द राजकुमार सेठी	डीमापुर
,, प्रकाशचन्द पाण्ड्या	कोटा
,, डूंगरमल सबलावत	डेह
,, ब्र० मदीबाई धर्मपत्नि जीवनमल बगड़ा	डेह
,, हुलासीदेवी धर्मपत्नि फतेहचन्द पाटनी	डेह
,, छगनमल सरावगी एण्ड कं०	गौहाटी
,, हुलासचन्द पाण्ड्या	सुजानगढ़
,, नन्दलाल महावीरप्रसाद सेठी	इम्फाल
,, श्री दिगम्बर जैन महिला समाज	गिरिडीह
,, पूसराज पाटनी	जोरहाट
,, सेठ सुनहरीलाल जैन	आगरा
,, रामचन्द्र बाकलीवाल	डेह
,, मांगीलाल बड़जात्या	नागौर
,, सुगनचन्द फूलचन्द पाण्ड्या	डेह
,, बद्रीप्रसाद सरावगी	पटना
,, भागचन्द जैन	कलकत्ता
,, वीरेन्द्रकुमार जैन	कलकत्ता

विशेष :—इसके अलावा अन्य भी साधारण सहयोग तो कई महानुभावों का प्राप्त हुआ है परन्तु सभी का नाम देने में असमर्थ हैं कृपया क्षमा करें।

❁